देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

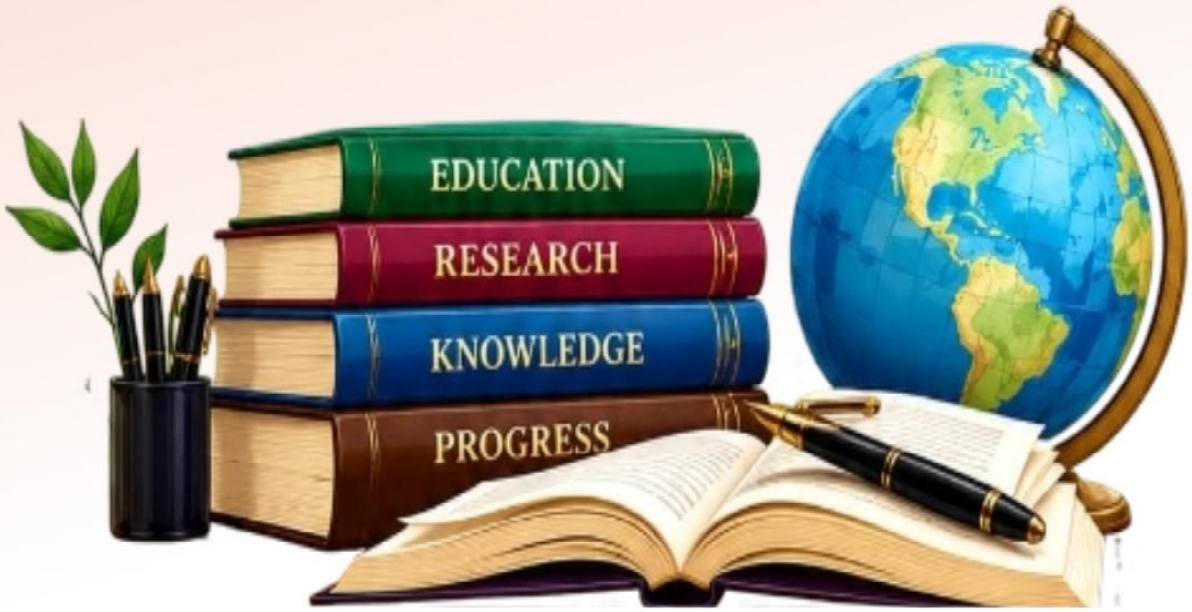
9 772395 711007

Impact Factor
8.642

ISSN : 2395-7115
Oct. 2026
Vol.-24, Issue-4

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL



Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

https://bohalshodhmanjusha.com/

Vol. 24 | ISSUE-4, Part-3 | (अक्टूबर 2026) | ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115 PRINT INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 (Print International Standard Serial Number) नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका के एक अंक का शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

- शोध पत्र 2000–2500 शब्दों (4–6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।
- पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।
- शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।
- सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका – अक्टूबर 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	10–12
2.	छत्तीसगढ़ में पेसा (PESA) अधिनियम और जनजातीय स्वशासन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ. रजनीकांत साहू	13–27
3.	मध्यप्रदेश में पर्यटन स्थलों का महत्व एवं व्यवसाय की भूमिका	डॉ. एन. के. पाटीदार, सुनील कुमार साकेत	28–40
4.	भारतीय संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण में संगीत की भूमिका	प्रो. डॉ. श्वेता डी. वेगड़	41–48
5.	डॉ. कुमार विश्वास की रचनाओं में आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक युगबोध	डॉ. सुमन लता, हितेश कुमार	49–52
6.	संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का प्रेरणादायक संचार : श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद का विश्लेषण	Shelly Sharma, Prof. Pirshant Kumar	53-59
7.	हिंदी कविता में पर्यावरणीय चेतना : एक विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ. नरेश कुमारी	60–64
8.	ग्राम विकास और शिक्षा की देशज दृष्टि : नानाजी देशमुख	डॉ. शंभू जोशी, डॉ. अंकित कुमार पाण्डेय	65–75
9.	यम नियम और आधुनिक मानव का अध्ययन	रविन्द्र सिंह राणा, डॉ. महेश चन्द	76–80
10.	कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सुशासन के सिद्धांत : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	रूखमणी मोहबे, डॉ. मुन्ना लाल चौधरी	81–87
11.	आधुनिक जीवन पद्धति एवं योग	पूरण सोलंकी, डॉ. नितीन ढ़ोमने	88–94
12.	भ्रष्टाचार नियंत्रण के उपाय – 'कौटिल्य एवं वर्तमान भारत'	रूखमणी मोहबे, डॉ. मुन्ना लाल चौधरी	95–99
13.	हिन्दी कथा साहित्य एवं नारी विमर्श	डॉ. बी. आर. भद्री	100–103
14.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में किसान चेतना : डॉ. विवेकी राय के विशेष संदर्भ में	प्रसेन जीत सिंह	104-108
15.	Literature as a Living Bridge Between Humanity and the Earth	Dr. Sanyukta Padhi, Dr. Sheila Vijay	109-115
16.	शिखर और सीमाएं उपन्यास में उत्तरी सिक्किम की पृष्ठभूमि, विवाहेतर नैतिक द्वंद, प्रेम त्रिकोण और पितृसत्ता	अमृता कुमारी साह	116–120

17.	प्रकृति का सौदा : राजनीतिक नीतियाँ और उद्योगपति हित	डॉ. एम. एम. अंसारी	121–128
18.	लोकमंगल की अवधारणा और कन्नड़ के संत पुरंदर दास तथा हिंदी के गोस्वामी तुलसीदास के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. एस. एस. देसाई	129–133
19.	भारतीय कृषि में महिला कृषि मजदूरों की भूमिका (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)	डॉ. विनोद कुमार नागले	134–141
20.	उच्चतर माध्यमिक छात्राओं की मोटर फिटनेस पर योग एवं पारंपरिक व्यायाम का तुलनात्मक अध्ययन	प्रो. रामभूषण मिश्रा, स्वाती सिंह	142–153
21.	अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के गरीबी उन्मूलन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के योगदान का समीक्षात्मक अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)	डॉ. एन.के. पाटीदार, मनोज साकेत	154–166
22.	कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न के नियंत्रण में राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति 2001 की भूमिका : (छत्तीसगढ़) में दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	दुकलहीन ठाकुर, डॉ. नागरत्ना गनवीर, डॉ. शकील हुसैन	167–172
23.	खेलों में भागीदारी का आत्मविश्वास पर प्रभाव	डॉ. भारत कुमार विश्वकर्मा, हर्षिता मिश्रा	173–183
24.	भारत में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) और जनजातीय समुदायों का सामाजिक–आर्थिक समावेशन : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन	सुधीर कुमार यादव, प्रोफेसर गीता श्रीवास्तव	184–188
25.	**JAL, JUNGLE, JAMEEN : A CRITICAL STUDY OF TRIBAL IDENTITY, ECOLOGY AND ORAL LITERATURE IN BASTAR WITH SPECIAL REFERENCE TO HALBI AND GONDI DIALECTS**	**Dr. Hemant Kumar Dewangan**	**189-196**
26.	कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव	दिनेश कुमार, डॉ. धीरज कुमार	197–201
27.	**ROLE OF RENEWABLE ENERGY IN RAJASTHAN'S ECONOMIC DEVELOPMENT**	**Dr. Mukesh Kumar**	**202-214**
28.	वीर सावरकर : अखंड भारत के स्वप्नद्रष्टा और प्रखर राष्ट्रवादी	रविन्द्र कुमार, प्रो० राजेश कुमार मीणा	215–219
29.	शरद जोशी के व्यंग्य नाटकों में समाज और सत्ता का विद्रूप	नर्ह्री कुमारी	220–226
30.	सीकर जिले में जनसंख्या वृद्धि तथा बदलते कृषि स्वरूप का भौगोलिक अध्ययन	धूडाराम महरिया, डॉ. सचिन कुमार	227–234
31.	मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ : सामाजिक, आर्थिक एवं वर्गीय शोषण का विश्लेषण	**Dr. Satish Kumar Srivastava**	**235-240**

संपादकीय... शोध से समाज तक : ज्ञान, संवेदना और सृजन की नई दिशाएँ

प्रिय शोधार्थियों, प्राध्यापकों, विद्वानों, साहित्यकारों एवं सुधी पाठकों,

सादर नमस्कार!

'बोहल शोध मंजूषा' के 'अक्टूबर 2027' अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है। किसी भी शोध पत्रिका का उद्देश्य केवल शोध–पत्रों का प्रकाशन करना नहीं होता, बल्कि वह ज्ञान, विचार, विमर्श और समाज के बीच एक सार्थक सेतु का निर्माण करती है। शोध तब अधिक सार्थक बनता है, जब वह पुस्तकालयों और शोध–संगोष्ठियों की सीमाओं से निकलकर समाज, शिक्षा, संस्कृति और मानव जीवन के प्रश्नों से जुड़ता है।

आज का समय तीव्र परिवर्तन का समय है। शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, भाषा, साहित्य, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और सामाजिक संबंधों के स्वरूप निरंतर बदल रहे हैं। विशेष रूप से उच्च शिक्षा में बहुविषयक अध्ययन, शोध एवं नवाचार, कौशल–विकास और तकनीकी एकीकरण पर व्यापक अकादमिक विमर्श चल रहा है। ऐसे परिवर्तित परिवेश में शोधकर्ता की भूमिका केवल तथ्यों का संग्रह करने वाले व्यक्ति की नहीं, बल्कि प्रश्न उठाने वाले, प्रमाण खोजने वाले और समाज को नई दृष्टि देने वाले चिंतक की भी है।

'बोहल शोध मंजूषा' का मूल उद्देश्य इसी शोध–संस्कृति को प्रोत्साहित करना है। हम मानते हैं कि ज्ञान की कोई एक सीमा या एक भाषा नहीं होती। साहित्य से विज्ञान तक, कला से वाणिज्य तक, इतिहास से भूगोल तक, विधि से शिक्षा तक और पत्रकारिता से प्रौद्योगिकी तक– हर क्षेत्र में गंभीर शोध की आवश्यकता है। बहुविषयक दृष्टि आज इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वर्तमान समस्याएँ प्रायः किसी एक विषय की सीमा में पूरी तरह समझी नहीं जा सकतीं।

शोध की गुणवत्ता और मौलिकता :

शोध का वास्तविक मूल्य उसकी संख्या में नहीं, बल्कि उसकी 'मौलिकता, प्रमाणिकता, पद्धतिगत स्पष्टता और उपयोगिता' में निहित है। एक अच्छा शोध–पत्र किसी स्थापित धारणा को नए प्रमाणों के साथ देख सकता है, किसी उपेक्षित विषय को सामने ला सकता है अथवा किसी सामाजिक समस्या को समझने की नई दृष्टि दे सकता है।

आज शोधकर्ताओं के सामने अवसर भी अधिक हैं और चुनौतियाँ भी। डिजिटल संसाधनों ने सामग्री तक पहुँच आसान बनाई है, लेकिन इसी के साथ स्रोतों की विश्वसनीयता, साहित्यिक चोरी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता से उत्पन्न सामग्री, संदर्भों की शुद्धता और अकादमिक ईमानदारी जैसे प्रश्न भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गए हैं। हाल के अध्ययनों में भी उच्च शिक्षा में एआई के उपयोग के साथ अकादमिक ईमानदारी, डेटा–गोपनीयता, असमान डिजिटल पहुँच और संस्थागत तैयारी जैसे मुद्दों पर ध्यान दिया गया है।

अतः आज के शोधार्थी के लिए केवल तकनीक का ज्ञान पर्याप्त नहीं है। उसे 'स्रोत–परीक्षण, संदर्भ–विवेक, मौलिक चिंतन और शोध–नैतिकता' को भी अपने शोध का अनिवार्य अंग बनाना होगा।

भारतीय भाषाएँ और ज्ञान की लोकतांत्रिक पहुँच :

भारतीय ज्ञान–परंपरा अत्यंत समृद्ध और बहुभाषिक रही है। हिंदी सहित भारतीय भाषाओं में साहित्य, दर्शन, इतिहास, लोकसंस्कृति, चिकित्सा, कृषि, समाज और जीवन–दर्शन से संबंधित विशाल ज्ञान–संपदा

उपलब्ध है। आवश्यकता इस बात की है कि इस ज्ञान को आधुनिक शोध–पद्धतियों के साथ जोड़कर नए संदर्भों में देखा जाए।

शोध का अंतरराष्ट्रीय होना केवल अंग्रेजी भाषा में लिखने तक सीमित नहीं होना चाहिए। भारतीय भाषाओं में होने वाला मौलिक शोध भी वैश्विक अकादमिक संवाद का हिस्सा बन सकता है, यदि उसमें स्पष्ट शोध–प्रश्न, विश्वसनीय स्रोत, उपयुक्त पद्धति और अंतरराष्ट्रीय स्तर की अकादमिक गंभीरता हो।

'बोहल शोध मंजूषा' इसी बहुभाषिक और बहुविषयक शोध–परंपरा को प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिबद्ध है। हमारा विश्वास है कि 'स्थानीय अनुभवों से निकला ज्ञान भी वैश्विक विमर्श को समृद्ध कर सकता है।'

गांव, समाज और शोध :

शोध का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हमारा अपना समाज है। गांवों में बदलती कृषि व्यवस्था, ग्रामीण शिक्षा, रोजगार, पलायन, महिला सशक्तीकरण, लोकभाषाएँ, लोककला, जल–संरक्षण, पर्यावरण, स्वास्थ्य और डिजिटल तकनीक जैसे अनेक विषय शोध की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भारतीय उच्च शिक्षा पर समकालीन शोध में ग्रामीण–शहरी असमानता, भाषाई बाधाओं, डिजिटल अवसंरचना और सामाजिक समावेशन जैसे प्रश्न भी महत्वपूर्ण बने हुए हैं। इसलिए शोधार्थियों के लिए आवश्यक है कि वे केवल बड़े शहरों और संस्थानों तक सीमित न रहें, बल्कि ग्रामीण और स्थानीय समाज के अनुभवों को भी अकादमिक विमर्श का हिस्सा बनाएं।

बोहल जैसे ग्रामीण परिवेश से प्रकाशित शोध पत्रिका के लिए यह जिम्मेदारी और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। स्थानीय जीवन को शोध का विषय बनाना केवल स्थानीयता नहीं हैय अनेक बार स्थानीय अनुभव ही व्यापक सामाजिक परिवर्तन को समझने की कुंजी प्रदान करते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और शोध का भविष्य :

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शोध और शिक्षा के सामने नई संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं। साहित्य–समीक्षा, डेटा–संगठन, भाषा–सहायता, अनुवाद, सामग्री वर्गीकरण और प्रारंभिक विश्लेषण जैसे कार्यों में डिजिटल उपकरण शोधकर्ता की सहायता कर सकते हैं। लेकिन तकनीक शोधकर्ता का विकल्प नहीं है।

शोध की आत्मा 'प्रश्न, तर्क, प्रमाण और मौलिक चिंतन' में है। किसी डिजिटल उपकरण से प्राप्त सामग्री को बिना सत्यापन स्वीकार करना शोध की विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए भविष्य का शोधकर्ता तकनीक का उपयोग अवश्य करे, लेकिन विवेक और अकादमिक नैतिकता के साथ करे।

हमें ऐसी शोध संस्कृति विकसित करनी होगी जिसमें तकनीक सुविधा बने, सत्य का विकल्प नहीं, सहायक बने, शोधकर्ता की आलोचनात्मक दृष्टि का प्रतिस्थापन नहीं।

युवा शोधार्थियों से अपेक्षा :

आज बड़ी संख्या में युवा शोधार्थी उच्च शिक्षा और अनुसंधान से जुड़ रहे हैं। यह भारतीय अकादमिक जगत के लिए सकारात्मक संभावना है। लेकिन शोध की यात्रा धैर्य मांगती है। शीघ्र प्रकाशन की इच्छा के बजाय गुणवत्तापूर्ण शोध पर ध्यान देना आवश्यक है।

एक युवा शोधार्थी को चाहिए कि वह :

- विषय का चयन सोच–समझकर करे,
- शोध–समस्या को स्पष्ट रूप से निर्धारित करे,
- प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों में अंतर समझे,

- प्रमाणों का आलोचनात्मक परीक्षण करे,
- संदर्भों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करे,
- साहित्यिक चोरी से बचे,
- शोध–नैतिकता का पालन करे,

और अपने निष्कर्षों को प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत करे।

शोध–पत्रिका शोधार्थी के लिए केवल प्रकाशन का माध्यम नहीं, बल्कि अकादमिक संवाद का मंच भी है। आलोचना और सुझाव को शोध की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी परिपक्वता की प्रक्रिया समझना चाहिए।

समाजोपयोगी शोध की आवश्यकता :

आज हमें ऐसे शोध की आवश्यकता है जो समाज के वास्तविक प्रश्नों से संवाद करे। शिक्षा में गुणवत्ता कैसे बढ़े? ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार के अवसर कैसे विकसित हों? भारतीय भाषाओं को डिजिटल संसार में कैसे सशक्त किया जाए? लोकसंस्कृति और आधुनिकता के बीच संतुलन कैसे बने? पर्यावरणीय संकटों का स्थानीय स्तर पर समाधान कैसे खोजा जाए? नई तकनीक का उपयोग मानवीय मूल्यों के साथ कैसे हो?

ये प्रश्न केवल सरकार या संस्थाओं के नहीं हैं, शोध–जगत की भी जिम्मेदारी है कि वह इनके वैज्ञानिक, सामाजिक और मानवीय पक्षों को समझे।

एक शोध–पत्र का महत्त्व केवल उसके उद्धरणों की संख्या से निर्धारित नहीं होना चाहिए। उसका सामाजिक प्रभाव, ज्ञान–विस्तार में योगदान और भविष्य के शोध के लिए उसका उपयोग भी महत्त्वपूर्ण है।

'बोहल शोध मंजूषा' की प्रतिबद्धता :

'बोहल शोध मंजूषा' शोधार्थियों, प्राध्यापकों, साहित्यकारों और विभिन्न विषयों के विद्वानों को एक साझा मंच उपलब्ध कराने के उद्देश्य से निरंतर प्रयासरत है। हमारा प्रयास है कि पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में विषयगत विविधता के साथ अकादमिक गंभीरता भी बनी रहे।

हम अपने सभी लेखकों से अपेक्षा करते हैं कि वे मौलिक, प्रमाणिक और शोध–पद्धति के अनुरूप सामग्री प्रस्तुत करें। इसी प्रकार पाठकों और समीक्षकों से प्राप्त रचनात्मक सुझाव पत्रिका को अधिक समृद्ध बनाने में सहायक होंगे।

हमारा विश्वास है कि शोध की यात्रा अकेले व्यक्ति की यात्रा नहीं है। शोधकर्ता, समीक्षक, संपादक और पाठककृसभी मिलकर ज्ञान की एक ऐसी परंपरा का निर्माण करते हैं जिसमें प्रश्न पूछना, विचार करना और सत्य की खोज करना निरंतर जारी रहता है।

अक्टूबर 2027 का यह अंक केवल शोध–पत्रों का संग्रह न होकर ज्ञान और संवेदना के बीच संवाद का एक प्रयास है। हमारा समय परिवर्तनशील है, लेकिन शोध की मूल आत्मा आज भी वही है– 'सत्य की खोज, ज्ञान का विस्तार और समाज के प्रति उत्तरदायित्व।'

आइए, हम ऐसी शोध संस्कृति का निर्माण करें जिसमें मौलिकता हो, प्रमाणिकता हो, भारतीय संदर्भों की समझ हो, वैश्विक दृष्टि हो और सबसे बढ़कर मानव कल्याण की भावना हो।

'बोहल शोध मंजूषा' अपने सभी शोधार्थियों, प्राध्यापकों, समीक्षकों, लेखकों एवं पाठकों के प्रति आभार व्यक्त करती है। आपके विचार, शोध और सहयोग ही इस यात्रा की वास्तविक शक्ति हैं।

'शोध जीवित रहे, विचार जीवित रहें और ज्ञान समाज के लिए उपयोगी बनता रहे– इसी शुभकामना के साथ।'

संपादक : बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 13-27

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

छत्तीसगढ़ में पेसा (PESA) अधिनियम और जनजातीय स्वशासन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. रजनीकांत साहू
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शासकीय रानी दुर्गावती महाविद्यालय वाड्रफनगर,
जिला–बलरामपुर, रामानुजगंज (छत्तीसगढ़)

सारांश :-

भारत में जनजातीय समुदायों के लिए स्थानीय स्वशासन, सांस्कृतिक पहचान तथा प्राकृतिक संसाधनों पर सामुदायिक अधिकार लंबे समय से महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक प्रश्न रहे हैं। संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में सामान्य पंचायती राज व्यवस्था को लागू करते समय जनजातीय समाज की विशिष्ट सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी पृष्ठभूमि में संसद ने **पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996**, अर्थात् PESA, पारित किया। अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था को स्थानीय जनजातीय परंपराओं एवं ग्राम-स्तरीय स्वशासन के अनुरूप विकसित करना था। PESA को 24 दिसंबर 1996 को अधिनियमित किया गया।

छत्तीसगढ़ PESA के अध्ययन के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण राज्य है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या 255.45 लाख थी, जिसमें अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 78.22 लाख अर्थात् 30.62 प्रतिशत थी। राज्य सरकार के अनुसार लगभग 81,861.88 वर्ग किमी क्षेत्र अनुसूचित क्षेत्र के अंतर्गत आता है, जो राज्य के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 65.12 प्रतिशत है।

छत्तीसगढ़ ने **8 अगस्त 2022** को अपने PESA Rules अधिसूचित किए। केंद्र सरकार के अनुसार छत्तीसगढ़ उन राज्यों में शामिल है जिन्होंने राज्य PESA नियम बनाए हैं। वर्तमान में पंचायती राज मंत्रालय की आधिकारिक सूची में **छत्तीसगढ़ पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) नियम, 2022** उपलब्ध हैं।

यह शोध-पत्र PESA की वैधानिक पृष्ठभूमि, छत्तीसगढ़ में इसकी स्थिति, ग्राम सभा की भूमिका, जनजातीय स्वशासन, भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, विकास में सहभागिता, महिलाओं की भागीदारी तथा क्रियान्वयन की चुनौतियों का विश्लेषण करता है। साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि PESA पर पर्याप्त वैधानिक एवं सैद्धांतिक अध्ययन हुए हैं, किंतु छत्तीसगढ़ में **कानूनी प्रावधान, ग्राम सभा की वास्तविक निर्णयकारी शक्ति, प्राकृतिक संसाधन शासन और स्थानीय सामाजिक-आर्थिक परिणामों को एकीकृत रूप से मापने वाले अनुभवजन्य अध्ययनों की आवश्यकता अभी बनी हुई है।**

प्रमुख शब्द : PESA, जनजातीय स्वशासन, ग्राम सभा, पाँचवीं अनुसूची, छत्तीसगढ़, आदिवासी अधिकार, प्राकृतिक संसाधन, विकेंद्रीकरण, स्थानीय लोकतंत्र।

प्रस्तावना :

भारतीय लोकतंत्र की सफलता केवल राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व से निर्धारित नहीं होती, बल्कि स्थानीय स्तर पर नागरिकों की निर्णय-प्रक्रिया में वास्तविक भागीदारी से भी निर्धारित होती है। पंचायती राज व्यवस्था ने स्थानीय लोकतंत्र को संस्थागत आधार प्रदान किया, लेकिन अनुसूचित क्षेत्रों में जनजातीय समाज की विशिष्ट परिस्थितियों के कारण सामान्य पंचायती राज व्यवस्था पर्याप्त नहीं मानी गई।

जनजातीय समाज में ग्राम केवल प्रशासनिक इकाई नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामुदायिक जीवन की आधारभूत इकाई रहा है। भूमि, जंगल, जल, लघु वनोपज तथा अन्य सामुदायिक संसाधनों के साथ जनजातीय समुदायों का संबंध केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक भी है। PESA इसी वास्तविकता को स्वीकार करते हुए ग्राम सभा को स्थानीय स्वशासन की केंद्रीय संस्था के रूप में महत्व देता है। इसका उद्देश्य अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायत व्यवस्था को जनजातीय परंपराओं, रीति-रिवाजों और सामुदायिक संसाधनों की रक्षा के साथ जोड़ना है। छत्तीसगढ़ में यह विषय विशेष महत्व रखता है। राज्य सरकार के अनुसार राज्य में अनुसूचित क्षेत्र लगभग 81,861.88 वर्ग किमी है तथा अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 2011 में 78.22 लाख थी।

अतः छत्तीसगढ़ में PESA का अध्ययन केवल प्रशासनिक विकेंद्रीकरण का अध्ययन नहीं है, बल्कि यह **जनजातीय अधिकार, लोकतांत्रिक सहभागिता, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और स्थानीय विकास** के अंतर्संबंधों का अध्ययन है।

अध्ययन की पृष्ठभूमि : PESA की वैचारिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए संविधान के अनुच्छेद 243 तथा पाँचवीं अनुसूची का अध्ययन आवश्यक है। 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ, किंतु संविधान के अनुच्छेद 243M के अंतर्गत अनुसूचित क्षेत्रों के लिए अलग व्यवस्था की आवश्यकता बनी रही।

इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप संसद ने PESA, 1996 पारित किया। PESA ने अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायतों के लिए विशेष व्यवस्था करते हुए ग्राम सभा को व्यापक अधिकार प्रदान करने की दिशा में कदम उठाया।

केंद्र सरकार के अनुसार PESA दस राज्यों के पाँचवीं अनुसूची क्षेत्रों में लागू है, जिनमें छत्तीसगढ़ भी शामिल है।

छत्तीसगढ़ में PESA के महत्व को राज्य की जनजातीय संरचना से भी समझा जा सकता है। राज्य में गोंड, हल्बा, कंवर, उरांव, बैगा, भतरा आदि अनेक जनजातीय समुदाय निवास करते हैं। भारत की 2011 जनगणना में छत्तीसगढ़ के जिलेवार अनुसूचित जनजाति संबंधी विस्तृत आँकड़े उपलब्ध हैं।

अध्ययन के उद्देश्य : इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. PESA अधिनियम, 1996 की वैधानिक एवं वैचारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. छत्तीसगढ़ में PESA के भौगोलिक एवं जनसांख्यिकीय आधार का विश्लेषण करना।
3. ग्राम सभा की भूमिका एवं शक्तियों का अध्ययन करना।
4. जनजातीय स्वशासन पर PESA के प्रभाव का विश्लेषण करना।
5. प्राकृतिक संसाधन, भूमि तथा लघु वनोपज के संदर्भ में PESA की भूमिका का अध्ययन करना।
6. PESA में महिलाओं की सहभागिता का विश्लेषण करना।
7. PESA Rules, 2022 के महत्व का अध्ययन करना।
8. PESA के क्रियान्वयन में आने वाली प्रमुख समस्याओं एवं चुनौतियों की पहचान करना।
9. PESA के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध परिकल्पनाएँ :-

- PESA के प्रभावी क्रियान्वयन से जनजातीय समुदाय की स्थानीय शासन में सहभागिता बढ़ती है।
- PESA के अंतर्गत सशक्त ग्राम सभा जनजातीय स्वशासन को मजबूत करती है।
- PESA के प्रभावी क्रियान्वयन का प्राकृतिक एवं सामुदायिक संसाधनों के संरक्षण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- PESA के संबंध में जनजातीय समुदाय की जागरूकता का स्तर शिक्षा एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति से संबंधित है।
- ग्राम सभा में महिलाओं की सक्रिय सहभागिता जनजातीय स्वशासन की प्रभावशीलता में वृद्धि करती है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा :-

इस विषय पर उपलब्ध साहित्य को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है— **(क) PESA एवं कानूनी ढाँचा, (ख) ग्राम सभा एवं जनजातीय स्वशासन, (ग) भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन शासन।**

Bhuria Committee का योगदान : PESA की वैचारिक पृष्ठभूमि में भूरिया समिति का विशेष महत्व है। समिति ने जनजातीय क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन को जनजातीय सामाजिक संरचना एवं परंपराओं के अनुरूप विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया। बाद में यही विचार PESA की संरचना में दिखाई देता है।

B. K. Roy Burman का दृष्टिकोण : B. K. Roy Burman के जनजातीय अध्ययन भारतीय जनजातीय समुदायों और विकास नीति के संबंधों को समझने में महत्वपूर्ण रहे हैं। उनके विचारों से यह स्पष्ट होता है कि जनजातीय विकास को केवल आर्थिक विकास के रूप में नहीं देखा जा सकता; सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वायत्तता भी महत्वपूर्ण है।

N. C. Saxena के अध्ययन : N. C. Saxena ने वन एवं जनजातीय आजीविका से जुड़े प्रश्नों पर जोर दिया। उनके अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि वन-आधारित समुदायों के लिए प्राकृतिक संसाधनों तक पहुंच और संस्थागत अधिकार अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। PESA तथा FRA को इसी व्यापक अधिकार विमर्श के संदर्भ में समझा जा सकता है।

Virginius Xaxa : Virginius Xaxa ने भारतीय जनजातीय समाज, विकास, पहचान और अधिकारों से संबंधित महत्वपूर्ण अकादमिक विमर्श प्रस्तुत किया। उनके कार्यों से यह समझने में सहायता मिलती है कि जनजातीय समुदायों को केवल "विकास के लाभार्थी" के रूप में नहीं बल्कि विकास-निर्णय के सक्रिय भागीदार के रूप में देखना आवश्यक है।

Nandini Sundar : Nandini Sundar के कार्यों में मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्रों में राज्य, वन, भूमि, हिंसा और विकास के संबंधों का महत्वपूर्ण विश्लेषण मिलता है। छत्तीसगढ़ के संदर्भ में यह साहित्य विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि यहाँ प्राकृतिक संसाधन, सुरक्षा और विकास संबंधी प्रश्न एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

Kamal Nayan Choubey (2015) : Choubey ने PESA को एक "progressive" कानून के रूप में देखा और इसके क्रियान्वयन की वास्तविकता का अध्ययन किया। उनके अनुसार PESA का क्रियान्वयन अनेक क्षेत्रों में कमजोर रहा, लेकिन इस कानून ने जनजातीय समुदायों में अधिकार-जागरूकता को बढ़ाया और "legalism from below" जैसी प्रक्रिया को जन्म दिया।

यह अध्ययन वर्तमान शोध के लिए इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कानून और जमीनी वास्तविकता के बीच अंतर को स्पष्ट करता है।

Kamal Nayan Choubey (2016) : Choubey ने PESA और Forest Rights Act (FRA) की उत्पत्ति एवं राजनीतिक-सामाजिक पृष्ठभूमि की तुलना की। अध्ययन में जनजातीय आंदोलनों तथा नागरिक समाज की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जनजातीय स्वशासन की संस्थाएँ केवल सरकारी पहल का परिणाम नहीं बल्कि लंबे सामाजिक संघर्षों की उपज भी हैं।

Veeresha Nayakara (2022) : Nayakara ने **"Land Governance in Fifth Schedule Areas: A Critical Analysis of Chhattisgarh State"** में छत्तीसगढ़ के पाँचवीं अनुसूची क्षेत्रों में भूमि शासन का अध्ययन किया। अध्ययन ने भूमि के औसत जोत आकार में गिरावट, भूमि शासन की समस्याओं और PESA/FRA से संबंधित मुद्दों को रेखांकित किया।

यह अध्ययन वर्तमान शोध के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सीधे छत्तीसगढ़ को केंद्र में रखता है।

NIRDPR का छत्तीसगढ़ अध्ययन : राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान (NIRDPR) ने छत्तीसगढ़ के उग्रवाद-प्रभावित क्षेत्रों में PESA के क्रियान्वयन और शासन संबंधी

चुनौतियों पर अध्ययन किया। अध्ययन में दंतेवाड़ा, बस्तर और कांकेर जैसे अनुसूचित जिलों को शामिल किया गया।

अध्ययन में PESA को ग्राम स्वराज, परंपरागत शासन और ग्राम सभा की भूमिका से जोड़कर देखा गया। इसमें प्राकृतिक संसाधन, ग्राम सभा, सामाजिक क्षेत्र, स्थानीय योजनाओं और आदिवासी उपयोजनाओं को PESA क्रियान्वयन के महत्वपूर्ण संकेतक माना गया।

NIRDPR के क्षेत्रीय निष्कर्ष : NIRDPR की रिपोर्ट में दंतेवाड़ा में 53.3 प्रतिशत उत्तरदाता PESA के उचित क्रियान्वयन और उग्रवादी गतिविधियों में कमी के बीच स्पष्ट संबंध नहीं बता सके, जबकि 46.6 प्रतिशत ने सकारात्मक संबंध महसूस किया।

यह निष्कर्ष दर्शाता है कि PESA और सामाजिक स्थिरता के बीच संबंध को सरल कारण-परिणाम के रूप में नहीं देखा जा सकता।

Prasad एवं Sole (2023) : Prasad और Sole ने झारखंड में **Pathalgadi** तथा जनजातीय स्वशासन के संदर्भ में ग्राम सभा की भूमिका का अध्ययन किया। अध्ययन ने ग्राम सभा को स्थानीय लोकतंत्र की आधारभूत संस्था माना और PESA तथा Forest Rights Act को लोकतांत्रिक निर्णय-प्रक्रिया से जोड़ा।

Bara का अध्ययन : Anju Helen Bara ने झारखंड में वन, आदिवासी समुदाय और PESA की भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी, जागरूकता का अभाव, आंतरिक संघर्ष तथा प्रशासनिक बाधाओं को PESA के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण अवरोध माना गया।

Ota, Mohanty एवं Gomang (2010) : Ota, Mohanty और Gomang ने ओडिशा के जनजातीय क्षेत्रों में PESA के क्रियान्वयन का अनुभवजन्य अध्ययन किया। अध्ययन का उद्देश्य जनजातीय स्वशासन, PESA और पंचायती राज प्रतिनिधियों के बीच संबंधों का परीक्षण करना था।

Philip – मध्य प्रदेश अध्ययन : Prakash M. Philip ने मध्य प्रदेश में पारंपरिक जनजातीय शासन और औपचारिक ग्राम पंचायतों का PESA के संदर्भ में अध्ययन किया। अध्ययन में यह पाया गया कि पंचायतों में PESA की शक्तियों एवं जिम्मेदारियों को समझने तथा लागू करने की क्षमता अलग-अलग है।

Behera (2025) : Manash Kumar Behera ने ओडिशा में PESA के क्रियान्वयन और स्थानीय स्वशासन पर इसके प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन में ग्राम सभा, संसाधन प्रबंधन एवं विवाद समाधान में PESA की भूमिका स्वीकार की गई, लेकिन नौकरशाही हस्तक्षेप, जागरूकता की कमी और संस्थागत सहयोग की अपर्याप्तता को प्रमुख बाधाएँ बताया गया।

Dipti Paridhi Kindo (2025) : Kindo ने झारखंड के निर्वाचित जनजातीय नेताओं के दृष्टिकोण से PESA का अध्ययन किया। 80 प्रतिभागियों और 12 माह के फील्डवर्क पर आधारित अध्ययन ने सीमित समझ, राज्य एजेंसियों के प्रतिरोध, अभिजात्य कब्जे और संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ सामने रखीं।

स्थानीय स्वशासन का 4F Framework : 2026 के एक अध्ययन में Fifth Schedule Areas के स्थानीय स्वशासन को **Framework of Autonomy, Functions, Finances और Functionaries** के चार आयामों से मापने का प्रयास किया गया। इसमें 34 उप-संकेतकों में से 23 प्रमुख संकेतकों को विशेषज्ञों की Fuzzy Delphi Method द्वारा प्राथमिकता दी गई।

यह दृष्टिकोण वर्तमान अध्ययन के लिए विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि PESA के प्रभाव को केवल कानूनी अधिकारों के आधार पर नहीं, बल्कि **कार्य, वित्त, कर्मचारी और स्वायत्तता** के आधार पर भी मापा जा सकता है।

Hnaihly एवं Vivek Kumar (2026) : इनका अध्ययन भारत में जनजातीय स्वायत्तता के संवैधानिक एवं कानूनी ढाँचे—विशेषकर पाँचवीं अनुसूची, छठी अनुसूची और PESA—का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि PESA सिद्धांततः परिवर्तनकारी है, लेकिन प्रभावी cnforccmcnt mcchanisms और संस्थागत क्षमता की कमी इसकी प्रभावशीलता को सीमित करती है।

समग्र साहित्य समीक्षा से प्राप्त निष्कर्ष :

उपरोक्त अध्ययनों को देखने पर पाँच प्रमुख प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं—

1. PESA का वैधानिक उद्देश्य अत्यंत व्यापक है।
2. ग्राम सभा PESA की केंद्रीय संस्था है।
3. कानून और वास्तविक क्रियान्वयन में अंतर एक सामान्य समस्या है।
4. प्राकृतिक संसाधन एवं भूमि शासन PESA की सफलता से सीधे जुड़े हैं।
5. जागरूकता, प्रशासनिक इच्छाशक्ति और संस्थागत क्षमता PESA के परिणामों को प्रभावित करते हैं।

साहित्य समीक्षा की सारणी

सारणी 1 : प्रमुख साहित्य एवं उनके निष्कर्ष

क्र.	लेखक/संस्था	वर्ष	अध्ययन का क्षेत्र	प्रमुख निष्कर्ष
1	Bhuria Committee	1995	भारत	जनजातीय स्वशासन की आवश्यकता
2	Roy Burman	विभिन्न	भारत	जनजातीय विकास एवं सांस्कृतिक विशिष्टता
3	N. C. Saxena	विभिन्न	वन/जनजाति	संसाधन एवं आजीविका अधिकार
4	Virginius Xaxa	विभिन्न	भारत	जनजातीय पहचान एवं विकास
5	Nandini Sundar	विभिन्न	मध्य भारत	राज्य, वन एवं आदिवासी संबंध
6	Choubey	2015	भारत/राजस्थान	PESA क्रियान्वयन कमजोर, जागरूकता बढ़ी
7	Choubey	2016	भारत	PESA एवं FRA की राजनीतिक पृष्ठभूमि
8	Ota et al.	2010	ओडिशा	PESA का अनुभवजन्य मूल्यांकन

9	Nayakara	2022	छत्तीसगढ़	भूमि शासन की चुनौतियाँ
10	NIRDPR	2022–23	छत्तीसगढ़	PESA एवं governance challenges
11	Prasad & Sole	2023	झारखंड	ग्राम सभा एवं Pathalgadi
12	Bara	2022/26	झारखंड	वन एवं PESA क्रियान्वयन
13	Philip	2024	मध्य प्रदेश	पारंपरिक एवं औपचारिक शासन
14	Behera	2025	ओडिशा	ग्राम सभा एवं PESA
15	Kindo	2025	झारखंड	जनजातीय नेताओं का दृष्टिकोण
16	Fuzzy Delphi Study	2026	Fifth Schedule Areas	4F governance framework
17	Hnaihly & Kumar	2026	भारत	संवैधानिक जनजातीय स्वायत्तता

उपर्युक्त साहित्य यह दर्शाता है कि PESA पर व्यापक राष्ट्रीय अध्ययन उपलब्ध हैं, लेकिन छत्तीसगढ़ में इसके **नियम लागू होने के बाद के संस्थागत प्रभाव** पर अभी अधिक व्यवस्थित क्षेत्रीय अध्ययन की आवश्यकता है।

शोध-अंतराल : उपलब्ध साहित्य के आधार पर निम्नलिखित शोध-अंतराल पहचाने जा सकते हैं।

कानून और व्यवहार के बीच अंतर : अधिकांश अध्ययन PESA के कानूनी प्रावधानों को विस्तार से बताते हैं, लेकिन ग्राम सभा के वास्तविक निर्णयों और वैधानिक शक्तियों के बीच अंतर को क्षेत्रीय स्तर पर मापने वाले अध्ययन अपेक्षाकृत कम हैं।

छत्तीसगढ़-विशिष्ट अनुभवजन्य अध्ययन की आवश्यकता : छत्तीसगढ़ पर अध्ययन उपलब्ध हैं, विशेषकर भूमि शासन तथा उग्रवाद-प्रभावित क्षेत्रों के संदर्भ में, लेकिन राज्य के विभिन्न अनुसूचित क्षेत्रों की तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है।

PESA Rules, 2022 के बाद का अध्ययन : छत्तीसगढ़ ने 8 अगस्त 2022 को PESA Rules अधिसूचित किए। अतः नियमों के लागू होने के बाद ग्राम सभा की वास्तविक भूमिका में हुए परिवर्तनों का दीर्घकालीन क्षेत्रीय अध्ययन एक महत्वपूर्ण शोध-अंतराल है।

4F Framework का छत्तीसगढ़ में प्रयोग : हाल के अध्ययनों में **Autonomy, Functions, Finances, Functionaries** जैसे संकेतकों के माध्यम से स्थानीय स्वशासन को मापने का प्रयास हुआ है। छत्तीसगढ़ में इस प्रकार का व्यवस्थित सूचकांक आधारित अध्ययन उपयोगी होगा।

महिला सहभागिता : PESA की चर्चा में ग्राम सभा को केंद्रीय स्थान मिलता है, लेकिन महिलाओं की वास्तविक निर्णयकारी भूमिका—विशेषकर संसाधन, भूमि और विकास योजनाओं से जुड़े निर्णयों में पर अधिक क्षेत्रीय अध्ययन की आवश्यकता है।

सामाजिक-आर्थिक परिणाम : PESA की सफलता को केवल बैठक की संख्या या प्रस्तावों के आधार पर नहीं, बल्कि आजीविका, संसाधन सुरक्षा, विकास सेवाओं और सामाजिक सशक्तीकरण जैसे परिणामों के आधार पर मापने की आवश्यकता है।

सारणी 2 : छत्तीसगढ़ की जनजातीय स्थिति

संकेतक	स्थिति
कुल क्षेत्रफल	लगभग 1,35,133 वर्ग किमी
अनुसूचित क्षेत्र	81,861.88 वर्ग किमी
अनुसूचित क्षेत्र का प्रतिशत	65.12%
कुल जनसंख्या, 2011	255.45 लाख
अनुसूचित जनजाति जनसंख्या	78.22 लाख
ST जनसंख्या का प्रतिशत	30.62%
कुल साक्षरता	70.28%
ST साक्षरता	59.09%
ST पुरुष साक्षरता	69.67%
ST महिला साक्षरता	48.76%

स्रोत: आदिम जाति तथा अनुसूचित जाति विकास विभाग, छत्तीसगढ़।

यह सारणी दर्शाती है कि राज्य की जनसंख्या में ST समुदाय की हिस्सेदारी 30 प्रतिशत से अधिक है और राज्य का एक बड़ा भौगोलिक क्षेत्र अनुसूचित क्षेत्र है। इसलिए जनजातीय स्वशासन राज्य की स्थानीय शासन व्यवस्था का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है।

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित क्षेत्र : छत्तीसगढ़ सरकार की वर्तमान सूची में सरगुजा, कोरिया, बस्तर, दंतेवाड़ा, कांकेर, कोरबा और जशपुर जैसे पूर्ण अनुसूचित जिले तथा बिलासपुर, दुर्ग, राजनांदगांव, रायपुर, धमतरी और रायगढ़ के विशिष्ट क्षेत्र अनुसूचित क्षेत्र के रूप में वर्णित हैं।

सारणी 3 : प्रमुख अनुसूचित क्षेत्र

क्रम	क्षेत्र	अनुसूचित क्षेत्र की स्थिति
1	सरगुजा	संपूर्ण
2	कोरिया	संपूर्ण
3	बस्तर	संपूर्ण
4	दंतेवाड़ा	संपूर्ण
5	कांकेर	संपूर्ण
6	कोरबा	संपूर्ण
7	जशपुर	संपूर्ण
8	बिलासपुर	विशिष्ट विकासखंड/क्षेत्र
9	दुर्ग	डोण्डी क्षेत्र
10	राजनांदगांव	चौकी/मानपुर/मोहला क्षेत्र
11	रायपुर	बिन्द्रानवागढ़ क्षेत्र
12	धमतरी	सिहावा क्षेत्र
13	रायगढ़	निर्दिष्ट जनजातीय विकासखंड

स्रोत: छत्तीसगढ़ शासन, आदिम जाति तथा अनुसूचित जाति विकास विभाग।

आदिवासी उपयोजना क्षेत्र की स्थिति :

राज्य सरकार के अनुसार 85 आदिवासी विकासखंडों और 13 आंशिक क्षेत्रों से संबंधित 10,599 गाँवों का एक व्यापक आदिवासी उपयोजना क्षेत्रीय ढाँचा उपलब्ध है। संबंधित सरकारी तालिका में कुल 1,07,72,812 जनसंख्या में 61,46,177 आदिवासी जनसंख्या तथा 57.05 प्रतिशत हिस्सेदारी दर्ज है।

सारणी 4 : चयनित आदिवासी विकास क्षेत्रों की स्थिति

क्षेत्र	कुल जनसंख्या	आदिवासी जनसंख्या	ST प्रतिशत
जगदलपुर	8,34,375	5,20,779	62.41
कांकेर/भानुप्रतापपुर	4,99,766	2,94,770	58.98
नारायणपुर	3,88,995	2,28,161	58.65
कोंडागांव	5,78,824	4,11,001	71.01
दंतेवाड़ा	2,83,479	2,01,458	71.07
कोन्टा/सुकमा	2,50,159	2,08,797	83.47
बीजापुर	2,55,230	2,04,189	80.00
जशपुरनगर	6,60,139	4,09,180	61.98
अम्बिकापुर	9,49,374	5,60,435	59.03
कुल	**1,07,72,812**	**61,46,177**	**57.05**

स्रोत: छत्तीसगढ़ शासन, आदिवासी उपयोजना क्षेत्र संबंधी आधिकारिक आँकड़े।

PESA के प्रमुख अधिकार एवं कार्य

सारणी 5 : PESA के प्रमुख प्रावधान

क्षेत्र	ग्राम सभा/पंचायत की भूमिका
परंपरा एवं संस्कृति	संरक्षण एवं संवर्धन
सामुदायिक संसाधन	संरक्षण
विवाद समाधान	पारंपरिक पद्धतियों की रक्षा
विकास योजनाएँ	अनुमोदन/भागीदारी
लाभार्थी चयन	स्थानीय भागीदारी
भूमि	अधिग्रहण/पुनर्वास में भूमिका
लघु वनोपज	समुदाय की भूमिका
ग्राम बाजार	प्रबंधन
साहूकारी	जनजातीय हितों की रक्षा
नशा/मादक पदार्थ	नियमन/नियंत्रण
सामाजिक क्षेत्र	संस्थाओं एवं कार्यकर्ताओं पर निगरानी
स्थानीय योजनाएँ	योजनाओं एवं संसाधनों पर नियंत्रण

PESA के अंतर्गत इन्हीं प्रकार की शक्तियों को स्थानीय स्वशासन के प्रमुख निर्धारक के रूप में NIRDPR ने भी अपने छत्तीसगढ़ अध्ययन में उपयोग किया।

PESA Rules, 2022 : छत्तीसगढ़ में नया चरण

छत्तीसगढ़ ने 8 अगस्त 2022 को अपने PESA Rules अधिसूचित किए।

सारणी 6 : PESA क्रियान्वयन का कालक्रम

वर्ष	घटना
1992	73वाँ संविधान संशोधन
1995	भूरिया समिति की अनुशंसाएँ
1996	PESA अधिनियम पारित
2000	छत्तीसगढ़ राज्य का गठन
2009	केंद्र द्वारा Model PESA Rules की पहल
2022	छत्तीसगढ़ PESA Rules अधिसूचित
2023	केंद्र की आधिकारिक PESA Rules सूची में छत्तीसगढ़ नियम उपलब्ध
वर्तमान	नियमों के जमीनी प्रभाव के मूल्यांकन की आवश्यकता

केंद्र सरकार ने 2009 में Model PESA Rules तैयार किए थे तथा बाद में राज्यों से अपने नियम अधिसूचित करने का आग्रह किया। 2022 में छत्तीसगढ़ ने नियम अधिसूचित किए।

PESA क्रियान्वयन और शासन संबंधी अनुभव :

NIRDPR का छत्तीसगढ़ अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें PESA के क्रियान्वयन को उग्रवाद-प्रभावित क्षेत्रों के शासन, आजीविका और विकास योजनाओं से जोड़ा गया। अध्ययन में दंतेवाड़ा, बस्तर और कांकेर जैसे क्षेत्र शामिल थे।

सारणी 7 : NIRDPR अध्ययन से चयनित संकेतक

क्षेत्र	PESA/ग्राम सभा संबंधी प्रमुख निष्कर्ष
दंतेवाड़ा	53.3% उत्तरदाता स्पष्ट संबंध नहीं बता सके
दंतेवाड़ा	46.6% ने सकारात्मक संबंध माना
ग्राम सभा	स्वशासन का केंद्रीय माध्यम
प्राकृतिक संसाधन	PESA क्रियान्वयन का महत्वपूर्ण संकेतक
स्थानीय योजना	ग्राम सभा की भूमिका आवश्यक
पारंपरिक शासन	PESA अध्ययन का महत्वपूर्ण आधार
प्रशासन	प्रभावी क्रियान्वयन के लिए संस्थागत समन्वय आवश्यक

स्रोत: NIRDPR Research Report Series.

यहाँ 53.3% और 46.6% आँकड़े **पूरे छत्तीसगढ़ के लिए सामान्यीकृत नहीं किए जा सकते**; ये संबंधित अध्ययन के दंतेवाड़ा नमूने से जुड़े निष्कर्ष हैं।

PESA और ग्राम सभा :

PESA की आत्मा ग्राम सभा है। ग्राम सभा को केवल पंचायत की बैठक के रूप में देखना PESA की मूल भावना को सीमित करना होगा।

ग्राम सभा के माध्यम से स्थानीय समुदाय—

- अपनी प्राथमिकताएँ तय कर सकता है,
- विकास योजनाओं पर विचार कर सकता है,
- प्राकृतिक संसाधनों पर चर्चा कर सकता है,
- स्थानीय सामाजिक समस्याओं को उठा सकता है,
- लाभार्थियों के चयन में भाग ले सकता है,
- सामुदायिक संसाधनों की सुरक्षा कर सकता है।

इस प्रकार ग्राम सभा को **प्रतिनिधिक लोकतंत्र और सहभागी लोकतंत्र के बीच सेतु** के रूप में देखा जा सकता है।

PESA और प्राकृतिक संसाधन :

छत्तीसगढ़ में जल-जंगल-जमीन का प्रश्न जनजातीय जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है। PESA ग्राम सभा को सामुदायिक संसाधनों की रक्षा तथा स्थानीय प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करता है।

हालाँकि व्यवहार में वन कानून, खनन कानून, राजस्व कानून तथा पंचायत कानूनों के विभिन्न प्रावधानों के बीच समन्वय की समस्या सामने आती है।

यही कारण है कि PESA की सफलता केवल पंचायत विभाग की कार्यप्रणाली से नहीं बल्कि **वन, राजस्व, खनिज, पंचायत एवं जनजातीय विभागों के समन्वय** से भी जुड़ी है।

PESA और भूमि शासन :

छत्तीसगढ़ के संदर्भ में भूमि शासन PESA का अत्यंत संवेदनशील क्षेत्र है। Nayakara के अध्ययन में पाँचवीं अनुसूची क्षेत्रों में भूमि शासन और भूमि-हस्तांतरण के प्रश्न को विशेष महत्व दिया गया। अध्ययन ने भूमि जोत के औसत आकार में गिरावट तथा भूमि शासन की कमजोरियों की ओर संकेत किया।

इस संदर्भ में PESA की ग्राम सभा आधारित व्यवस्था का महत्व बढ़ जाता है क्योंकि विकास परियोजनाओं और भूमि संबंधी निर्णयों में स्थानीय समुदाय की भागीदारी लोकतांत्रिक वैधता प्रदान कर सकती है।

PESA और महिला सहभागिता :

जनजातीय समाज में महिलाएँ कृषि, वनोपज संग्रह, घरेलू अर्थव्यवस्था और सामुदायिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

फिर भी राजनीतिक संस्थाओं में **संख्यात्मक प्रतिनिधित्व और वास्तविक निर्णयकारी शक्ति** समान नहीं होते।

इसलिए PESA के अध्ययन में यह देखना आवश्यक है कि—

- महिलाएँ ग्राम सभा में कितनी नियमितता से भाग लेती हैं?
- क्या वे अपनी बात स्वतंत्र रूप से रखती हैं?
- क्या प्राकृतिक संसाधन संबंधी निर्णयों में उनकी भूमिका है?
- क्या महिला ग्राम सभा/महिला समूहों के सुझाव मुख्य ग्राम सभा के निर्णयों में शामिल होते हैं?

यह विषय भविष्य के क्षेत्रीय सर्वेक्षण में महत्वपूर्ण चर हो सकता है।

PESA क्रियान्वयन की प्रमुख चुनौतियाँ :-

जागरूकता का अभाव : यदि समुदाय अपने अधिकारों से परिचित नहीं है तो कानूनी अधिकार व्यवहार में प्रभावी नहीं हो सकते।

प्रशासनिक केंद्रीकरण : विभिन्न विभागों के केंद्रीकृत निर्णय ग्राम सभा की स्वायत्तता को सीमित कर सकते हैं।

कानूनी अंतर्विरोध : PESA, वन कानून, खनिज कानून, भूमि कानून और अन्य राज्य कानूनों के बीच सामंजस्य आवश्यक है।

ग्राम सभा की संस्थागत क्षमता : ग्राम सभा को केवल अधिकार देने के बजाय उसे प्रशासनिक, तकनीकी एवं वित्तीय क्षमता भी प्रदान करनी होगी।

राजनीतिक हस्तक्षेप : स्थानीय शक्ति-संबंध ग्राम सभा के निर्णयों को प्रभावित कर सकते हैं।

अभिजात्य कब्जा : स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली समूह सामुदायिक संस्थाओं पर नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं।

महिला सहभागिता : औपचारिक प्रतिनिधित्व के बावजूद वास्तविक निर्णयकारी भागीदारी सीमित रह सकती है।

संसाधनों की कमी : बिना वित्तीय संसाधनों के ग्राम सभा के अधिकार प्रभावी प्रशासन में परिवर्तित नहीं हो सकते।

PESA की प्रभावशीलता के लिए प्रस्तावित विश्लेषणात्मक मॉडल :

इस अध्ययन में PESA की प्रभावशीलता को निम्नलिखित मॉडल से समझा जा सकता है—

PESA के वैधानिक अधिकार

↓

ग्राम सभा की जागरूकता

↓

निर्णय में सहभागिता

↓

कार्य एवं वित्तीय अधिकार

↓

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

↓

सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तीकरण

↓

जनजातीय स्वशासन

इस मॉडल में यदि किसी स्तर पर संस्थागत बाधा उत्पन्न होती है तो PESA का अंतिम परिणाम प्रभावित हो सकता है।

प्रस्तावित प्राथमिक सर्वेक्षण के लिए नमूना संरचना : यदि शोधार्थी वास्तविक क्षेत्रीय अध्ययन करना चाहता है, तो उदाहरणार्थ निम्न नमूना संरचना अपनाई जा सकती है:

क्षेत्र	संभावित चयन
बस्तर संभाग	100
सरगुजा संभाग	100
दुर्ग/राजनांदगांव अनुसूचित क्षेत्र	50
रायपुर/धमतरी/गरियाबंद क्षेत्र	50
रायगढ़/कोरबा क्षेत्र	50
कुल	**350**

महत्वपूर्ण: यह **प्रस्तावित शोध-नमूना** है, वास्तविक सर्वेक्षण का परिणाम नहीं। शोध-पत्र में इसे "काल्पनिक प्राप्ति" के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए।

अपेक्षित शोध निष्कर्ष : उपलब्ध साहित्य और आधिकारिक दस्तावेजों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि—

1. PESA ने जनजातीय स्वशासन के लिए मजबूत कानूनी आधार प्रदान किया है।
2. ग्राम सभा PESA की सबसे महत्वपूर्ण संस्था है।
3. छत्तीसगढ़ में PESA का महत्व राज्य की बड़ी ST आबादी और विस्तृत अनुसूचित क्षेत्र के कारण अधिक है।
4. PESA Rules, 2022 ने कानून के क्रियान्वयन के लिए महत्वपूर्ण संस्थागत आधार प्रदान किया है।
5. कानून और वास्तविक क्रियान्वयन के बीच अंतर अभी भी प्रमुख समस्या है।
6. जागरूकता एवं क्षमता निर्माण PESA की प्रभावशीलता की प्रमुख शर्तें हैं।
7. भूमि और प्राकृतिक संसाधन शासन में PESA की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।
8. प्रशासनिक समन्वय PESA की सफलता के लिए आवश्यक है।
9. महिलाओं की वास्तविक भागीदारी को PESA मूल्यांकन का स्वतंत्र संकेतक बनाना चाहिए।
10. PESA के प्रभाव को केवल संस्थागत संरचना से नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक परिणामों से भी मापा जाना चाहिए।

निष्कर्ष :-

छत्तीसगढ़ में PESA अधिनियम और जनजातीय स्वशासन का प्रश्न भारतीय लोकतंत्र के विकेंद्रीकरण, जनजातीय अधिकारों और सहभागी विकास के व्यापक विमर्श से जुड़ा हुआ है। PESA ने अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा को स्थानीय स्वशासन की केंद्रीय संस्था के रूप में स्थापित करके जनजातीय समुदायों को उनकी परंपराओं, संस्कृति और सामुदायिक संसाधनों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण वैधानिक आधार दिया। छत्तीसगढ़ में इसकी प्रासंगिकता विशेष रूप से अधिक है। राज्य में 2011 के अनुसार 78.22 लाख अनुसूचित जनजाति आबादी थी और लगभग 65 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र अनुसूचित क्षेत्र के अंतर्गत बताया गया है। छत्तीसगढ़ द्वारा 2022 में

PESA Rules अधिसूचित किया जाना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण संस्थागत कदम है। लेकिन नियमों का निर्माण अपने आप में अंतिम उपलब्धि नहीं है। वास्तविक सफलता इस बात से निर्धारित होगी कि ग्राम सभा को व्यवहार में कितनी निर्णयकारी शक्ति प्राप्त होती है। NIRDPR के छत्तीसगढ़ अध्ययन ने भी PESA को पारंपरिक शासन, ग्राम सभा, आजीविका, विकास योजनाओं तथा शासन संबंधी चुनौतियों से जोड़कर देखा है। अतः PESA को केवल **"पंचायत कानून"** के रूप में नहीं बल्कि **"जनजातीय स्वशासन का संस्थागत माध्यम"** माना जाना चाहिए।

सुझाव :

1. **PESA अधिकारों की स्थानीय भाषा में जानकारी :** ग्राम सभा सदस्यों के लिए स्थानीय भाषाओं में सरल PESA पुस्तिका तैयार की जानी चाहिए।
2. **ग्राम सभा क्षमता निर्माण :** ग्राम सभा सदस्यों को भूमि, वन, खनिज, बजट एवं सरकारी योजनाओं संबंधी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
3. **PESA प्रशिक्षण को नियमित बनाया जाए :** प्रशिक्षण एक बार का कार्यक्रम न होकर निरंतर क्षमता-विकास प्रक्रिया होना चाहिए।
4. **विभागीय समन्वय :** पंचायत, वन, राजस्व, खनिज एवं जनजातीय विभागों के लिए संयुक्त PESA प्रोटोकॉल विकसित किया जाना चाहिए।
5. **ग्राम सभा निर्णयों की पारदर्शिता :** ग्राम सभा के प्रस्तावों और निर्णयों को सार्वजनिक एवं डिजिटल रिकॉर्ड में उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
6. **महिला नेतृत्व :** महिलाओं की उपस्थिति के साथ-साथ उनकी वास्तविक निर्णयकारी भूमिका सुनिश्चित की जानी चाहिए।
7. **सामाजिक लेखा-परीक्षण :** ग्राम सभा को स्थानीय विकास योजनाओं के सामाजिक लेखा-परीक्षण में अधिक प्रभावी भूमिका दी जानी चाहिए।
8. **प्राकृतिक संसाधनों में स्थानीय भागीदारी :** जल-जंगल-जमीन संबंधी योजनाओं में ग्राम सभा को वास्तविक भागीदारी प्रदान की जानी चाहिए।
9. **PESA Impact Index :** छत्तीसगढ़ में PESA की प्रभावशीलता मापने के लिए एक **PESA Implementation Index** विकसित किया जा सकता है।
10. **स्वतंत्र मूल्यांकन :** हर 3–5 वर्ष में PESA के क्रियान्वयन का स्वतंत्र अकादमिक/सामाजिक ऑडिट किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. Government of India. (1996). *The Provisions of the Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act, 1996*. India Code.
2. Ministry of Panchayati Raj, Government of India. *PESA Act and PESA Rules*.
3. Government of Chhattisgarh, Department of Tribal and Scheduled Caste Development. *Important Statistics*.
4. Government of Chhattisgarh. *Scheduled Areas*. Department of Tribal and Scheduled Caste Development.
5. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). *District-wise Scheduled Tribe Population, Chhattisgarh*.

6. Choubey, K. N. (2015). *The Public Life of a 'Progressive' Law: PESA and Gaon Ganarajya (Village Republic).*
7. Choubey, K. N. (2016). *The State, Tribals and Law: The Politics behind the Enactment of PESA and FRA.*
8. Nayakara, V. (2022). *Land Governance in Fifth Schedule Areas: A Critical Analysis of Chhattisgarh State.*
9. Ota, A. B., Mohanty, K. K., & Gomang, A. K. (2010). *PESA Act & Its Implementation in Tribal Areas of Orissa: An Empirical Evaluation.*
10. NIRDPR. *Status of Implementation and Governance Challenges of PESA Act in Extremist Affected Areas: A Study in Chhattisgarh.*
11. Prasad, S., & Sole, N. A. (2023). *Tribal Self-Governance in Jharkhand: Insights into the Implementation of Self-Rule through Pathalgadi Practices.*
12. Bara, A. H. *Forest, Adivasis and the Rule of Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) in Jharkhand: A Critical Inquiry.*
13. Philip, P. M. *Traditional Tribal Governance Systems and Formal Gram Panchayats of Madhya Pradesh in the Context of the PESA Act, 1996.*
14. Behera, M. K. (2025). *Implementation and Impact of the PESA Act on Local Self-Governance: A Study of Gram Sabhas in Scheduled Areas of Odisha.*
15. Kindo, D. P. (2025). *Twenty-eight years of the PESA Act in India: Development or Deprivation? Perspectives of Elected Tribal Leaders.*
16. Hnaihly, J., & Kumar, V. (2026). *Tribal Autonomy in India: Constitutional Framework, Legal Realities and Governance Challenges.*

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 28-40

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

मध्यप्रदेश में पर्यटन स्थलों का महत्व एवं व्यवसाय की भूमिका

डॉ. एन. के. पाटीदार
प्राध्यापक (वाणिज्य)
शासकीय एम. जी. कालेज जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
सुनील कुमार साकेत
शोधार्थी (वाणिज्य)
सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

सारांश :-

मध्यप्रदेश भारत के प्रमुख पर्यटन राज्यों में से एक है। यह राज्य अपनी ऐतिहासिक धरोहरों, धार्मिक स्थलों, प्राकृतिक सौंदर्य, वन्यजीव अभयारण्यों, सांस्कृतिक विविधता तथा पुरातात्त्विक महत्त्व के कारण देश-विदेश के पर्यटकों को आकर्षित करता है। खजुराहो के मंदिर, साँची का बौद्ध स्तूप, भीमबेटका की शैलचित्र गुफाएँ, उज्जैन का महाकालेश्वर मंदिर, ओंकारेश्वर, ग्वालियर का किला, मांडू की ऐतिहासिक इमारतें, कान्हा एवं बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान तथा पचमढ़ी जैसे पर्यटन स्थल राज्य की विशिष्ट पहचान हैं।

पर्यटन केवल मनोरंजन अथवा धार्मिक यात्रा का साधन नहीं है, बल्कि यह आर्थिक विकास, रोजगार सृजन, स्थानीय उद्यमिता, परिवहन, होटल व्यवसाय, हस्तशिल्प, खानपान, विपणन तथा सेवा क्षेत्र के विस्तार का महत्त्वपूर्ण माध्यम भी है। पर्यटन व्यवसाय के विकास से स्थानीय लोगों की आय में वृद्धि, ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन, सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण तथा क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने की संभावनाएँ उत्पन्न होती हैं। तथापि, आधारभूत सुविधाओं की कमी, पर्यावरणीय दबाव, कुशल मानव संसाधन का अभाव, मौसमी रोजगार तथा पर्यटन स्थलों के असमान विकास जैसी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य मध्यप्रदेश के प्रमुख पर्यटन स्थलों के महत्त्व का विश्लेषण करना तथा राज्य के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में पर्यटन व्यवसाय की भूमिका को सारणियों और व्याख्यात्मक विश्लेषण के माध्यम से स्पष्ट करना है। अध्ययन में द्वितीयक आँकड़ों, सरकारी

प्रकाशनों, पर्यटन संबंधी नीतिगत दस्तावेजों तथा विषयगत विश्लेषण पर आधारित अध्ययन-पद्धति अपनाने का प्रस्ताव है।

मुख्य शब्द : मध्यप्रदेश, पर्यटन स्थल, पर्यटन व्यवसाय, आर्थिक विकास, रोजगार, सांस्कृतिक विरासत, सतत पर्यटन।

प्रस्तावना :

पर्यटन आधुनिक अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण सेवा क्षेत्र है। वर्तमान समय में पर्यटन का स्वरूप केवल ऐतिहासिक इमारतों अथवा धार्मिक स्थलों के दर्शन तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें प्राकृतिक पर्यटन, वन्यजीव पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन, सांस्कृतिक पर्यटन, साहसिक पर्यटन, चिकित्सा पर्यटन तथा व्यावसायिक पर्यटन भी सम्मिलित हैं। पर्यटन के माध्यम से किसी क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान को व्यापक स्तर पर प्रचारित किया जा सकता है तथा स्थानीय संसाधनों को आर्थिक गतिविधियों से जोड़ा जा सकता है।

भारत के मध्य भाग में स्थित मध्यप्रदेश भौगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक और प्राकृतिक दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखता है। राज्य में प्राचीन मंदिरों, बौद्ध स्मारकों, ऐतिहासिक दुर्गों, महलों, गुफाओं, राष्ट्रीय उद्यानों, जलप्रपातों तथा पर्वतीय क्षेत्रों की समृद्ध विविधता उपलब्ध है। इस विविधता के कारण मध्यप्रदेश में विभिन्न रुचियों वाले पर्यटकों के लिए आकर्षण मौजूद हैं।

पर्यटन स्थलों के विकास का प्रभाव स्थानीय अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्रों पर पड़ता है। पर्यटकों की यात्रा से होटल, अतिथि गृह, परिवहन, भोजनालय, स्थानीय बाजार, गाइड सेवा, हस्तशिल्प, धार्मिक सामग्री, मनोरंजन तथा डिजिटल बुकिंग जैसी गतिविधियों को प्रोत्साहन मिलता है। परिणामस्वरूप पर्यटन एक ऐसी आर्थिक गतिविधि बन जाता है जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के रोजगार उत्पन्न कर सकती है।

हालाँकि, पर्यटन से प्राप्त आर्थिक लाभ स्वतः सभी समुदायों तक समान रूप से नहीं पहुँचते। इसके लिए स्थानीय निवासियों की भागीदारी, उचित आधारभूत संरचना, पर्यावरण संरक्षण, प्रभावी विपणन, प्रशिक्षित कर्मचारियों तथा पारदर्शी प्रबंधन की आवश्यकता होती है। इसलिए मध्यप्रदेश में पर्यटन स्थलों के महत्त्व का अध्ययन करते समय उनके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पक्षों के साथ-साथ पर्यटन व्यवसाय की आर्थिक भूमिका और विकास संबंधी चुनौतियों का विश्लेषण करना भी आवश्यक है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व :

मध्यप्रदेश में पर्यटन की व्यापक संभावनाएँ होने के बावजूद विभिन्न पर्यटन स्थलों के विकास, प्रचार-प्रसार, स्थानीय रोजगार और व्यवसायिक सुविधाओं का स्तर एकसमान नहीं है। कुछ स्थल राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पहचान रखते हैं, जबकि अनेक ग्रामीण, प्राकृतिक और सांस्कृतिक स्थल अपेक्षाकृत कम प्रसिद्ध हैं।

इस अध्ययन की आवश्यकता निम्नलिखित आधारों पर स्पष्ट होती है :

1. राज्य के प्रमुख पर्यटन स्थलों के ऐतिहासिक, धार्मिक, प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व का व्यवस्थित अध्ययन करना।
2. पर्यटन व्यवसाय द्वारा रोजगार और स्थानीय आय सृजन की संभावनाओं को समझना।
3. होटल, परिवहन, खानपान, हस्तशिल्प तथा अन्य सहायक व्यवसायों के साथ पर्यटन के संबंध का विश्लेषण करना।
4. पर्यटन विकास में आधारभूत सुविधाओं और डिजिटल प्रचार की भूमिका का अध्ययन करना।
5. पर्यावरणीय संरक्षण एवं स्थानीय समुदायों की भागीदारी के आधार पर सतत पर्यटन की संभावनाओं को पहचानना।
6. पर्यटन क्षेत्र की प्रमुख समस्याओं के समाधान हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध के उद्देश्य :

प्रस्तुत शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- मध्यप्रदेश के प्रमुख पर्यटन स्थलों की पहचान करना तथा उनके महत्त्व का विश्लेषण करना।
- राज्य की अर्थव्यवस्था में पर्यटन व्यवसाय के योगदान का अध्ययन करना।
- पर्यटन के माध्यम से रोजगार, स्वरोजगार एवं स्थानीय उद्यमिता की संभावनाओं का मूल्यांकन करना।
- धार्मिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक तथा वन्यजीव पर्यटन के व्यावसायिक पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- पर्यटन विकास में विद्यमान समस्याओं और चुनौतियों का विश्लेषण करना।
- मध्यप्रदेश में समावेशी, पर्यावरण-अनुकूल एवं सतत पर्यटन विकास के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध-पद्धति :

यह शोध-पत्र मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें पर्यटन स्थलों की विशेषताओं, पर्यटन व्यवसाय के विभिन्न घटकों तथा क्षेत्रीय आर्थिक विकास के बीच संबंधों का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के प्रमुख घटक :

द्वितीयक आँकड़े : मध्यप्रदेश पर्यटन विभाग, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण तथा आर्थिक सर्वेक्षण से उपलब्ध प्रासंगिक आँकड़े और रिपोर्टें।

विश्लेषण की तकनीक : वर्णनात्मक विश्लेषण, सारणीकरण, पर्यटन स्थलों का वर्गीकरण, तुलनात्मक अध्ययन तथा आर्थिक प्रभावों का विषयगत विश्लेषण।

अध्ययन क्षेत्र : मध्यप्रदेश के चयनित ऐतिहासिक, धार्मिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं वन्यजीव पर्यटन स्थल।

मध्यप्रदेश के प्रमुख पर्यटन स्थलों का परिचय एवं महत्त्व :

मध्यप्रदेश के पर्यटन स्थलों को उनके स्वरूप, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और आकर्षण के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इससे पर्यटन व्यवसाय की प्रकृति तथा प्रत्येक स्थल से जुड़ी आर्थिक गतिविधियों को समझने में सहायता मिलती है।

सारणी 1: मध्यप्रदेश के प्रमुख पर्यटन स्थल एवं उनकी विशेषताएँ

पर्यटन स्थल	प्रमुख आकर्षण	पर्यटन का स्वरूप
खजुराहो	चंदेलकालीन मंदिर एवं मूर्तिकला	ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक
साँची	बौद्ध स्तूप एवं पुरातात्त्विक धरोहर	धार्मिक एवं विरासत
भीमबेटका	प्रागैतिहासिक शैलाश्रय एवं चित्रकला	पुरातात्त्विक एवं शैक्षिक
उज्जैन	महाकालेश्वर मंदिर एवं धार्मिक आयोजन	धार्मिक
ओंकारेश्वर	ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग एवं नर्मदा तट	धार्मिक एवं प्राकृतिक
ग्वालियर	ग्वालियर दुर्ग, महल एवं संगीत परंपरा	ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक
मांडू	ऐतिहासिक महल, स्मारक एवं स्थापत्य	ऐतिहासिक
पचमढ़ी	पहाड़ियाँ, वन, झरने एवं प्राकृतिक दृश्य	प्राकृतिक एवं पर्वतीय
कान्हा राष्ट्रीय उद्यान	बाघ, बारहसिंगा एवं जैव विविधता	वन्यजीव एवं इको-टूरिज्म
बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान	बाघ दर्शन एवं वन्यजीव	वन्यजीव पर्यटन
भोपाल	झीलें, संग्रहालय एवं सांस्कृतिक संस्थान	शहरी एवं सांस्कृतिक

स्रोत: पर्यटन स्थलों की सामान्यतः ज्ञात विशेषताओं के आधार पर शोधार्थी द्वारा संकलित।

सारणी की व्याख्या : उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि मध्यप्रदेश में पर्यटन का आधार बहुआयामी है। खजुराहो, साँची और भीमबेटका ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक पर्यटन को प्रोत्साहित करते हैं। उज्जैन और ओंकारेश्वर धार्मिक पर्यटन के प्रमुख केंद्र हैं, जहाँ तीर्थयात्रियों की आवाजाही से परिवहन, आवास, भोजन, पूजा-सामग्री तथा स्थानीय व्यापार को प्रोत्साहन मिल सकता है।

दूसरी ओर, कान्हा और बांधवगढ़ जैसे राष्ट्रीय उद्यान वन्यजीव पर्यटन के विकास में महत्त्वपूर्ण हैं। इनके आसपास गाइड सेवा, वाहन संचालन, होमस्टे, स्थानीय भोजन तथा अन्य पर्यटन-संबंधी व्यवसाय विकसित हो सकते हैं। पचमढ़ी जैसे प्राकृतिक स्थल विश्राम, प्रकृति-अवलोकन तथा साहसिक गतिविधियों के लिए अवसर प्रदान करते हैं।

इस प्रकार पर्यटन स्थलों की विविधता राज्य को एक ही प्रकार के पर्यटन पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न पर्यटन उत्पाद विकसित करने का अवसर देती है।

पर्यटन स्थलों का आर्थिक महत्त्व :

पर्यटन स्थलों का आर्थिक महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि वे स्थानीय संसाधनों को बाजार से जोड़ते हैं। किसी पर्यटन स्थल पर पर्यटक द्वारा किया गया व्यय केवल प्रवेश टिकट अथवा यात्रा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसका एक भाग होटल, भोजनालय, स्थानीय परिवहन, दुकानों, हस्तशिल्प, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और अन्य सेवाओं तक पहुँचता है।

आय एवं रोजगार का सृजन : पर्यटन व्यवसाय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के रोजगार उपलब्ध होते हैं। होटल कर्मचारी, टूर गाइड, वाहन चालक, टिकट कर्मचारी तथा यात्रा संचालक प्रत्यक्ष रोजगार के उदाहरण हैं। वहीं, किसानों द्वारा खाद्य सामग्री की आपूर्ति, स्थानीय कारीगरों द्वारा स्मृति-चिह्नों का निर्माण तथा दुकानदारों द्वारा पर्यटकों को वस्तुएँ उपलब्ध कराना अप्रत्यक्ष आर्थिक गतिविधियाँ हैं।

स्थानीय बाजारों का विकास : पर्यटन से स्थानीय उत्पादों की माँग बढ़ सकती है। हस्तशिल्प, पारंपरिक वस्त्र, जनजातीय कलाकृतियाँ, स्थानीय खाद्य पदार्थ और स्मृति-चिह्न पर्यटकों के लिए आकर्षण बन सकते हैं। इससे छोटे दुकानदारों, स्वयं सहायता समूहों और स्थानीय उत्पादकों को बाजार उपलब्ध होने की संभावना बढ़ती है।

आधारभूत संरचना का विकास : पर्यटन के विस्तार के लिए सड़क, सार्वजनिक परिवहन, स्वच्छ पेयजल, शौचालय, प्रकाश व्यवस्था, इंटरनेट, स्वास्थ्य सुविधाएँ तथा संकेतक आवश्यक हैं। इन सुविधाओं का विकास पर्यटकों के साथ-साथ स्थानीय निवासियों के जीवन स्तर में भी सुधार कर सकता है।

सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण : ऐतिहासिक स्मारकों, मंदिरों, दुर्गों, लोककलाओं और पारंपरिक शिल्पों के प्रति पर्यटकों की रुचि संरक्षण के लिए आर्थिक प्रोत्साहन उत्पन्न कर सकती है। हालाँकि, इसके लिए पर्यटन आय का उचित उपयोग, स्मारकों की वहन क्षमता का ध्यान और जिम्मेदार प्रबंधन आवश्यक है।

मध्यप्रदेश में पर्यटन व्यवसाय की भूमिका : पर्यटन व्यवसाय विभिन्न सेवाओं और उद्यमों का ऐसा समूह है, जो पर्यटक की यात्रा की योजना बनाने से लेकर उसके ठहरने, भोजन, भ्रमण और खरीदारी तक की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

सारणी 2: पर्यटन व्यवसाय के प्रमुख घटक एवं उनकी भूमिका

व्यवसाय का प्रकार	प्रमुख गतिविधियाँ	स्थानीय अर्थव्यवस्था में भूमिका
होटल एवं आवास	होटल, रिसॉर्ट, अतिथि गृह, होमस्टे	आय एवं रोजगार
परिवहन	टैक्सी, बस, पर्यटक वाहन, स्थानीय परिवहन	आवागमन एवं सहायक रोजगार
यात्रा एजेंसी	पैकेज टूर, टिकट, यात्रा नियोजन	पर्यटन सेवाओं का संगठन
खानपान	रेस्तराँ, ढाबे, स्थानीय व्यंजन	खाद्य व्यवसाय एवं आपूर्ति शृंखला
टूर गाइड	ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक जानकारी	स्थानीय ज्ञान का उपयोग एवं रोजगार
हस्तशिल्प	कलाकृतियाँ, स्मृति-चिह्न, पारंपरिक उत्पाद	कारीगरों एवं लघु उद्यमों को बाजार

डिजिटल पर्यटन	ऑनलाइन बुकिंग, वेबसाइट, डिजिटल प्रचार	पहुँच एवं विपणन में विस्तार
साहसिक एवं प्रकृति पर्यटन	प्रकृति भ्रमण, अधिकृत साहसिक गतिविधियाँ	विविध पर्यटन उत्पादों का विकास
सांस्कृतिक कार्यक्रम	लोकनृत्य, संगीत, उत्सव एवं प्रदर्शनियाँ	सांस्कृतिक पहचान एवं स्थानीय आय

स्रोत: पर्यटन व्यवसाय की सामान्य संरचना के आधार पर शोधार्थी द्वारा संकलित।

सारणी की व्याख्या : इस सारणी से स्पष्ट होता है कि पर्यटन व्यवसाय अनेक परस्पर संबद्ध क्षेत्रों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, उज्जैन आने वाला तीर्थयात्री परिवहन, आवास, भोजन और धार्मिक सामग्री पर व्यय कर सकता है। इसी प्रकार खजुराहो आने वाला पर्यटक स्थानीय गाइड, होटल, हस्तशिल्प और सांस्कृतिक कार्यक्रमों से जुड़ी सेवाओं का उपयोग कर सकता है।

डिजिटल पर्यटन का महत्त्व भी लगातार बढ़ रहा है। वेबसाइट, ऑनलाइन आरक्षण, डिजिटल भुगतान, सोशल मीडिया तथा वर्चुअल प्रचार के माध्यम से छोटे व्यवसाय भी संभावित पर्यटकों तक पहुँच सकते हैं। हालाँकि, इसका लाभ प्राप्त करने के लिए डिजिटल साक्षरता, विश्वसनीय जानकारी और सेवा की गुणवत्ता आवश्यक है।

इसलिए पर्यटन व्यवसाय को केवल होटल अथवा यात्रा एजेंसी तक सीमित मानना उचित नहीं है। यह एक व्यापक आर्थिक तंत्र है, जिसमें अनेक छोटे-बड़े उद्यम और सेवा प्रदाता शामिल होते हैं।

मध्यप्रदेश में पर्यटन की स्थिति: आधिकारिक आँकड़ों का विश्लेषण :

पर्यटन के महत्त्व का मूल्यांकन करने के लिए पर्यटक आगमन संबंधी आधिकारिक आँकड़े उपयोगी आधार प्रदान करते हैं। भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय के संसदीय उत्तर में वर्ष 2024 के लिए मध्यप्रदेश में घरेलू और विदेशी पर्यटक यात्राओं के निम्नलिखित आँकड़े दिए गए हैं।

सारणी 3: मध्यप्रदेश में पर्यटक यात्राएँ, 2024

पर्यटक श्रेणी	पर्यटक यात्राओं की संख्या
घरेलू पर्यटक यात्राएँ (DTVs)	13,31,76,410
विदेशी पर्यटक यात्राएँ (FTVs)	1,67,535
कुल दर्ज यात्राएँ	13,33,43,945

स्रोत: पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार, संसदीय उत्तर, दिसंबर 2025 में प्रकाशित वर्ष 2024 के राज्यवार आँकड़े।

आँकड़ों की व्याख्या :

सारणी के अनुसार, वर्ष 2024 में मध्यप्रदेश के लिए लगभग 13.32 करोड़ घरेलू पर्यटक यात्राएँ तथा 1.68 लाख विदेशी पर्यटक यात्राएँ दर्ज की गईं। इन दोनों श्रेणियों का योग लगभग 13.33 करोड़ यात्राएँ है। इन आँकड़ों से राज्य में घरेलू पर्यटन की व्यापकता का संकेत मिलता है। धार्मिक स्थलों,

ऐतिहासिक स्मारकों, प्राकृतिक आकर्षणों और वन्यजीव क्षेत्रों की विविधता घरेलू पर्यटन के विकास में सहायक हो सकती है। बड़ी संख्या में दर्ज यात्राएँ आवास, परिवहन, खानपान तथा स्थानीय व्यापार के लिए संभावित बाजार का संकेत भी देती हैं।

हालाँकि, इन आँकड़ों की व्याख्या करते समय दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं :

1. पर्यटक यात्राएँ और अलग-अलग पर्यटकों की संख्या एक समान नहीं हैं। एक ही व्यक्ति की अलग यात्राएँ या विभिन्न स्थलों पर उसकी यात्राएँ अलग-अलग दर्ज हो सकती हैं।
2. पर्यटक यात्राओं की संख्या से पर्यटन आय का सटीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसके लिए पर्यटकों के औसत व्यय, ठहरने की अवधि, आवास व्यय, स्थानीय खरीदारी तथा रोजगार संबंधी अलग आँकड़ों की आवश्यकता होगी।

इसलिए पर्यटन विकास का वास्तविक मूल्यांकन पर्यटक यात्राओं के साथ-साथ स्थानीय आय, रोजगार, औसत ठहराव, पर्यटकों की संतुष्टि और पर्यावरणीय प्रभावों के आधार पर भी किया जाना चाहिए।

पर्यटन व्यवसाय का रोजगार एवं उद्यमिता पर प्रभाव :

पर्यटन व्यवसाय की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें बड़े निवेश वाले उद्यमों के साथ-साथ छोटे और घरेलू स्तर के व्यवसायों के लिए भी अवसर उपलब्ध होते हैं। स्थानीय युवा, महिलाएँ, कारीगर, किसान तथा स्वयं सहायता समूह पर्यटन से जुड़ी सेवाओं और उत्पादों के माध्यम से आय अर्जित कर सकते हैं।

सारणी 4: पर्यटन व्यवसाय से रोजगार एवं उद्यमिता के अवसर

लाभार्थी वर्ग	संभावित व्यवसाय	अपेक्षित आर्थिक लाभ
स्थानीय युवा	टूर गाइड, ट्रैवल एजेंसी, डिजिटल प्रचार	स्वरोजगार एवं कौशल विकास
महिलाएँ	होमस्टे, खानपान, हस्तशिल्प	घरेलू आय में वृद्धि
स्थानीय कारीगर	स्मृति-चिह्न, पारंपरिक कलाकृतियाँ	उत्पादों की बिक्री
किसान	स्थानीय खाद्य सामग्री की आपूर्ति	अतिरिक्त बाजार
वाहन संचालक	टैक्सी, पर्यटक वाहन	सेवा आधारित आय
ग्रामीण परिवार	ग्रामीण पर्यटन एवं सांस्कृतिक अनुभव	स्थानीय रोजगार
लघु उद्यमी	होटल, कैफे, दुकान एवं पैकेज टूर	व्यवसाय विस्तार

स्रोत: पर्यटन व्यवसाय के संभावित प्रभावों का शोधार्थी द्वारा विश्लेषण; यह वास्तविक लाभार्थियों की गणना नहीं है।

सारणी की व्याख्या :

उपर्युक्त सारणी यह स्पष्ट करती है कि पर्यटन से आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को बड़े होटल अथवा रिसॉर्ट की स्थापना करना आवश्यक नहीं है। स्थानीय भोजन, पारंपरिक कला, परिवहन, गाइड सेवा तथा छोटे आवासीय उद्यम भी पर्यटन अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन सकते हैं।

उदाहरण के लिए, किसी ऐतिहासिक पर्यटन स्थल के आसपास रहने वाला परिवार पर्यटकों को स्थानीय व्यंजन उपलब्ध करा सकता है। इसी प्रकार, स्थानीय हस्तशिल्प समूह पारंपरिक उत्पादों को पर्यटकों तथा ऑनलाइन बाजार में बेच सकते हैं। यदि ऐसे उद्यमों को प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता, बाजार संपर्क और गुणवत्ता संबंधी मार्गदर्शन प्राप्त हो, तो पर्यटन से होने वाला लाभ स्थानीय समुदाय तक अधिक प्रभावी रूप से पहुँच सकता है।

हालाँकि, रोजगार की वास्तविक मात्रा और आय में वृद्धि को प्रमाणित करने के लिए क्षेत्रीय सर्वेक्षण, उद्यमियों के साक्षात्कार तथा रोजगार संबंधी आँकड़ों की आवश्यकता होगी।

मध्यप्रदेश के पर्यटन व्यवसाय में सरकारी नीतियों की भूमिका :

पर्यटन विकास के लिए सरकारी नीतियाँ, निवेश, सार्वजनिक सुविधाएँ, संरक्षण व्यवस्था तथा निजी क्षेत्र की भागीदारी महत्त्वपूर्ण हैं। मध्यप्रदेश पर्यटन विभाग की आधिकारिक वेबसाइट पर पर्यटन नीति 2025, फिल्म पर्यटन नीति 2025, पर्यटन स्थलों, होमस्टे, यात्रा कार्यक्रमों, पर्यटक गाइड और यात्रा एजेंसियों से संबंधित जानकारी उपलब्ध है।

सारणी 5: पर्यटन विकास के प्रमुख नीतिगत क्षेत्र

नीतिगत क्षेत्र	संभावित कार्य	अपेक्षित परिणाम
पर्यटन अवसंरचना	सड़क, संकेतक, शौचालय, पेयजल एवं पार्किंग	पर्यटक सुविधाओं में सुधार
निजी निवेश	होटल, रिसॉर्ट एवं अन्य पर्यटन सेवाएँ	सेवा क्षमता में वृद्धि
कौशल विकास	गाइड, आतिथ्य, भाषा एवं डिजिटल प्रशिक्षण	सेवा गुणवत्ता में सुधार
ग्रामीण एवं होमस्टे पर्यटन	स्थानीय परिवारों और समूहों की भागीदारी	ग्रामीण आय के अवसर
विरासत संरक्षण	स्मारकों का रखरखाव एवं नियोजित विकास	सांस्कृतिक संपदा का संरक्षण
डिजिटल विपणन	आधिकारिक वेबसाइट, ऑनलाइन बुकिंग एवं प्रचार	पर्यटकों तक बेहतर पहुँच

सतत पर्यटन	कचरा प्रबंधन, जल संरक्षण एवं पर्यावरणीय नियंत्रण	दीर्घकालिक पर्यटन विकास

स्रोत: मध्यप्रदेश पर्यटन विभाग तथा पर्यटन नीति संबंधी आधिकारिक जानकारी के आधार पर विश्लेषण।

व्याख्या :

सरकारी नीतियों का महत्त्व केवल पर्यटन स्थलों की पहचान अथवा प्रचार तक सीमित नहीं है। पर्यटन व्यवसाय के विकास के लिए निवेशकों को स्पष्ट नियम, स्थानीय उद्यमियों को प्रशिक्षण, पर्यटकों को विश्वसनीय जानकारी तथा प्राकृतिक और ऐतिहासिक स्थलों को संरक्षण की आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त, पर्यटन परियोजनाओं में स्थानीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करना आवश्यक है। यदि पर्यटन से होने वाले आर्थिक लाभ का बड़ा हिस्सा बाहरी व्यवसायों तक सीमित रह जाता है, तो स्थानीय लोगों के लिए विकास के अवसर कम हो सकते हैं। इसलिए पर्यटन नीति के क्रियान्वयन में स्थानीय रोजगार, लघु उद्यमों और पर्यावरण संरक्षण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

पर्यटन विकास की प्रमुख समस्याएँ एवं चुनौतियाँ :

मध्यप्रदेश में पर्यटन की संभावनाएँ व्यापक हैं, लेकिन इन संभावनाओं को स्थायी आर्थिक लाभ में बदलने के लिए अनेक समस्याओं का समाधान आवश्यक है।

सारणी 6: पर्यटन विकास की समस्याएँ एवं समाधान

प्रमुख समस्या	संभावित प्रभाव	समाधान की दिशा
परिवहन एवं अंतिम दूरी की सुविधाओं की कमी	पर्यटकों की पहुँच में कठिनाई	बेहतर संपर्क मार्ग एवं सार्वजनिक परिवहन
स्वच्छता और कचरा प्रबंधन की समस्या	पर्यटक अनुभव एवं पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव	नियमित सफाई एवं ठोस अपशिष्ट प्रबंधन
प्रशिक्षित गाइडों की कमी	जानकारी एवं सेवा की गुणवत्ता प्रभावित	प्रमाणित प्रशिक्षण कार्यक्रम
सीमित प्रचार-प्रसार	कम प्रसिद्ध स्थलों की कम पहचान	डिजिटल एवं क्षेत्रीय विपणन
मौसमी पर्यटन	आय और रोजगार में अनिश्चितता	वर्षभर के पर्यटन उत्पाद
पर्यावरण पर दबाव	जैव विविधता एवं प्राकृतिक संसाधनों को नुकसान	वहन क्षमता के अनुसार पर्यटक प्रबंधन

स्थानीय व्यवसायों को सीमित बाजार	आय का असमान वितरण	स्थानीय उत्पादों के विपणन को प्रोत्साहन
सुरक्षा एवं सूचना की कमी	पर्यटकों की असुविधा	सहायता केंद्र, संकेतक एवं शिकायत निवारण

स्रोत: विषयगत विश्लेषण के आधार पर शोधार्थी द्वारा तैयार।

व्याख्या : सारणी से स्पष्ट है कि पर्यटन विकास की समस्याएँ केवल भौतिक सुविधाओं तक सीमित नहीं हैं। इनमें आर्थिक, सामाजिक, प्रबंधकीय तथा पर्यावरणीय आयाम भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी वन्यजीव पर्यटन स्थल पर पर्यटकों की संख्या उसकी पर्यावरणीय क्षमता से अधिक हो जाती है, तो जैव विविधता और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ सकता है।

इसी प्रकार, यदि पर्यटन स्थल तक पहुँचने के साधन सीमित हों या विश्वसनीय ऑनलाइन जानकारी उपलब्ध न हो, तो पर्यटक वहाँ जाने की योजना बनाने से बच सकते हैं। पर्यटन व्यवसाय की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाने के लिए परिवहन, स्वच्छता, सूचना, सुरक्षा और सेवा गुणवत्ता में एक साथ सुधार आवश्यक है।

सतत पर्यटन एवं पर्यावरण संरक्षण :

सतत पर्यटन का अर्थ ऐसा पर्यटन विकास है जिसमें वर्तमान पर्यटकों और स्थानीय समुदायों की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखा जाए।

मध्यप्रदेश के वन्यजीव क्षेत्रों, पर्वतीय स्थलों, नदियों और ऐतिहासिक स्मारकों के लिए सतत पर्यटन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। मध्यप्रदेश पर्यटन विभाग अपनी वेबसाइट पर जिम्मेदार पर्यटन से संबंधित पहल भी प्रस्तुत करता है।

सतत पर्यटन के लिए निम्नलिखित उपाय उपयोगी हो सकते हैं :

1. राष्ट्रीय उद्यानों में निर्धारित नियमों और पर्यावरणीय मानकों के अनुरूप पर्यटक गतिविधियों का संचालन।
2. पर्यटन स्थलों पर प्लास्टिक अपशिष्ट को कम करना और कचरे का उचित निपटान।
3. होटल तथा अन्य आवासीय प्रतिष्ठानों में जल और ऊर्जा की बचत को प्रोत्साहित करना।
4. स्थानीय संस्कृति, परंपराओं और धार्मिक भावनाओं का सम्मान सुनिश्चित करना।
5. स्थानीय समुदायों को पर्यटन योजना और प्रबंधन में शामिल करना।
6. संवेदनशील क्षेत्रों में पर्यटकों की संख्या का वैज्ञानिक आधार पर प्रबंधन करना।
7. पर्यटन व्यवसायों में पर्यावरण-अनुकूल व्यवहार अपनाने के लिए प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन देना।

सतत पर्यटन के माध्यम से आर्थिक लाभ और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित किया जा सकता है। इससे पर्यटन स्थलों की दीर्घकालिक उपयोगिता तथा स्थानीय समुदायों की आजीविका दोनों को सुरक्षित रखने में सहायता मिल सकती है।

शोध के प्रमुख निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन के विषयगत एवं द्वितीयक स्रोतों पर आधारित विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं :

- प्रथम, मध्यप्रदेश में पर्यटन स्थलों की विविधता राज्य की प्रमुख विशेषता है। यहाँ धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक और वन्यजीव पर्यटन के अवसर उपलब्ध हैं।
- द्वितीय, पर्यटन व्यवसाय का प्रभाव अनेक आर्थिक क्षेत्रों पर पड़ता है। होटल, परिवहन, खानपान, हस्तशिल्प, गाइड सेवा तथा यात्रा एजेंसियाँ पर्यटन से संबंधित आर्थिक गतिविधियों के महत्त्वपूर्ण घटक हैं।
- तृतीय, वर्ष 2024 के आधिकारिक राज्यवार आँकड़े मध्यप्रदेश में घरेलू पर्यटक यात्राओं की व्यापकता दर्शाते हैं। फिर भी, पर्यटक यात्राओं की संख्या को सीधे पर्यटन आय अथवा रोजगार का माप नहीं माना जा सकता।
- चतुर्थ, पर्यटन स्थानीय उद्यमिता और स्वरोजगार के अवसर पैदा कर सकता है। विशेष रूप से स्थानीय उत्पादों, होमस्टे, पारंपरिक भोजन और सांस्कृतिक अनुभवों के माध्यम से छोटे उद्यमों को बाजार मिल सकता है।
- पंचम, पर्यटन विकास के लाभों को व्यापक बनाने के लिए आधारभूत सुविधाओं, प्रशिक्षण, डिजिटल विपणन और सेवा गुणवत्ता में सुधार आवश्यक है।
- षष्ठ, पर्यटन का दीर्घकालिक विकास पर्यावरण संरक्षण, ऐतिहासिक धरोहरों के रखरखाव और स्थानीय समुदायों की भागीदारी पर निर्भर करता है।
- सप्तम, पर्यटन के आर्थिक योगदान का विश्वसनीय मूल्यांकन करने के लिए जिलेवार पर्यटक आगमन, औसत व्यय, ठहरने की अवधि, स्थानीय रोजगार और उद्यमों की आय से संबंधित नियमित आँकड़े आवश्यक हैं।

ये निष्कर्ष उपलब्ध स्रोतों एवं विषयगत विश्लेषण पर आधारित हैं। इन्हें प्राथमिक सर्वेक्षण से प्राप्त निष्कर्षों के समान नहीं माना जाना चाहिए।

सुझाव :

मध्यप्रदेश में पर्यटन स्थलों के महत्त्व और पर्यटन व्यवसाय की भूमिका को अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

1. एकीकृत पर्यटन सर्किट का विकास : धार्मिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक स्थलों को सुविधाजनक परिवहन तथा सुव्यवस्थित यात्रा कार्यक्रमों से जोड़ना चाहिए।
2. स्थानीय उद्यमिता को प्रोत्साहन: छोटे होटल, होमस्टे, स्थानीय भोजनालय, हस्तशिल्प समूह और पर्यटक गाइडों को प्रशिक्षण एवं बाजार संपर्क उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

3. डिजिटल पर्यटन का विस्तार: आधिकारिक वेबसाइटों पर यात्रा मार्ग, प्रवेश नियम, आवास, स्थानीय परिवहन, उपलब्ध सुविधाओं और आपातकालीन सहायता की अद्यतन जानकारी उपलब्ध होनी चाहिए।
4. कौशल विकास कार्यक्रम: युवाओं और स्थानीय निवासियों को आतिथ्य प्रबंधन, भाषा, प्राथमिक चिकित्सा, डिजिटल भुगतान तथा पर्यटक सहायता का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
5. पर्यावरण संरक्षण: राष्ट्रीय उद्यानों, नदियों, पर्वतीय स्थलों और ऐतिहासिक स्मारकों पर पर्यटकों के दबाव को नियंत्रित करने के लिए प्रभावी प्रबंधन लागू किया जाना चाहिए।
6. ग्रामीण एवं सांस्कृतिक पर्यटन: स्थानीय मेलों, लोककलाओं, पारंपरिक व्यंजनों और हस्तशिल्प को जिम्मेदार पर्यटन कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए।
7. महिला उद्यमियों की भागीदारी: महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को भोजन, आवास, हस्तशिल्प और स्थानीय उत्पादों की बिक्री के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा बाजार उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
8. पर्यटन आँकड़ों में सुधार: प्रत्येक प्रमुख पर्यटन स्थल पर पर्यटक यात्राओं, ठहरने की अवधि, खर्च, संतुष्टि और रोजगार का व्यवस्थित रिकॉर्ड तैयार किया जाना चाहिए।
9. सुरक्षा एवं स्वच्छता: पर्यटक सहायता केंद्र, स्पष्ट संकेतक, स्वच्छ शौचालय, पेयजल, शिकायत निवारण तथा आवश्यक स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार होना चाहिए।
10. निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में समन्वय: सरकारी संस्थाओं, स्थानीय निकायों, पर्यटन व्यवसायियों और समुदायों के बीच नियमित समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

उपसंहार :

मध्यप्रदेश में पर्यटन स्थलों का महत्त्व ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से व्यापक है। खजुराहो, साँची और भीमबेटका जैसी धरोहरें राज्य की सांस्कृतिक पहचान को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करती हैं। उज्जैन और ओंकारेश्वर जैसे धार्मिक स्थल तीर्थाटन की संभावनाओं को बढ़ाते हैं, जबकि पचमढ़ी तथा राष्ट्रीय उद्यान प्राकृतिक और वन्यजीव पर्यटन के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

पर्यटन व्यवसाय इन विविध आकर्षणों को आर्थिक गतिविधियों में परिवर्तित करने का माध्यम है। इसके अंतर्गत आवास, परिवहन, खानपान, यात्रा नियोजन, गाइड सेवा, हस्तशिल्प तथा डिजिटल विपणन जैसी गतिविधियाँ आती हैं। इनसे स्थानीय आय, रोजगार, स्वरोजगार और लघु उद्यमिता को प्रोत्साहन मिलने की संभावना रहती है।

तथापि, पर्यटन का विकास तभी वास्तविक और दीर्घकालिक आर्थिक लाभ प्रदान कर सकता है जब इसके साथ आधारभूत सुविधाओं का विस्तार, स्थानीय समुदायों की भागीदारी, गुणवत्तापूर्ण सेवाएँ, पारदर्शी प्रबंधन तथा पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित किया जाए। पर्यटन की सफलता को केवल पर्यटकों की संख्या से मापने के बजाय स्थानीय लोगों की आय, रोजगार की गुणवत्ता, पर्यटक संतुष्टि और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के आधार पर भी परखा जाना चाहिए।

अंततः कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश में पर्यटन व्यवसाय आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण संभावनाशील क्षेत्र है। उचित नीतियों, वैज्ञानिक नियोजन, प्रभावी विपणन और सतत विकास की रणनीति के माध्यम से राज्य अपने पर्यटन संसाधनों का बेहतर उपयोग कर सकता है तथा स्थानीय समुदायों के सामाजिक-आर्थिक विकास में योगदान बढ़ा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References)

1. Ministry of Tourism, Government of India. India Tourism Data Compendium 2024.
2. Ministry of Tourism, Government of India. State-wise Domestic and Foreign Tourist Visits, 2024.
3. Madhya Pradesh Tourism Board. Official Tourism Website: Destinations, Experiences and Tourism Policy 2025.
4. UNESCO World Heritage Centre. Khajuraho Group of Monuments.
5. UNESCO World Heritage Centre. Buddhist Monuments at Sanchi.
6. UNESCO World Heritage Centre. Rock Shelters of Bhimbetka.
7. Government of Madhya Pradesh. Madhya Pradesh Tourism Policy 2025.
8. Ministry of Tourism, Government of India. Annual Report 2023–24.
9. Ministry of Tourism, Government of India. India Tourism Statistics and Tourism Data Publications.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 41-48

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण में संगीत की भूमिका

प्रो. डॉ. श्वेता डी. वेगड़
सहयोगी प्राध्यापक, संगीत विभाग,
श्रीमती रेवाबेन मनोहरभाई पटेल महिला कला महाविद्यालय, भंडारा।

सारांश :

भारत विविधताओं से समृद्ध देश है। यहाँ भाषा, वेशभूषा, लोकाचार, धार्मिक विश्वास, पर्व–त्योहार, सामाजिक संस्कार, लोककथाएँ, लोकगीत, नृत्य, वाद्य परंपराएँ तथा शास्त्रीय कलाएँ मिलकर एक व्यापक सांस्कृतिक विरासत का निर्माण करती हैं। इस सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरण में संगीत की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। भारतीय संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि ज्ञान, स्मृति, भावाभिव्यक्ति, सामाजिक एकता, धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक पहचान का माध्यम भी रहा है।

भारतीय परंपरा में संगीत का संबंध जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों, ऋतु–चक्र, कृषि–जीवन, धार्मिक अनुष्ठानों, लोकपर्वों और सामाजिक अवसरों से रहा है। वैदिक मंत्रोच्चार से लेकर ध्रुपद, ख्याल, भजन, कीर्तन, अभंग, लोकगीत, जनजातीय संगीत तथा आधुनिक माध्यमों तक संगीत ने भारतीय जीवन–मूल्यों और सांस्कृतिक स्मृतियों को संरक्षित किया है। UNESCO की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की सूची में भारत की वैदिक मंत्रोच्चार परंपरा, मणिपुर का संकीर्तन, राजस्थान के कालबेलिया लोकगीत एवं नृत्य तथा लद्दाख का बौद्ध मंत्रोच्चार जैसी परंपराओं का सम्मिलित होना संगीत की सांस्कृतिक भूमिका को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी रेखांकित करता है। वर्तमान तकनीकी युग में संगीत के संरक्षण के नए अवसर उपलब्ध हुए हैं, किंतु व्यावसायीकरण, परंपरागत कलाकारों की आर्थिक असुरक्षा, गुरु–शिष्य परंपरा में कमी, लोकभाषाओं के क्षरण तथा सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के सतहीकरण जैसी चुनौतियाँ भी सामने हैं। अतः संगीत की परंपराओं के संरक्षण के लिए मौखिक परंपरा, दस्तावेजीकरण, शिक्षा, शोध, डिजिटल अभिलेखीकरण और कलाकारों के सामाजिक–आर्थिक सशक्तीकरण का समन्वय आवश्यक है।

बीज शब्द : भारतीय संस्कृति, परंपरा, संगीत, सांस्कृतिक संरक्षण, लोकसंगीत, शास्त्रीय संगीत, अमूर्त सांस्कृतिक विरासत, गुरु–शिष्य परंपरा, डिजिटल अभिलेखीकरण।

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन और निरंतर विकसित होने वाली सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप किसी एक भाषा, धर्म, प्रदेश या समुदाय तक सीमित नहीं है। हिमालय से लेकर समुद्र तट तक तथा उत्तर–पूर्व से पश्चिम भारत तक विभिन्न सामाजिक समूहों ने अपनी विशिष्ट जीवन–पद्धतियों,

विश्वासों, कलाओं और परंपराओं को विकसित किया है। इन विविधताओं के मध्य एक सांस्कृतिक निरंतरता भी दिखाई देती है।

संगीत इस सांस्कृतिक निरंतरता का अत्यंत प्रभावी माध्यम है। मनुष्य ने शब्दों के व्यवस्थित रूप से विकसित होने से पूर्व भी ध्वनि, लय और स्वर के माध्यम से भाव व्यक्त किए होंगे। भारतीय परंपरा में नाद को विशेष आध्यात्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व प्राप्त हुआ। संगीत का संबंध केवल सौंदर्यबोध से नहीं, बल्कि साधना, आध्यात्मिकता, सामाजिक सहभागिता और ज्ञान–संप्रेषण से भी जोड़ा गया।

भारतीय संगीत की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक इसकी मौखिक एवं श्रुति–आधारित परंपरा है। गुरु से शिष्य तक रचना, गायकी की शैली, उच्चारण, स्वर–प्रयोग, लयकारी और भावाभिव्यक्ति का हस्तांतरण केवल लिखित ग्रंथों के माध्यम से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष श्रवण और अनुकरण द्वारा होता रहा। UNESCO के एक दस्तावेज में वीणा–संबंधी ज्ञान और संगीत के संदर्भ में भी गुरु–शिष्य तथा पारिवारिक मौखिक परंपरा द्वारा ज्ञान के हस्तांतरण का उल्लेख मिलता है।

इस दृष्टि से संगीत को भारतीय संस्कृति की जीवित स्मृति कहा जा सकता है। एक लोकगीत केवल धुन नहीं होता, उसमें किसी समुदाय का इतिहास, उसकी भाषा, सामाजिक संबंध, श्रम–संस्कृति और भावविश्व भी सुरक्षित रहता है।

शोध की आवश्यकता एवं प्रासंगिकता :

वैश्वीकरण, तीव्र शहरीकरण, डिजिटल मनोरंजन, बदलती जीवनशैली और भाषायी परिवर्तन के कारण अनेक पारंपरिक सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ धीरे–धीरे सीमित होती जा रही हैं। अनेक लोककलाएँ और लोकसंगीत परंपराएँ विशिष्ट कलाकारों या सीमित समुदायों तक सिमट रही हैं।

ऐसी स्थिति में यह समझना आवश्यक है कि संगीत किस प्रकार संस्कृति के संरक्षण का माध्यम बन सकता है तथा आधुनिक तकनीक के माध्यम से इसके संरक्षण को किस प्रकार अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन को महत्त्व दिया गया है। नीति में कला को संस्कृति के संप्रेषण का प्रमुख माध्यम माना गया है और शिक्षा में भारतीय एवं स्थानीय संदर्भों, परंपराओं तथा ज्ञान–परंपराओं को समाहित करने पर बल दिया गया है।

अतः वर्तमान समय में संगीत और सांस्कृतिक संरक्षण के संबंध का अध्ययन शैक्षणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से प्रासंगिक है।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- भारतीय संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण में संगीत की भूमिका का अध्ययन करना।
- शास्त्रीय, लोक, जनजातीय एवं धार्मिक संगीत की सांस्कृतिक भूमिका को स्पष्ट करना।
- संगीत के माध्यम से सांस्कृतिक ज्ञान के पीढ़ीगत हस्तांतरण का अध्ययन करना।
- संगीत, भाषा और लोकस्मृति के अंतर्संबंध का विश्लेषण करना।
- आधुनिक तकनीक द्वारा संगीत परंपराओं के संरक्षण की संभावनाओं का अध्ययन करना।

- पारंपरिक संगीत के संरक्षण में शिक्षा एवं शोध की भूमिका को स्पष्ट करना।
- संगीत परंपराओं के समक्ष उपस्थित चुनौतियों की पहचान करना।
- सांस्कृतिक संरक्षण के लिए व्यावहारिक उपाय प्रस्तुत करना।

शोध–पद्धति :

प्रस्तुत शोध मुख्यतः वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक शोध–पद्धति पर आधारित है। इसके लिए भारतीय संगीत एवं संस्कृति से संबंधित प्रकाशित साहित्य, शैक्षणिक सामग्री, सरकारी दस्तावेज, सांस्कृतिक संस्थाओं की जानकारी तथा UNESCO की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत से संबंधित आधिकारिक सामग्री का अध्ययन किया गया है।

शोध में संगीत को केवल कलात्मक प्रस्तुति के रूप में न देखकर सामाजिक–सांस्कृतिक दस्तावेज के रूप में समझने का प्रयास किया गया है।

भारतीय संस्कृति और संगीत का अंतर्संबंध :

भारतीय जीवन में संगीत का प्रवेश अत्यंत व्यापक है। जन्मोत्सव, नामकरण, विवाह, धार्मिक अनुष्ठान, पर्व–त्योहार, कृषि–कार्य, ऋतु परिवर्तन और सामाजिक उत्सव लगभग प्रत्येक अवसर पर संगीत की कोई न कोई परंपरा दिखाई देती है।

भारतीय संस्कृति की मौखिक परंपराओं में संगीत ने स्मृति को स्थायित्व प्रदान किया। जब लिखित सामग्री सामान्य जनजीवन का प्रमुख माध्यम नहीं थी, तब गीतों के माध्यम से कथाएँ, धार्मिक आख्यान, सामाजिक अनुभव और ऐतिहासिक स्मृतियाँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती थीं।

उदाहरण के लिए लोकगीतों में स्त्रियों के जीवनानुभव, विवाह संबंधी रीति–रिवाज, कृषि–जीवन, ऋतु परिवर्तन तथा सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति मिलती है। इसी प्रकार भक्ति संगीत ने धार्मिक दर्शन और नैतिक मूल्यों को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य किया।

शास्त्रीय संगीत : सांस्कृतिक निरंतरता का माध्यम :

हिंदुस्तानी तथा कर्नाटक संगीत भारतीय संगीत परंपरा की महत्वपूर्ण शास्त्रीय धाराएँ हैं। इनकी संरचना में राग, ताल, स्वर, लय, बंदिश, आलाप और प्रस्तुति–परंपरा का विशिष्ट स्थान है।

शास्त्रीय संगीत का संरक्षण केवल रागों और तालों की सूची को सुरक्षित रखने से संभव नहीं है। इसके लिए गायकी की शैली, राग–विस्तार, स्वर–सौंदर्य, लयकारी, बंदिशों की परंपरा और गुरु–शिष्य संबंध का संरक्षण भी आवश्यक है।

विशेष रूप से बंदिश सांस्कृतिक संरक्षण का महत्वपूर्ण माध्यम है। बंदिश में राग का स्वरूप, भाषा, काव्य, भाव, ताल और तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश एक साथ उपस्थित होते हैं। अनेक पारंपरिक बंदिशों में ऋतु, देव–भक्ति, नायिका–भेद, श्रृंगार, विरह, प्रकृति और सामाजिक जीवन के संदर्भ मिलते हैं।

गुरु–शिष्य परंपरा में संगीत केवल तकनीकी ज्ञान के रूप में नहीं दिया जाता, बल्कि प्रस्तुति की सौंदर्य–दृष्टि, अनुशासन, साधना और परंपरा के प्रति सम्मान भी हस्तांतरित होता है।

लोकसंगीत : जनजीवन की सांस्कृतिक स्मृति :

लोकसंगीत किसी क्षेत्र या समुदाय के सामूहिक जीवन का जीवंत दस्तावेज होता है। इसकी रचनाएँ प्रायः

किसी एक व्यक्ति की बौद्धिक संपत्ति न होकर सामुदायिक अनुभव से विकसित होती हैं।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विवाह गीत, सोहर, कजरी, चैती, सावन गीत, भजन, लोरी, श्रमगीत, फसल गीत, पर्वगीत तथा वीरगाथाएँ लोकजीवन के विभिन्न पक्षों को व्यक्त करती हैं।

लोकसंगीत की विशेषता यह है कि यह स्थानीय भाषा और बोली को जीवित रखता है। किसी लोकगीत के लुप्त होने के साथ उस गीत में प्रयुक्त शब्द, स्थानीय उच्चारण, कहावतें और सांस्कृतिक संदर्भ भी धीरे–धीरे अप्रचलित हो सकते हैं।

इसीलिए लोकसंगीत का संरक्षण वास्तव में भाषायी और सांस्कृतिक संरक्षण भी है।

संगीत नाटक अकादमी का लोक एवं जनजातीय कला विभाग पारंपरिक, लोक और जनजातीय संगीत, नृत्य तथा नाट्य की विरासत के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए कार्य करता है और विभिन्न क्षेत्रों में लोक एवं जनजातीय कलाकारों के उत्सव आयोजित करता रहा है।

जनजातीय संगीत और सांस्कृतिक पहचान :

भारत के जनजातीय समुदायों की संगीत परंपराएँ उनकी सामाजिक संरचना, प्रकृति से संबंध और सामुदायिक जीवन से गहराई से जुड़ी होती हैं। ढोल, मांदर, नगाड़ा, बाँसुरी, तंबूरा, विभिन्न स्थानीय तंत्री तथा ताल वाद्य केवल संगीत के उपकरण नहीं, बल्कि सामुदायिक पहचान के प्रतीक भी होते हैं।

जनजातीय संगीत में प्रकृति की ध्वनियों, पशु–पक्षियों, कृषि, शिकार, ऋतु, उत्सव और सामुदायिक अनुष्ठानों की अभिव्यक्ति मिलती है। इसलिए इन परंपराओं के संरक्षण के लिए केवल संगीत की रिकॉर्डिंग पर्याप्त नहीं है, उसके सामाजिक संदर्भ का भी दस्तावेजीकरण आवश्यक है।

धार्मिक एवं अनुष्ठानिक संगीत :

भारतीय संस्कृति में धार्मिक संगीत का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैदिक मंत्रोच्चार, भजन, कीर्तन, अभंग, सूफी संगीत, गुरबाणी, बौद्ध मंत्रोच्चार तथा विभिन्न क्षेत्रीय धार्मिक गायन–परंपराएँ इसका उदाहरण हैं।

UNESCO की सूची में भारत की वैदिक मंत्रोच्चार परंपरा को 2008 में अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के रूप में शामिल किया गया। इसी प्रकार मणिपुर का संकीर्तन अनुष्ठानिक गायन, वादन और नृत्य 2013 में सूचीबद्ध हुआ।

मणिपुर के संकीर्तन में गायन, नृत्य, मृदंग/पुंग तथा झांझ जैसे वाद्यों का सामूहिक प्रयोग होता है और इसके आख्यानों में कृष्ण–संबंधी कथाएँ महत्वपूर्ण हैं। इससे स्पष्ट होता है कि संगीत किसी धार्मिक परंपरा को केवल ध्वनि के स्तर पर नहीं, बल्कि उसके अनुष्ठान, कथा और सामुदायिक सहभागिता सहित संरक्षित करता है।

संगीत और भारतीय पर्व-परंपराएँ :

भारतीय पर्वों में संगीत की भूमिका अत्यंत व्यापक है। होली, जन्माष्टमी, गणेशोत्सव, नवरात्रि, दीपावली, सावन तीज बैसाखी तथा विभिन्न क्षेत्रीय पर्वों में संगीत सामूहिक सहभागिता का माध्यम बनता है।

उदाहरण के लिए जन्माष्टमी से जुड़े पदों और भजनों में कृष्ण–लीला का सांस्कृतिक स्मरण होता है। गणेशोत्सव में भक्ति संगीत तथा सामूहिक गायन सामाजिक एकता को बढ़ाते हैं। सावन के गीत प्रकृति, वर्षा, प्रेम और स्त्री–जीवन की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं।

इस प्रकार संगीत पर्व को केवल धार्मिक घटना न रखकर उसे सामूहिक सांस्कृतिक अनुभव में बदल देता है।

संगीत, भाषा और सांस्कृतिक स्मृति :

संगीत और भाषा का संबंध अत्यंत गहरा है। गीतों के माध्यम से किसी भाषा की ध्वन्यात्मक विशेषताएँ, मुहावरे, लोकप्रयोग और सांस्कृतिक प्रतीक पीढ़ी–दर–पीढ़ी सुरक्षित रहते हैं।

किसी क्षेत्र की लोकभाषा को समझने के लिए वहाँ के लोकगीतों का अध्ययन अत्यंत उपयोगी हो सकता है। गीतों में प्रयुक्त शब्द उस समाज की जीवन–पद्धति और मानसिकता का संकेत देते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी भाषा, कला और संस्कृति के परस्पर संबंध पर बल देती है तथा यह मानती है कि संस्कृति की रक्षा और संवर्धन के लिए भाषाओं का संरक्षण आवश्यक है।

इस संदर्भ में लोकगीतों का दस्तावेजीकरण भाषायी संरक्षण की महत्वपूर्ण रणनीति बन सकता है।

गुरू–शिष्य परंपरा और सांस्कृतिक हस्तांतरण :

भारतीय संगीत परंपरा में गुरु–शिष्य संबंध का स्थान केंद्रीय रहा है। संगीत की अनेक सूक्ष्मताएँ लिखित रूप में पूरी तरह व्यक्त नहीं की जा सकतीं। स्वर का सूक्ष्म आंदोलन, मींड, गमक, कण, उच्चारण, लय का आंतरिक अनुभव और भावाभिव्यक्ति प्रत्यक्ष अभ्यास द्वारा अधिक प्रभावी ढंग से सीखी जाती है।

इसलिए संगीत की परंपरा के संरक्षण के लिए केवल पुस्तकें प्रकाशित करना पर्याप्त नहीं है। जीवित परंपरा को जीवित कलाकारों और शिक्षकों के माध्यम से आगे बढ़ाना भी आवश्यक है।

आधुनिक समय में गुरु–शिष्य परंपरा को संस्थागत संगीत शिक्षा, कार्यशालाओं, ऑनलाइन शिक्षण और अभिलेखीय सामग्री के साथ जोड़ा जा सकता है।

संगीत और महिलाओं की सांस्कृतिक भूमिका :

भारतीय सांस्कृतिक संरक्षण में महिलाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनेक लोकगीतों का संरक्षण महिलाओं ने घरेलू और सामुदायिक जीवन के माध्यम से किया। विवाह गीत, सोहर, लोरी, सावन गीत और पर्वगीतों में स्त्री अनुभवों की समृद्ध अभिव्यक्ति मिलती है।

इन गीतों में केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि परिवार, सामाजिक संबंध, रीति–रिवाज, लोकविश्वास और स्त्री जीवन के अनुभव भी सुरक्षित रहते हैं।

इस दृष्टि से महिला लोकगायिकाओं और पारंपरिक कलाकारों के मौखिक इतिहास का दस्तावेजीकरण भारतीय सांस्कृतिक शोध का महत्वपूर्ण क्षेत्र हो सकता है।

आधुनिक तकनीक और संगीत संरक्षण :

डिजिटल तकनीक ने संगीत संरक्षण की संभावनाओं को व्यापक बनाया है। आज किसी पारंपरिक गीत, वाद्य, कलाकार या प्रस्तुति का ऑडियो–वीडियो रिकॉर्ड तैयार करके उसे डिजिटल रूप में सुरक्षित किया जा सकता है।

इसके लिए निम्न माध्यम उपयोगी हो सकते हैं :

- डिजिटल ऑडियो अभिलेखागार
- वीडियो डॉक्यूमेंटेशन

- ऑनलाइन संगीत संग्रह
- QR कोड आधारित शैक्षणिक सामग्री
- डिजिटल पुस्तकें
- पॉडकास्ट
- YouTube जैसे वीडियो मंच
- ऑनलाइन संगीत पाठ्यक्रम
- डिजिटल नोटेशन
- कलाकारों के मौखिक इतिहास के रिकॉर्ड
- क्षेत्रीय संगीत का डेटाबेस।

डिजिटल माध्यम का उपयोग केवल प्रस्तुति के लिए नहीं, बल्कि दस्तावेजीकरण और शोध के लिए भी किया जाना चाहिए।

संरक्षण से संवर्धन की ओर :

सांस्कृतिक संरक्षण का अर्थ किसी परंपरा को स्थिर रूप में संग्रहालय में रख देना नहीं है। जीवित परंपराएँ समय के साथ परिवर्तन स्वीकार करती हैं। इसलिए संरक्षण और परिवर्तन के बीच संतुलन आवश्यक है।

उदाहरण के लिए किसी लोकगीत को आधुनिक वाद्यों के साथ प्रस्तुत करना अपने आप में परंपरा का अंत नहीं है, समस्या तब उत्पन्न हो सकती है जब मूल भाषा, धुन, संदर्भ या सांस्कृतिक अर्थ पूरी तरह समाप्त हो जाए।

इसलिए संरक्षण की उचित प्रक्रिया में दो स्तर होने चाहिए :

- पहला – मूल स्वरूप का दस्तावेजीकरण।
- दूसरा – परंपरा के रचनात्मक एवं संदर्भ–सम्मत समकालीन प्रयोग।

वर्तमान चुनौतियाँ :

भारतीय संगीत परंपराओं के संरक्षण के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं :–

1. **गुरू–शिष्य परंपरा का कमजोर होना :**

व्यस्त जीवनशैली और आर्थिक कारणों से पारंपरिक प्रशिक्षण की अवधि कम हो रही है।

2. **लोक कलाकारों की आर्थिक असुरक्षा :**

कई लोक एवं जनजातीय कलाकारों के लिए कला आजीविका का स्थायी साधन नहीं बन पाती।

3. **भाषायी परिवर्तन :**

स्थानीय बोलियों के कम होते प्रयोग के कारण लोकगीतों की मौलिक भाषा भी संकट में पड़ सकती है।

4. **व्यावसायीकरण :**

लोक एवं पारंपरिक संगीत का बाजारू प्रस्तुतीकरण कभी–कभी उसके मूल सांस्कृतिक संदर्भ को कमजोर कर सकता है।

5. **दस्तावेजीकरण का अभाव :**

कई पारंपरिक कलाकारों और दुर्लभ रचनाओं की व्यवस्थित ऑडियो–वीडियो रिकॉर्डिंग उपलब्ध नहीं है।

6. **नई पीढ़ी की सीमित भागीदारी :**

यदि युवा पीढ़ी को इन परंपराओं से जोड़ने के लिए आधुनिक शैक्षणिक और डिजिटल माध्यम विकसित नहीं किए गए, तो कई परंपराओं का हस्तांतरण कठिन हो सकता है।

संरक्षण के लिए संभावित उपाय :

भारतीय संगीत परंपराओं के संरक्षण के लिए निम्न उपाय प्रभावी हो सकते हैं :

1. **विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर स्थानीय संगीत का अध्ययन :**

विद्यार्थियों को अपने क्षेत्र के लोकगीत, लोकवाद्य और संगीत परंपराओं से परिचित कराया जाना चाहिए।

2. **डिजिटल अभिलेखागार :**

प्रत्येक राज्य एवं क्षेत्र के पारंपरिक संगीत का ऑडियो–वीडियो दस्तावेज तैयार किया जाना चाहिए।

3. **वरिष्ठ कलाकारों के मौखिक इतिहास :**

वरिष्ठ कलाकारों के जीवन, प्रशिक्षण, रचनाओं और अनुभवों के वीडियो साक्षात्कार सुरक्षित किए जाने चाहिए।

4. **दुर्लभ वाद्यों का संरक्षण :**

पारंपरिक वाद्यों की संरचना, निर्माण–प्रक्रिया, वादन शैली और कलाकारों का दस्तावेजीकरण आवश्यक है।

5. **गुरू–शिष्य प्रशिक्षण योजनाएँ :**

वरिष्ठ कलाकारों और युवा विद्यार्थियों के बीच दीर्घकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित किए जा सकते हैं।

6. **शोध एवं प्रकाशन :**

लोकसंगीत, बंदिश, वाद्य, गायकी और क्षेत्रीय संगीत पर शोध को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

7. **स्थानीय समुदाय की भागीदारी :**

सांस्कृतिक संरक्षण की प्रक्रिया में संबंधित समुदाय को केवल विषय नहीं, बल्कि सक्रिय भागीदार बनाया जाना चाहिए।

8. **डिजिटल एवं पारंपरिक माध्यम का समन्वय :**

परंपरागत ज्ञान को डिजिटल माध्यमों के साथ जोड़ा जाए, लेकिन उसके मूल सांस्कृतिक संदर्भ को बनाए रखा जाए।

भारतीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ :

भारत की अनेक संगीत एवं प्रदर्शनकारी परंपराओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के संदर्भ में मान्यता मिली है। UNESCO की भारत–संबंधी सूची में वैदिक मंत्रोच्चार, मणिपुर संकीर्तन, कालबेलिया लोकगीत एवं नृत्य तथा लद्दाख का बौद्ध मंत्रोच्चार जैसी परंपराएँ शामिल हैं।

यह तथ्य इस बात को रेखांकित करता है कि संगीत केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि मानव समुदायों की जीवित सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है।

भारत में संगीत, नृत्य और नाटक की अमूर्त विरासत के संरक्षण और संवर्धन के लिए 1953 में स्थापित संगीत नाटक अकादमी की भूमिका भी उल्लेखनीय है। अकादमी स्वयं को देश की प्रदर्शनकारी कलाओं के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर की संस्था के रूप में प्रस्तुत करती है और संगीत, नृत्य तथा नाटक की विविध अमूर्त विरासत

के संरक्षण एवं संवर्धन से संबंधित कार्य करती है।

निष्कर्ष :

भारतीय संस्कृति के संरक्षण में संगीत की भूमिका बहुआयामी है। संगीत ने भारतीय समाज में केवल मनोरंजन प्रदान नहीं किया, बल्कि ज्ञान, स्मृति, आस्था, भाषा, लोकाचार, सामाजिक संबंध और सांस्कृतिक पहचान को पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाने का कार्य किया है।

शास्त्रीय संगीत ने राग, ताल, बंदिश और गुरु–शिष्य परंपरा के माध्यम से सांगीतिक ज्ञान को संरक्षित किया, जबकि लोक एवं जनजातीय संगीत ने स्थानीय जीवन, भाषा, प्रकृति और सामुदायिक स्मृतियों को जीवित रखा। धार्मिक और अनुष्ठानिक संगीत ने आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक परंपराओं को निरंतरता प्रदान की।

वर्तमान डिजिटल युग में संगीत संरक्षण के लिए नए अवसर उपलब्ध हैं। ऑडियो–वीडियो रिकॉर्डिंग, डिजिटल अभिलेखागार, ऑनलाइन शिक्षा, QR आधारित सामग्री और सोशल मीडिया के माध्यम से दुर्लभ संगीत परंपराओं को व्यापक स्तर पर संरक्षित और प्रसारित किया जा सकता है। किंतु तकनीक को परंपरा का विकल्प नहीं, बल्कि उसके संरक्षण का साधन समझना आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति का वास्तविक संरक्षण तभी संभव है जब परंपरा का दस्तावेजीकरण, जीवित कलाकारों का सम्मान, युवा पीढ़ी का प्रशिक्षण, स्थानीय समुदाय की भागीदारी और आधुनिक तकनीक का विवेकपूर्ण उपयोग एक साथ किया जाए।

अतः यह कहा जा सकता है कि संगीत भारतीय संस्कृति का केवल प्रतिबिंब नहीं, बल्कि उसकी जीवंत स्मृति, संवाहक और पीढ़ियों को जोड़ने वाला सेतु है। जिस समाज में उसके गीत, राग, ताल, वाद्य और संगीत–स्मृतियाँ जीवित रहती हैं, वहाँ उसकी सांस्कृतिक पहचान भी अधिक निरंतरता के साथ आगे बढ़ती है।

संदर्भ-सूची :

- भरतमुनि – नाट्यशास्त्र।
- शार्ङ्गदेव – संगीत रत्नाकर।
- पं. विष्णु नारायण भातखंडे – क्रमिक पुस्तक मालिका।
- पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर – भारतीय संगीत शिक्षा एवं संगीत–प्रसार संबंधी परंपरा।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 – भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय।
- संगीत नाटक अकादमी – भारत सरकार, संस्कृति मंत्रालय, आधिकारिक वेबसाइट एवं प्रकाशन।
- UNESCO — Intangible Cultural Heritage : India – Elements on the Lists.
- UNESCO — Sankirtana, Ritual Singing, Drumming and dancing of Manipur.
- UNESCO — Music and Knowledge of the Veena Stringed Instrument, nomination/decision documents.
- UNESCO — Tradition of Vedic Chanting तथा भारत की अन्य अमूर्त सांस्कृतिक विरासत संबंधी अभिलेख।

ई–मेल : ashwetavegad@gmail.com, मोबाइल 9405533682

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 49-52

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

डॉ. कुमार विश्वास की रचनाओं में आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक युगबोध

डॉ. सुमन लता, शोध निर्देशिका
हितेश कुमार, शोधार्थी (हिंदी)
एफ. एस. यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद।

प्रस्तुत शोध पत्र समकालीन हिन्दी गीत–काव्य के शीर्ष पुरुष डॉ. कुमार विश्वास के साहित्य में अंतर्निहित आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक युगबोध का एक विस्तृत और आलोचनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करता है। आधुनिक आलोचना ने बहुधा कुमार विश्वास को मात्र श्रृंगार और युवा–आकर्षण का मंच–शिल्पी स्वीकार किया है, किंतु यह शोध उनके काव्य फलक में समाहित भूमंडलीकरण (Globalization) के प्रभाव, धार्मिक छद्म के प्रति विद्रोही चेतना और समृद्ध भारतीय सांस्कृतिक विरासत के पुनरुत्थान को अकादमिक धरातल पर व्याख्यायित करता है। इस अध्ययन को अधिक प्रामाणिक एवं ऐतिहासिक सातत्य प्रदान करने हेतु छायावादोत्तर काल के मूर्धन्य गीतकार गोपालदास 'नीरज' के काव्य–दर्शन तथा उनके उदाहरणों के साथ एक समांतर तुलनात्मक ढांचा तैयार किया गया है। शोध दर्शाता है कि परंपरा से आधुनिकता के संक्रमण काल में दोनों रचनाकारों का युगबोध किस प्रकार लोक–कल्याण की धुरी पर टिका है।

1. प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक युग का साहित्य अपने समय की आर्थिक विवशताओं, धार्मिक संक्रांति और सांस्कृतिक संक्रमण की उपज होता है। 21वीं सदी का भारतीय समाज जहाँ एक ओर तीव्र आर्थिक उदारीकरण, सूचना क्रांति और उपभोक्तावाद की चपेट में है, वहीं दूसरी ओर वैचारिक स्तर पर धार्मिक संकीर्णता और सांस्कृतिक पहचान के संकट से भी जूझ रहा है। समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य पर डॉ. कुमार विश्वास एक ऐसे सजग रचनाकार के रूप में उभरते हैं, जिन्होंने मंच के माध्यम से जन–आकांक्षाओं को वाणी दी और आधुनिक समाज के द्वंद्वों को अपने गीतों में पिरोया।

कुमार विश्वास की यह वैचारिक पीठिका हिन्दी काव्य की उस लोक–परंपरा से निर्मित है जिसके संवाहक गोपालदास 'नीरज' रहे हैं। नीरज जी ने जहाँ स्वतंत्रता के पश्चात नेहरू–युगीन समाजवाद के अवसान और प्रारंभिक औद्योगिक काल की विसंगतियों को देखा, वहीं कुमार विश्वास 21वीं सदी के कॉर्पोरेट पूंजीवाद और सोशल मीडिया के दौर के साक्षी हैं। दोनों कवियों के यहाँ युगबोध वैयक्तिक पीड़ा से उठकर समष्टिगत समाज के आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक यथार्थ से साक्षात्कार करता है।

2. आर्थिक युगबोध : पूंजीवाद, विषमता और बाजारीकरण (Economic Yugbodh)

आधुनिक युग मूलतः अर्थ–प्रधान युग है। डॉ. कुमार विश्वास के काव्य में समकालीन भूमंडलीकरण, कॉर्पोरेट संस्कृति और महानगरों की अमानवीय यांत्रिकता के प्रति तीखा आर्थिक युगबोध मिलता है। वे देखते हैं कि कैसे आज का मनुष्य केवल एक आर्थिक इकाई (Consumer) बनकर रह गया है और उसकी मानवीय संवेदनाएं बाजार की भेंट चढ़ रही हैं :

'यह शहर जिसमें सुबह–शाम सिर्फ दफ्तर हैं,
यहाँ पे साँस भी लो तो हिसाब होता है।
बिक रही है जहाँ रिश्तों की हर एक सांस यहाँ,
वहाँ पे ख़्वाब देखना भी एक गुनाह होता है।'

यहाँ कवि का आर्थिक युगबोध पूंजीवादी व्यवस्था की उस विसंगति पर प्रहार करता है जहाँ मनुष्य की योग्यता और उसके जज्बात केवल 'करेंसी' और 'मुनाफे' के पैमाने पर मापे जाते हैं।

गोपालदास 'नीरज' से तुलनात्मक विश्लेषण :

नीरज जी ने अपने समय में देश के भीतर बढ़ रही आर्थिक खाई और पूंजीपतियों द्वारा किए जा रहे आम आदमी के शोषण को बहुत पहले पहचान लिया था। उनका आर्थिक युगबोध श्रम की प्रतिष्ठा और शोषितों के प्रति सहानुभूति से उपजा था। उन्होंने लिखा था :

'पहन लपटों का मुकुट काली धरा पर,
सूर्य बनकर राज श्रम मुस्का रहा है...।।'

जहाँ नीरज जी का आर्थिक युगबोध औद्योगिक क्रांति के प्रारंभिक दौर में श्रमिक वर्ग के पसीने और पौरुष को महिमामंडित करता है, वहीं कुमार विश्वास का आर्थिक युगबोध आधुनिक 'व्हाइट कॉलर' नौकरीपेशा युवाओं के मानसिक अवसाद, बाजारीकरण के दबाव और मानवीय गरिमा के ह्रास को रेखांकित करता है। दोनों कवि इस बात पर सहमत हैं कि अर्थ जब तक लोक–कल्याण की ओर उन्मुख नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का वास्तविक विकास असंभव है।

3. धार्मिक युगबोध : सांप्रदायिकता पर प्रहार और वास्तविक अध्यात्म (Religious Yugbodh)

धार्मिक धरातल पर डॉ. कुमार विश्वास का युगबोध अत्यंत प्रगतिशील और कबीर की परंपरा के निकट खड़ा दिखाई देता है। वे धर्म के बाह्य आडंबरों, सांप्रदायिक कट्टरता और राजनीति के लिए धर्म के दुरुपयोग के धुर विरोधी हैं। वर्तमान दौर में जहाँ धर्म के नाम पर समाज को बांटने की कोशिशें तेज हुई हैं, कुमार विश्वास अपनी कविताओं और अपने वृहद् व्याख्यान 'अपने–अपने राम' के माध्यम से राम के लोक–कल्याणकारी, समतामूलक और मर्यादावादी रूप को सामने लाते हैं :

'मजहब के नाम पर जो बस्तियाँ जलाते हैं,
वे न राम को जानते हैं, न रहीम को पहचानते हैं।
सच्चा धर्म तो बस वो है जो आँसू पोंछ दे,
जो दिलों को जोड़ दे, वो ईश्वर को मानते हैं।'

कुमार विश्वास के लिए धर्म शोषण या वैमनस्य का हथियार नहीं, बल्कि आत्म–परिष्कार और समाज को

एक सूत्र में बांधने वाला नैतिक तत्व (Ethical Binding) है।

गोपालदास 'नीरज' से तुलनात्मक विश्लेषण :

धार्मिक छद्म और इंसानी खून के खेल पर जैसी बेबाक टिप्पणियाँ महाकवि नीरज ने की थीं, वे हिन्दी साहित्य की धरोहर हैं। नीरज जी ने लिखा था :

'अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाए,
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।'

और

'मत करो 'यादा हवन तुम आदमी के खून से,
जल के काला कोयला भी लाल हो जाता है दोस्त!'

नीरज जी का यह कालजयी धार्मिक युगबोध साफ घोषणा करता है कि मानवता से बड़ा कोई धर्म नहीं है। कुमार विश्वास इसी धारा को समकालीन संदर्भों में आगे बढ़ाते हैं। नीरज जहाँ धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद की स्थापना के लिए सीधे व्यवस्था को चुनौती देते हैं, वहीं कुमार विश्वास सनातन संस्कृति के मूल उदारवादी चरित्र (जैसे वसुधैव कुटुंबकम् और सर्वधर्म समभाव) को पुर्नव्याख्यायित करके सांप्रदायिक ताकतों को परास्त करने का मार्ग चुनते हैं।

4. सांस्कृतिक युगबोध : परंपरा का संरक्षण और आधुनिक द्वंद्व (Cultural Yugbodh)

सांस्कृतिक रूप से डॉ. कुमार विश्वास एक सेतु की भूमिका निभाते हैं। उनका सांस्कृतिक युगबोध पश्चिमी अंधानुकरण के कारण विस्मृत हो रही भारतीय विरासत, भाषाई अस्मिता (हिन्दी) और लोक–संस्कारों को पुनर्जीवित करने का महती कार्य करता है। वे अपनी कविताओं में जहाँ एक ओर आधुनिक पीढ़ी के भटकाव और सांस्कृतिक रीतेपन पर क्षोभ व्यक्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर देश की नदियों, त्योहारों, संतों और महापुरुषों का स्मरण कराकर नई पीढ़ी को उसकी जड़ों से जोड़ते हैं। उनकी प्रसिद्ध काव्यांजलि 'तर्पण' निराला, पंत, दिनकर और बच्चन जैसे सांस्कृतिक पुरोधाओं के प्रति इसी सांस्कृतिक कृतज्ञता का प्रकटीकरण है :

'हम अपनी जड़ों को भूलकर आकाश छूने चले हैं,
यही कारण है कि पत्तों की तरह बिखर रहे हैं।
संस्कृति की छांव ही हमें बचा सकती है झुलसने से,
अपनी भाषा, अपने संस्कारों को संभालो बिखरने से।'

गोपालदास 'नीरज' से तुलनात्मक विश्लेषण :

महाकवि नीरज की कविताओं में भारतीय संस्कृति का मूल अद्वैत दर्शन, सूफी संतों की फकीरी और गंगा–जमुनी तहजीब कूट–कूट कर भरी थी। नीरज जी ने अपने गीतों में भारतीय संस्कृति के उसी समन्वयकारी रूप को जिया था :

'मेरा गीत दीया बन जाए,
अंधियारा जिससे शरमाए,
उजियारा जिसको ललचाए...'।

नीरज का सांस्कृतिक अवदान यह था कि उन्होंने विशुद्ध दार्शनिक और उपनिषदिक चिंतन को गीतों की

सरल लयात्मकता में ढालकर जन–संस्कृति का हिस्सा बना दिया। कुमार विश्वास इसी विरासत को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक तकनीक (इंटरनेट/यूट्यूब) के माध्यम से वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा और भारतीय मूल्यों की सांस्कृतिक पुर्नस्थापना कर रहे हैं। जहाँ नीरज ने मंचीय गीतों के माध्यम से सांस्कृतिक चेतना जगाई, वहीं कुमार विश्वास ने उसे आधुनिक युवाओं के 'अस्मिता–बोध' (Identity Pride) से जोड़ दिया है।

5. निष्कर्ष (Conclusion / Research Findings)

उपर्युक्त विशद एवं तुलनात्मक अनुशीलन से यह निष्कर्षित होता है कि डॉ. कुमार विश्वास की रचनाधर्मिता मात्र प्रेमानुभूति का उच्छ्वास नहीं है, अपितु उसमें एक अत्यंत सजग, तार्किक और प्रगतिशील आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक युगबोध सक्रिय है।

वे पूंजीवादी बाजारीकरण की अमानवीयता को पहचानते हैं, धार्मिक कट्टरता के छद्म को बेनकाब करते हैं और वैश्विक धरातल पर भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का शंखनाद करते हैं। महाकवि गोपालदास 'नीरज' की गीत–परंपरा, जन–सरोकार और मानवतावादी दर्शन का जो बीज छायावादोत्तर काल में बोया गया था, वह समकालीन युग की नई चुनौतियों के बीच कुमार विश्वास के काव्य में पल्लवित और पुष्पित हो रहा है। आज के संक्रमण काल में समाज को नैतिक पतन, आर्थिक विषमता और सांस्कृतिक भटकाव से बचाने के लिए इन दोनों रचनाकारों का युगबोध न केवल प्रासंगिक है, बल्कि भविष्य का पाथेय भी है।

6. सन्दर्भ सूची (Bibliography / References)

1. प्राथमिक स्रोत (Primary Sources) :

- विश्वास, कुमार. (2007). कोई दीवाना कहता है. डायमंड पॉकेट्स बुक्स, नई दिल्ली।
- विश्वास, कुमार. (2019). फिर मेरी याद आई. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- विश्वास, कुमार. (2022). अपने–अपने राम (सांस्कृतिक व्याख्यान श्रृंखला). डिजिटल आर्काइव, आधिकारिक प्रकाशन।
- नीरज, गोपालदास. (1951). प्राणगीत. किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
- नीरज, गोपालदास. (1956). दर्द दिया है. राजपाल एंड संस, दिल्ली।
- नीरज, गोपालदास. (2015). नीरज समग्र (खंड 1–3). प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources) :

- गर्ग, शेरजंग (संपादक). (2019). हमारे लोकप्रिय गीतकार : गोपालदास 'नीरज'. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप. (2022). आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- सिंह, नामवर. (2018). कविता के नए प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- शर्मा, विजय. (2021). भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी मंच और जन–चेतना. नमन प्रकाशन, दिल्ली।

3. वेब संसाधन (Digital Resources) :

- कविता कोश डिजिटल आर्काइव. डॉ. कुमार विश्वास एवं गोपालदास 'नीरज' का काव्य संसार. कविता कोश पोर्टल.

मोबाइल नंबर : 9813583376, ईमेल.– 1990hiteshkumar@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 53-59

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का प्रेरणादायक संचार : श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद का विश्लेषण

Shelly Sharma, Research Scholar,
Tilak School of Journalism & Mass Communication, C.C.S. University, Meerut
Prof. Pirshant Kumar, Professor,
Tilak School of Journalism & Mass Communication, C.C.S. University, Meerut (On Lien),
Dept. of Journalism & Mass Communication, Central University of Haryana, Mahendergarh.

सारांश :

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के प्रेरणादायक संचार का अध्ययन करना है। इसमें श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि प्रभावी संवाद, तर्कपूर्ण मार्गदर्शन, कर्तव्यबोध एवं आत्मचिंतन व्यक्ति के भ्रम, अनिर्णय और मानसिक द्वंद्व को समझने में किस प्रकार सहायक हो सकते हैं। युद्धभूमि में अर्जुन की विषादपूर्ण स्थिति तथा श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए मार्गदर्शन का विश्लेषण करते हुए प्रेरणादायक संचार, आत्मविश्वास और सकारात्मक दृष्टिकोण के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। यह अध्ययन श्रीमद्भगवद्गीता के चयनित श्लोकों के गुणात्मक एवं पाठ–विश्लेषणात्मक अध्ययन पर आधारित है। साथ ही, वर्तमान जीवन में तनावपूर्ण परिस्थितियों, निर्णय–निर्माण और संकट प्रबंधन के संदर्भ में गीता के संदेशों की प्रासंगिकता का विवेचन किया गया है। प्रमुख **शब्द :** श्रीमद्भगवद्गीता, प्रेरणादायक संचार, संकट प्रबंधन, मानसिक तनाव, आत्मविश्वास, सकारात्मक दृष्टिकोण।

प्रस्तावना :

वर्तमान समय में मानसिक तनाव, अनिश्चितता एवं निर्णय संबंधी द्वंद्व मानव जीवन की प्रमुख चुनौतियाँ हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रभावी संचार और उचित मार्गदर्शन व्यक्ति को समस्याओं को समझने तथा विवेकपूर्ण निर्णय लेने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। इस संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रमुख ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता प्रेरणादायक संचार, कर्तव्यबोध और मानसिक संतुलन से संबंधित महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करता है।

महाभारत के युद्धक्षेत्र में अर्जुन मानसिक द्वंद्व और विषाद की स्थिति में पहुँच जाते हैं। इस परिस्थिति में श्रीकृष्ण तर्कपूर्ण संवाद, कर्म के महत्त्व और कर्तव्यबोध के माध्यम से उनका मार्गदर्शन करते हैं। श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद यह समझने का अवसर प्रदान करता है कि संकट के समय प्रभावी संचार व्यक्ति के दृष्टिकोण, निर्णय–निर्माण और आत्मविश्वास से किस प्रकार संबंधित हो सकता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद का विश्लेषण करते हुए संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में प्रेरणादायक

संचार की भूमिका तथा वर्तमान जीवन में इसकी प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है।

शोध समस्या :

वर्तमान समय में मानसिक तनाव, भ्रम एवं निर्णय संबंधी कठिनाइयाँ व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रभावी संचार और उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन की विषादपूर्ण स्थिति तथा श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए मार्गदर्शन के माध्यम से संकट के समय संवाद की भूमिका को समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध की प्रमुख समस्या यह विश्लेषण करना है कि श्रीकृष्ण की संवाद शैली, तर्कपूर्ण मार्गदर्शन एवं कर्तव्यबोध से संबंधित संदेश अर्जुन के मानसिक द्वंद्व और दृष्टिकोण में परिवर्तन से किस प्रकार संबंधित हैं तथा वर्तमान समय में संकट प्रबंधन, आत्मविश्वास और सकारात्मक दृष्टिकोण के संदर्भ में इनकी क्या प्रासंगिकता है।

शोध के उद्देश्य :

1. श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद की प्रमुख संचारगत विशेषताओं तथा संकट की स्थिति में श्रीकृष्ण की प्रेरणादायक संवाद शैली का अध्ययन करना।
2. अर्जुन के मानसिक द्वंद्व, भ्रम एवं अनिर्णय के समाधान में श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन की भूमिका तथा आत्मविश्वास और सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास में गीता के संदेशों की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।
3. वर्तमान समय में मानसिक तनाव एवं संकट प्रबंधन के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के संचार–सिद्धांतों की उपयोगिता का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न :

1. श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद में प्रेरणादायक संचार के प्रमुख आयाम क्या हैं तथा श्रीकृष्ण की संवाद शैली अर्जुन के मानसिक द्वंद्व, भ्रम और अनिर्णय को दूर करने में किस प्रकार भूमिका निभाती है?
2. तर्क, कर्म, कर्तव्यबोध एवं आत्मचिंतन से संबंधित गीता के संदेश आत्मविश्वास और सकारात्मक दृष्टिकोण के विकास में किस प्रकार प्रासंगिक हैं तथा वर्तमान समय में संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में इनकी क्या उपयोगिता है?

शोध–पद्धति :

प्रस्तुत शोध–पत्र में गुणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध–पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध के प्राथमिक आँकड़े विषय–विशेषज्ञों के साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, श्रीमद्भगवद्गीता के मूल पाठ, प्रमाणिक भाष्यों तथा संचार एवं संकट प्रबंधन से संबंधित पुस्तकों और शोध–पत्रों का उपयोग किया गया है। प्राप्त साक्षात्कारों एवं चयनित श्लोकों का विषयगत विश्लेषण करते हुए प्रेरणादायक संचार, मानसिक तनाव, आत्मविश्वास और संकट प्रबंधन के संदर्भ में श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद की प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है।

साहित्य समीक्षा :

- श्रीमद्भगवद्गीता, मानसिक तनाव प्रबंधन तथा आधुनिक मनोविज्ञान के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अध्ययन किए हैं। इन अध्ययनों में गीता के कर्मयोग, कर्तव्यबोध, आत्मचिंतन और मानसिक संतुलन से संबंधित विचारों की प्रासंगिकता पर चर्चा की गई है।

- **सिवकुमार एवं राजिनी (2022)** ने अपने अध्ययन। Study on Bhagavad Gita's Approach to Stress Management में तनाव प्रबंधन के संदर्भ में गीता की शिक्षाओं का विश्लेषण किया। यह अध्ययन गीता के दार्शनिक विचारों और तनाव प्रबंधन के बीच संबंध को समझने में उपयोगी है।
- **वरलक्ष्मी एवं पद्मा (2022)** ने The Bhagavad-Gita : An Eternal Guide for Stress Management and Personality Development in the Modern Life शीर्षक अध्ययन में आधुनिक जीवन में तनाव प्रबंधन और व्यक्तित्व विकास के संदर्भ में गीता की प्रासंगिकता पर विचार किया। यह अध्ययन वर्तमान शोध के लिए आधार प्रदान करता है, क्योंकि इसमें गीता की शिक्षाओं को जीवन की कठिन परिस्थितियों से जोड़कर देखा गया है।
- **पांड्या (2022)** ने अपने शोध Using Tenets from the Bhagavad Gita in Counselling Diaspora Hindu Older Adults में गीता–आधारित परामर्श और तनाव प्रबंधन का अध्ययन किया। उनके शोध में विशिष्ट प्रतिभागियों के संदर्भ में तनाव और जीवन की गुणवत्ता से संबंधित परिणामों का विश्लेषण किया गया। यह अध्ययन गीता की शिक्षाओं के व्यावहारिक अनुप्रयोग को समझने में सहायक है।
- इसके अतिरिक्त, महात्मा गांधी की गीता संबंधी व्याख्या में अनासक्ति, आत्मसंयम और कर्तव्यपालन को महत्त्व दिया गया है। ये विचार कठिन परिस्थितियों में विवेकपूर्ण निर्णय लेने और अपने दायित्वों को समझने के संदर्भ में प्रासंगिक हैं।
- उपलब्ध साहित्य की समीक्षा से स्पष्ट होता है कि गीता का अध्ययन तनाव प्रबंधन, व्यक्तित्व विकास और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया है। प्रस्तुत शोध इन विषयों को आगे बढ़ाते हुए श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद की प्रेरणादायक संचार शैली, तर्कपूर्ण मार्गदर्शन, कर्तव्यबोध तथा निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है। इस अध्ययन में चयनित श्लोकों और विशेषज्ञों के साक्षात्कारों के आधार पर वर्तमान समय में गीता के संदेशों की प्रासंगिकता समझने का प्रयास किया जाएगा।

श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद में संकट एवं मानसिक द्वंद्व का स्वरूप : महाभारत के युद्धक्षेत्र में अर्जुन अपने परिजनों, गुरुजनों और संबंधियों को सामने देखकर मानसिक द्वंद्व एवं विषाद की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वे अपने कर्तव्य और पारिवारिक संबंधों के बीच उलझ जाते हैं, जिसके कारण उनके निर्णय लेने की क्षमता प्रभावित होती है। भगवद्गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन की इस भावनात्मक स्थिति का वर्णन मिलता है।

अर्जुन का संकट केवल युद्ध करने या न करने का प्रश्न नहीं था, बल्कि यह नैतिक दुविधा, भावनात्मक संघर्ष और कर्तव्यबोध से भी जुड़ा था। ऐसी स्थिति में श्रीकृष्ण उनके विचारों को स्पष्ट करने तथा समस्या के विभिन्न पक्षों पर विचार करने के लिए मार्गदर्शन देते हैं। इस संवाद से यह समझा जा सकता है कि संकट के समय व्यक्ति को अपनी भावनाओं और परिस्थितियों का विवेकपूर्ण विश्लेषण करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार, श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद संकट की स्थिति में मानसिक द्वंद्व को समझने तथा तर्कपूर्ण मार्गदर्शन के महत्त्व को स्पष्ट करता है।

श्रीकृष्ण की प्रेरणादायक संचार शैली का विश्लेषण :

- श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण की संवाद शैली तर्कपूर्ण मार्गदर्शन, प्रश्नोत्तर, कर्तव्यबोध और आत्मचिंतन पर आधारित है। वे अर्जुन की दुविधा को समझाते हुए उन्हें परिस्थितियों का विवेकपूर्ण विश्लेषण करने तथा अपने कर्तव्य पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

• श्रीकृष्ण की संचार शैली की प्रमुख विशेषता यह है कि वे अर्जुन को केवल निर्देश नहीं देते, बल्कि विभिन्न तर्कों और दार्शनिक विचारों के माध्यम से उनकी सोच को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में कर्म और मानसिक संतुलन का संदेश तथा अठारहवें अध्याय में विचार–विमर्श के बाद निर्णय लेने की स्वतंत्रता इस संवाद की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

• इस प्रकार, श्रीकृष्ण का संवाद संकट की स्थिति में प्रभावी संचार, आत्मचिंतन और निर्णय–निर्माण के महत्त्व को दर्शाता है। वर्तमान जीवन में भी तर्कपूर्ण मार्गदर्शन और स्पष्ट संवाद कठिन परिस्थितियों का सामना करने में सहायक हो सकते हैं।

चयनित श्लोकों का पाठ एवं विषयगत विश्लेषण :

श्रीमद्भगवद्गीता के चयनित श्लोकों के माध्यम से संकट प्रबंधन, कर्तव्यबोध, आत्मविश्वास और मानसिक संतुलन से संबंधित विचारों का विश्लेषण किया जा सकता है।

11.1 भगवद्गीता 2.7 – मार्गदर्शन की आवश्यकता :

"शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।"

इस श्लोक में अर्जुन श्रीकृष्ण से मार्गदर्शन प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। यह प्रसंग दर्शाता है कि संकट की स्थिति में अपनी दुविधा स्वीकार करना और उचित मार्गदर्शन प्राप्त करना निर्णय–निर्माण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम हो सकता है।

11.2 भगवद्गीता 2.47 – कर्म का महत्त्व

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

यह श्लोक व्यक्ति को कर्म पर ध्यान केंद्रित करने तथा परिणाम के प्रति अत्यधिक आसक्ति से बचने का संदेश देता है। संकट प्रबंधन के संदर्भ में यह विचार व्यक्ति को अपने प्रयासों और उत्तरदायित्वों पर ध्यान देने की प्रेरणा प्रदान करता है।

11.3 भगवद्गीता 18.63 – आत्मचिंतन एवं निर्णय

"विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू।"

इस श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन को अपने उपदेशों पर पूर्ण विचार करने के बाद निर्णय लेने के लिए कहते हैं। यह संवाद व्यक्ति की स्वतंत्र विचार–प्रक्रिया और विवेकपूर्ण निर्णय के महत्त्व को स्पष्ट करता है।

समग्र विश्लेषण : उपर्युक्त श्लोकों से स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता में मार्गदर्शन, कर्म पर ध्यान और आत्मचिंतन को महत्त्व दिया गया है। ये विचार संकटपूर्ण परिस्थितियों में दृष्टिकोण स्पष्ट करने तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया को समझने के लिए उपयोगी हैं।

विशेषज्ञ साक्षात्कार एवं विषयगत विश्लेषण : प्रस्तुत शोध में विषय–विशेषज्ञों के विचारों के माध्यम से संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद की प्रासंगिकता को समझने का प्रयास किया गया। प्राप्त प्रतिक्रियाओं के विषयगत विश्लेषण से प्रेरणादायक संचार, मानसिक संतुलन, आत्मविश्वास, कर्तव्यबोध तथा निर्णय–निर्माण जैसे प्रमुख विषय सामने आए।

12.1 मानसिक द्वंद्व एवं तनाव प्रबंधन : विशेषज्ञों के अनुसार, युद्धभूमि में अर्जुन की स्थिति भावनात्मक संघर्ष, भ्रम और निर्णय संबंधी कठिनाई को दर्शाती है। श्रीकृष्ण अर्जुन की समस्या को समझते हुए उन्हें मार्गदर्शन प्रदान

करते हैं। विशेषज्ञों ने इस संवाद को कठिन परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखने और समस्या को नए दृष्टिकोण से समझने की प्रेरणा देने वाला उदाहरण माना।

12.2 प्रेरणादायक संचार एवं तर्कपूर्ण मार्गदर्शन : प्राप्त प्रतिक्रियाओं में इस बात पर बल दिया गया कि श्रीकृष्ण का संवाद केवल उपदेश देने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें तर्क, स्पष्ट संदेश, प्रश्नों के उत्तर और विचारों को स्पष्ट करने की प्रक्रिया शामिल है। विशेषज्ञों के विचारों के अनुसार, प्रभावी संचार व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों का विश्लेषण करने और भ्रम से बाहर निकलने में सहायता प्रदान कर सकता है।

12.3 आत्मविश्वास एवं कर्तव्यबोध : विशेषज्ञों ने कर्मयोग और कर्तव्य के संदेश को अर्जुन के दृष्टिकोण में परिवर्तन से संबंधित महत्त्वपूर्ण पक्ष माना। उनके विचारों के अनुसार, व्यक्ति जब अपने कर्तव्यों और प्रयासों पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह कठिन परिस्थितियों का सामना अधिक स्पष्टता और आत्मविश्वास के साथ कर सकता है।

12.4 निर्णय-निर्माण एवं सकारात्मक दृष्टिकोण : विशेषज्ञों की प्रतिक्रियाओं में यह विचार भी सामने आया कि संकट के समय भावनात्मक प्रतिक्रिया के स्थान पर चिंतन, विवेक और उचित मार्गदर्शन महत्त्वपूर्ण होते हैं। श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद व्यक्ति को समस्या के विभिन्न पक्षों पर विचार करने तथा सोच–समझकर निर्णय लेने की प्रेरणा देता है।

समग्र विश्लेषण : विशेषज्ञों की प्रतिक्रियाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद को प्रेरणादायक संचार के एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण के रूप में समझा जा सकता है। इसमें तर्कपूर्ण मार्गदर्शन, कर्तव्यबोध, आत्मचिंतन और निर्णय–निर्माण जैसे संचारगत पक्ष दिखाई देते हैं। वर्तमान जीवन में भी ये विचार तनावपूर्ण परिस्थितियों को समझने तथा विवेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

शोध के प्रमुख निष्कर्ष एवं चर्चा : प्रस्तुत शोध में श्रीमद्भगवद्गीता के चयनित श्लोकों तथा विषय–विशेषज्ञों की प्रतिक्रियाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद संकट की स्थिति में प्रेरणादायक संचार और तर्कपूर्ण मार्गदर्शन का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :

1. **मानसिक द्वंद्व का समाधान :** अर्जुन की विषादपूर्ण स्थिति यह दर्शाती है कि संकट के समय भावनात्मक संघर्ष व्यक्ति की निर्णय क्षमता को प्रभावित कर सकता है। संवाद और मार्गदर्शन विचारों को स्पष्ट करने में सहायक हो सकते हैं।
2. **प्रेरणादायक संचार की भूमिका :** श्रीकृष्ण की संवाद शैली में तर्क, स्पष्ट संदेश और प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से अर्जुन को परिस्थितियों पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया गया है।
3. **कर्तव्यबोध एवं आत्मविश्वास :** गीता का कर्मयोग संबंधी संदेश व्यक्ति को अपने प्रयासों और उत्तरदायित्वों पर ध्यान केंद्रित करने की प्रेरणा देता है।
4. **विवेकपूर्ण निर्णय-निर्माण :** गीता में विचार–विमर्श और आत्मचिंतन को महत्त्व दिया गया है। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि कठिन परिस्थितियों में निर्णय लेने से पहले विभिन्न पक्षों पर विचार करना आवश्यक है।
5. **वर्तमान समय में प्रासंगिकता :** विशेषज्ञों की प्रतिक्रियाएँ भी इस विचार को समर्थन देती हैं कि तर्कपूर्ण

मार्गदर्शन, सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्मचिंतन वर्तमान जीवन की चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में उपयोगी हो सकते हैं।

समग्र रूप से, अध्ययन दर्शाता है कि श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद को संकट प्रबंधन एवं प्रेरणादायक संचार के दार्शनिक आधार के रूप में समझा जा सकता है। हालाँकि, ये निष्कर्ष गुणात्मक पाठ–विश्लेषण और विशेषज्ञों की प्रतिक्रियाओं पर आधारित हैं, इन्हें मानसिक तनाव कम करने के वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित उपचार का विकल्प नहीं माना जाना चाहिए।

वर्तमान जीवन में प्रासंगिकता एवं अनुप्रयोग :

- **वर्तमान समय में :** मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा, अनिश्चितता और निर्णय संबंधी कठिनाईयाँ व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं। ऐसे में श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद से प्राप्त विचार विभिन्न परिस्थितियों में प्रासंगिक हो सकते हैं।
- **शिक्षा के क्षेत्र में :** गीता का संदेश विद्यार्थियों को कठिन परिस्थितियों में धैर्य बनाए रखने, अपने प्रयासों पर ध्यान देने और आत्मविश्वास के साथ चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा दे सकता है।
- **कार्यस्थल एवं नेतृत्व में :** श्रीकृष्ण की तर्कपूर्ण संवाद शैली प्रभावी संचार, उत्तरदायित्व और विवेकपूर्ण निर्णय–निर्माण के महत्त्व को स्पष्ट करती है। ये गुण नेतृत्व एवं सामूहिक कार्य में उपयोगी हो सकते हैं।
- **व्यक्तिगत जीवन में :** कर्मयोग, आत्मचिंतन और परिणामों के प्रति संतुलित दृष्टिकोण व्यक्ति को कठिन परिस्थितियों का विश्लेषण करने तथा सोच–समझकर निर्णय लेने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।
- इस प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता के संदेश वर्तमान जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण, आत्मचिंतन और उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने के लिए उपयोगी वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। हालाँकि, गंभीर या लगातार बने रहने वाले मानसिक तनाव की स्थिति में उचित मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ की सहायता लेना भी आवश्यक है।

निष्कर्ष: प्रस्तुत शोध में संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद का विश्लेषण किया गया। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण की संवाद शैली में तर्कपूर्ण मार्गदर्शन, कर्तव्यबोध, कर्मयोग और आत्मचिंतन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अर्जुन की विषादपूर्ण स्थिति तथा श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए मार्गदर्शन से यह समझने में सहायता मिलती है कि संकट के समय प्रभावी संवाद व्यक्ति को अपनी परिस्थितियों पर पुनर्विचार करने और विवेकपूर्ण निर्णय लेने के लिए प्रेरित कर सकता है। विशेषज्ञों की प्रतिक्रियाओं से भी यह विचार सामने आया कि श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद वर्तमान जीवन में प्रेरणादायक संचार और सकारात्मक दृष्टिकोण के अध्ययन के लिए प्रासंगिक है। इस प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएँ कठिन परिस्थितियों में आत्मचिंतन, उत्तरदायित्व और मानसिक संतुलन के महत्त्व को समझने के लिए उपयोगी दार्शनिक आधार प्रदान करती हैं।

संदर्भ सूची :

- Sivakumar, K. S., & Rajini, G. (2022). A Study on Bhagavad Gita's Approach to Stress

Management.

- Varalakshmi, S., & Padma, P. (2022). The Bhagavad-Gita : An Eternal Guide for Stress Management and Personality Development in the Modern Life.
- Pandya, S. P. (2022). Using Tenets from the Bhagavad Gita in Counselling Diaspora Hindu Older Adults : Impact on Stress Mitigation and Improving Quality of Life.
- Weaving Together the Ancient and the Contemporary : Intersections of the Bhagavad Gita with Modern Psychology. (2023). Journal of Religion and Health. https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC10133900/.
- Wiley Online Library
- McLain, K. (2019). Living the Bhagavad Gita at Gandhi's Ashrams. Religions, 10(11), 619. https://doi.org/10.3390/rel10110619.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 60-64

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

हिंदी कविता में पर्यावरणीय चेतना : एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. नरेश कुमारी
सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग,
चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद।

शोध–सारांश :

वर्तमान भौतिकवादी और उपभोक्तावादी युग में पर्यावरण संकट मानव जीवन के सामने एक गंभीर चुनौती बनकर उभरा है। प्रकृति मानव जीवन का आधार है, किंतु विकास और सुख–सुविधाओं की बढ़ती आकांक्षा ने मनुष्य और प्रकृति के बीच स्थापित संतुलन को प्रभावित किया है। वनों की कटाई, जल एवं वायु प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन और बढ़ता शहरीकरण पर्यावरणीय असंतुलन के प्रमुख कारण हैं। ऐसे समय में साहित्य, विशेष रूप से हिंदी काव्य, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील दृष्टि विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में हिंदी काव्य परंपरा में अभिव्यक्त पर्यावरणीय चेतना का अध्ययन किया गया है। आदिकाल से लेकर भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और समकालीन हिंदी कविता तक प्रकृति के विविध रूपों और उसके साथ मनुष्य के संबंध को रेखांकित किया गया है। रहीम के दोहों में वृक्ष और जल के महत्व, तुलसीदास, सूरदास तथा कबीर के काव्य में प्रकृति और जीवन के संबंध, छायावादी कवियों के प्रकृति–बोध तथा समकालीन कवियों की रचनाओं में जल, वायु, नदी, वन और शहरी पर्यावरण से जुड़े संकटों को विश्लेषित किया गया है। हिंदी कवियों ने प्रकृति के संरक्षण, जल के महत्व, प्रदूषण की समस्या तथा मनुष्य की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों के दुष्परिणामों के प्रति समाज को सचेत किया है। इस प्रकार हिंदी काव्य में निहित पर्यावरणीय चेतना मनुष्य को प्रकृति के साथ संतुलित, संवेदनशील और उत्तरदायी संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देती है।

मूल शब्द :

हिंदी काव्य, पर्यावरणीय चेतना, प्रकृति–बोध, पर्यावरण संरक्षण, जल–संरक्षण, प्रदूषण, प्रकृति और मनुष्य, पर्यावरणीय संकट, पारिस्थितिक संतुलन।

मूल–आलेख :

आज के इस भौतिकवादी युग में पर्यावरण सरंक्षण बहुत ज्वलंत मुद्दा है। प्रकृति मनुष्य के लिए अति आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन प्रकृति की गोद में ही पुष्पित व पल्लवित होता है। मानव सभ्यता का विकास प्रारम्भ से ही प्रकृति और उसके संसाधनों पर आधारित रहा है। प्रकृति के बिना मानव के अस्तित्व की कल्पना करना भी असंभव है। प्रकृति ने मनुष्य को भेंट स्वरूप कई उपहार दिए है जैसे जल, वायु, भूमि,

पेड़–पौधे, पहाड़, नदियाँ आदि। ये सब पर्यावरणीय घटक न केवल मानव जीवन की आधारशिला हैं, बल्कि संपूर्ण पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में भी निर्णायक भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि प्राचीन सभ्यताओं का विकास जल स्त्रोतों के आस–पास ही हुआ था। प्राचीन भारत में जल व पेड़ों को देवता के रूप में पूजा जाता था। आज भी भारतीय संस्कृति में नदियों को हम माँ का दर्जा देतें हैं। प्रकृति के साथ लगाव मानव संस्कृति की मूल अवधारणा रही है।

आदिकाल के वीरगाथात्मक साहित्य से लेकर आधुनिक और समकालीन रचनाओं में पर्यावरण संरक्षण, प्रकृति प्रेम और मानवीय उत्तरदायित्व की भावना को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। आदिकाल में चंदबरदाई, नरपति नाल्ह और अन्य कवियों की रचनाओं में प्रकृति युद्धभूमि या वीरता की पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित है, जहाँ पर्वत, नदियाँ और वन जीवन का अभिन्न अंग हैं। यद्यपि इस काल में प्रत्यक्ष पर्यावरण चेतना का स्वर प्रबल नहीं है, फिर भी प्रकृति के प्रति सम्मान, संवेदनशील और निकटता स्पष्ट दिखाई देती है। भक्तिकाल में पर्यावरणीय चेतना अधिक सघन रूप में अभिव्यक्त होती है। रहीमदास अपने दोहे के माध्यम से कहते हैं कि –

"तरूवर फल नहीं खात है, सरवर पियत न पान।
कह रहीम पर काज हित, संपति संचहि सुजान।।"[1]

अर्थात् वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाते और तालाब अपना जल स्वयं नहीं पीते, बल्कि वे समस्त जीव–जगत के कल्याण के लिए होते हैं। इसी प्रकार प्रकृति के सभी तत्व निस्वार्थ भाव से जीवन का पोषण करते हैं। भारत एक कृषि प्रधान देश है और हमारी अर्थव्यवस्था भी अधिकतर कृषि पर ही आधारित है। कृषि के अतिरिक्त भी जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जल हमारे लिए जरूरी है। जल की इस आवश्यकता से साहित्यकार पहले से ही परिचित थे। संत रहीमदास लिखते हैं कि :

"रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गए न उबरे, मोती, मानुष, चून।।"[2]

इसलिए हमें प्राचीन काल से ही अनेक प्रकार के जल स्त्रोतों का पता चलता है जैसे तालाब, झीलें, बावड़ियां, नहरें, पोखरे, कुएं आदि। यह सभी जल संरक्षण के प्राचीन स्रोत थे। उसमें एकत्र हुआ बारिश का पानी न सिर्फ सालभर के लिए पर्याप्त होता था बल्कि भूजल का स्तर भी दुरुस्त रहता था। जल उपयोग की प्राचीन विधियों को छोड़ने से ही पानी की किल्लत हो रही है।

छायावाद को प्रकृति की उद्यानशाला माना जाता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि न मानकर मानव जीवन और चेतना का अभिन्न अंग माना है। छायावाद के स्तंभ जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और निराला की रचनाओं में वन, नदी, पर्वत और प्राकृतिक परिवेश का संवेदनशील चित्रण, मानव और पर्यावरण के गहन सामंजस्य को उद्घाटित करता है। यह काव्य सौंदर्यबोध के साथ–साथ प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी और संरक्षण की चेतना भी जागृत करता है। प्रकृति उनकी रचनाओं में सुख–दुःख की सहचरी बनकर प्रस्तुत हुई है। 'प्रकृति के सुकुमार कवि' सुमित्रानंदन पंत के काव्य का मूल आधार प्रकृति है, जो उनकी प्रेरणा, जीवन–दृष्टि और रचनात्मक अभिव्यक्ति का केंद्रीय तत्व रही है। उनकी कविताओं में प्रकृति केवल सौंदर्य का विषय न होकर जीवन की आधारशिला और मानव अस्तित्व की अनिवार्य सहचरी के रूप में उपस्थित है। पंत

लिखते हैं कि –

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?"[3]

प्रस्तुत काव्य–पंक्तियों में कवि प्रकृति से पृथक होने की असमर्थता व्यक्त करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति से दूरी जीवन के सहज आनंद और संतुलन से दूरी है। वर्तमान युग में मनुष्य भौतिक प्रगति और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के कारण निरंतर प्रकृति से विमुख होता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय संकट मंडराता जा रहा है। पंत का काव्य इस संदर्भ में गहन पर्यावरणीय चेतना का संप्रेषण करता है और उनकी रचनाएँ मनुष्य को प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाकर उसके संरक्षण की आवश्यकता का बोध कराती हैं।

जयशंकर प्रसाद ने अपनी कालजयी रचना 'कामायनी' के प्रारम्भ में प्रकृति के उग्र और प्रलयंकारी रूप का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। कामायनी में प्रलय के माध्यम से कवि यह स्पष्ट संकेत देते हैं कि जब मानव प्रकृति के नियमों की अवहेलना करता है, तो प्रकृति अपना विनाशकारी रूप धारण कर लेती है।

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छांह,
एक पुरूष, भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।।"[4]

प्रस्तुत पंक्तियों में हिमगिरि के उच्च शिखर पर बैठा पुरुष प्रलय–प्रवाह को मुक साक्षी बनकर देख रहा है. जो मानव की असहायता और प्रकृति की अपार शक्ति का प्रतीक है। इस वर्णन के माध्यम से कवि पर्यावरणीय चेतना को इस रूप में जाग्रत करते हैं कि वे प्रकृति को केवल सौंदर्य या उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि एक जीवंत, शक्तिशाली और संतुलन–प्रधान सत्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जल–प्रलय यह चेतावनी देता है कि प्रकृति से असंतुलन और छेड़छाड़ का परिणाम सर्वनाश हो सकता है। मानव की करुण दृष्टि और भीगे नयन यह बोध कराते हैं कि विकास के नाम पर प्रकृति का अतिक्रमण अंततः मानव जीवन के लिए घातक सिद्ध होता है।

अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी कविता 'मन का संतोष' के माध्यम से आधुनिक मनुष्य के आचरण पर गहरा व्यंग्य व्यक्त किया है। कवि मनुष्य को ऐसा प्राणी बताते हैं जो भौतिक प्रगति की अंधी दौड़ में मानसिक एकाकीपन और असंतोष से घिर गया है। सभ्यता की निष्ठुर प्रतिस्पर्धा ने उसे संस्कृति, संवेदना और नैतिक मूल्यों से दूर कर दिया है। प्रकृति पर विजय और मृत्यु को वश में करने की आकांक्षा में मनुष्य अपनी ही सुरक्षा के नाम पर विनाश के साधन जुटा रहा है।

"पृथ्वी पर
मनुष्य ही ऐसा एक प्राणी है
अपनी रक्षा के लिए औरों के विनाश का सामान जुटाता है।
आकाश को अभिशप्त,
धरती को निर्वसन
वायु को विषाक्त
जल को प्रदूषित करने में संकोच नहीं करता।"[5]

अर्थात् कवि यह वर्णित करता है कि इसी स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति के कारण मनुष्य आकाश, धरती, वायु और जल

सभी को प्रदूषित करने में संकोच नहीं करता। यह व्यंग्य दरअसल एक चेतावनी है कि प्रकृति का निरंतर शोषण अंततः मानव अस्तित्व के लिए घातक सिद्ध होगा। विनोद कुमार शुक्ल ने कविता के माध्यम से शहरी वातावरण की विडंबनापूर्ण स्थिति को अत्यंत संवेदनशील और प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है :–

"और मैं शहरी आदमी
प्रकृति से इस तरह अलग होता हूँ
कि पेड़ को पीछे छोड़ बस में बैठ जाता हूं
बस में बैठे मेरी इच्छा
कि पूरे रास्ते में दोनों ओर पेड़ मिलते रहें
मैंने अपने कमरे में
पूरे जंगल की तस्वीर लगा रखी है।।"[6]

कवि जल को जीवन का मूल आधार मानते हुए यह स्मरण कराता है कि जल का संरक्षण केवल वर्तमान की आवश्यकता नहीं, बल्कि आने वाले कल और भावी पीढ़ियों के अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न है। इसलिए वह मनुष्य से केवल आज नहीं, भविष्य के लिए सोचने का आग्रह करता है। राजेंद्र शर्मा 'अक्षर' ने अपनी गजल की सुंदर पंक्तियों से यह स्पष्ट किया है कि पर्यावरण से जुड़े संकट जटिल अवश्य हैं, पर उनके समाधान संभव हैं। इसके लिए प्रकृति के साथ छल और दोहन की प्रवृत्ति को त्यागकर ईमानदार और जिम्मेदार दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। बीज बोने से पहले फल के बारे में सोचना प्रतीक है कि प्रकृति से कुछ पाने से पहले उसके संरक्षण और संवर्धन की चिंता आवश्यक है।

"जल के लिए तो सोचो, कल के लिए तो सोचो।
निश्छल प्रकृति से अपने, छल के लिए तो सोचो।
बोने से बीज पहले, फल के लिए तो सोचो।
सौ तक जियोगे कैसे, पल के लिए तो सोचो।।"[7]

नंदलाल धाकरे 'मधुकर' की कविता 'जलमेव जीवनमुक्त' जल के महत्व को केंद्र में रखकर समकालीन समाज में पर्यावरणीय चेतना को सशक्त रूप से उद्घाटित करती है। कवि परंपरागत और निरर्थक विषयों से विमुख होकर जल जैसे जीवनाधार तत्व को काव्य का विषय बनाता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता प्रकृति और जल संरक्षण है।

"बहुत हो चुकी हैं चर्चाएं, राजा की और रानी की।
एक नई कविता गाएँ हम, इस धरती पर पानी की।।"[8]

इस प्रकार कवि ने न केवल जल के संरक्षण का संदेश दिया है, बल्कि मनुष्य को प्रकृति के प्रति उत्तरदायी दृष्टिकोण अपनाने और पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिए प्रेरित किया है। कवि पृथ्वी को अंतरिक्ष के असंख्य ग्रहों में विशिष्ट और अद्वितीय सिद्ध करता है, क्योंकि यहाँ जल की निरंतर उपलब्धता के कारण ही जीवन का अस्तित्व संभव है। कविता में मानव की स्वार्थपरक प्रवृत्तियों और अविवेकपूर्ण आचरण पर तीखा प्रश्नचिह्न लगाया गया है। कवि यह चेतावनी देता है कि जल के महत्त्व की उपेक्षा मानव सभ्यता को गहरे संकट की ओर ले जा सकती है।

उपसंहार :–

आधुनिक भौतिकतावादी युग में उत्पन्न पर्यावरण संकट केवल विकास की अंधी दौड़ का परिणाम नहीं है, बल्कि मानव और प्रकृति के संबंधों में आई विमुखता का द्योतक है। हिंदी साहित्य ने आरंभ से ही प्रकृति को जीवन की सहचरी मानते हुए उसके संरक्षण का संदेश दिया है। कवियों और साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि प्रकृति का दोहन अंततः मानव के ही विनाश का कारण बनता है। आज जब जल, वायु और भूमि प्रदूषण भयावह रूप ले चुके हैं, तब हिंदी साहित्य में निहित पर्यावरणीय चेतना हमें आत्मसंयम, संतुलन और सामंजस्यपूर्ण जीवन–दृष्टि का मार्ग दिखाती है। अतः आवश्यक है कि हम साहित्य में प्रतिपादित मानवीय मूल्यों को जीवन में उतारें और प्रकृति के प्रति उत्तरदायी दृष्टिकोण अपनाएँ, जिससे पर्यावरण संरक्षण के माध्यम से मानव सभ्यता का भविष्य सुरक्षित किया जा सके। प्रस्तुत शोध मानव व पर्यावरण संबंधों के वैचारिक आयामों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि साहित्य किस प्रकार पर्यावरणीय चेतना के निर्माण और प्रसार में प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

शोध संदर्भ –

1. रहीमय रहीम ग्रन्थावली, वाणी प्रकाशन, संस्करण–1985, पृष्ठ सं. 86
2. वही , पृष्ठ सं. 86
3. पंत, सुमित्रानंदन, पल्लव, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग, पृष्ठ सं. 44
4. प्रसाद, जयशंकर, कामायनी, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, दशम संस्करण– सं 2015 वि., पृष्ठ सं. 03
5. वाजपेयी, अटल बिहारी, मेरी इक्यावन कविताएँ, किताबघर प्रकाश, 4855–56/24 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पच्चीसवाँ संस्करण–2009, पृष्ठ सं. 29
6. इंद्रनाथ सिंह / डॉ. बृजेश सिंह (संपा.), पर्यावरण विमर्श, भावना प्रकाशन, दिल्ली–110091, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ सं. 209
7. प्रवाहिनी अंक–24, राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की, संस्करण–2017, पृष्ठ 87–88
8. वही, पृष्ठ सं. 88

मो. 8295595422

ईमेल. Malikmadhu071@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 65-75

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

ग्राम विकास और शिक्षा की देशज दृष्टि : नानाजी देशमुख

डॉ. शंभू जोशी, प्रोफेसर, दूर शिक्षा निदेशालय
डॉ. अंकित कुमार पाण्डेय, अतिथि अध्यापक,
वर्धा समाज कार्य संस्थान,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

नानाजी देशमुख भारत के अग्रिम पंक्ति के विचारक, राजनीतिज्ञ एवं सामाजिक कार्यकर्ता रहे हैं। भारत में ग्रामीण विकास के अर्थ को नए सिरे से परिभाषित कर ग्रामीण विकास के क्षेत्र में आधुनिक तकनीकी एवं ज्ञान को भारतीय परंपरागत स्वदेशी ज्ञान के साथ मिश्रित कर समसामयिक परिप्रेक्ष्य में युगानुकूल अनुप्रयोग के माध्यम से अनुभवजन्य विचार दृष्टि प्रदान की है। इसी तरह राजनीति के क्षेत्र में देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश और देश की प्रथम विपक्ष की सरकार बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई। उन्होंने राजनीति में ईमानदारी, शुचिता और अपने विचारों एवं पार्टी के अतिरिक्त विपक्षी लोगों के साथ सहयोग पूर्ण संबंध स्थापित कर सहयोग आधारित राजनीति को बढ़ावा दिया है। उन्होंने सकारात्मक एवं यथार्थवादी राजनीति को अपना कर राजनीति के क्षेत्र में विभिन्न रचनात्मक प्रयोग किए। समाज कार्य के क्षेत्र में उन्होंने देश के प्रथम ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना, प्रथम सरस्वती शिशु मंदिर की नींव तथा दीनदयाल शोध संस्थान की स्थापना कर ग्रामीण विकास, शिक्षा एवं समाज कार्य के क्षेत्र में वृहद स्तर पर कार्य किए हैं। आज के भौतिकवादी एवं आधुनिकतावादी समाज में नानाजी का नाम ऐसे अनुकरणीय उदाहरण के रूप में सामने आता है जिन्होंने अपने जीवन एवं व्यवहार द्वारा आधुनिक नीतिविहीन समाज एवं राजनीति का परिमार्जन एवं परिशोधन करने का प्रयास करते हुए राष्ट्र के समक्ष एक नई जीवन दृष्टि एवं दिशा प्रदान की।

नानाजी की विशिष्टता है कि वह भारतीय विश्वविद्यालयों के अकादमिक जगत की भाँति पाश्चात्य चिंतन परंपरा से भयभीत नहीं है। जहाँ अकादमिक जगत के अधिकतर अध्यापक या शोधकर्ता पाश्चात्य दृष्टि से, उपनिवेशवादी दृष्टि से गाँवों में ग्रामीण विकास के लिए एक सर्वज्ञाता के रूप में जाते हैं और स्वयं को मुक्तिदाता के रूप में प्रस्तुत कर अपने अंग्रेजी ज्ञान के आधार पर गाँव की समस्या को सुलझाने का प्रयास करते हैं, वहीं दूसरी ओर नानाजी ग्रामीण विकास की कर्तव्यपूर्ण भावना लिए ग्राम वालों के साथ सीखने, साथ काम करने और पारस्परिकता के साथ काम करने को प्राथमिकता देते हैं। वे ग्रामीणों के सामुदायिक ज्ञान को शून्य नहीं मानते, जैसा कि अकादमिक जगत के लोग मानते हैं। वे गाँव के लोगों द्वारा संचित एवं पीढ़ियों से सुरक्षित ज्ञान परंपरा को उचित महत्त्व देते हुए एवं उसे आधार बनाते हुए समकालीन समस्याओं के उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। ऐसा करते हुए भी वे समाज में विभाजन के स्थान पर पारस्परिक सहयोग एवं सौहार्द बढ़ाने वाली परंपराओं को

बढ़ावा देते हैं–

'बिना जातिगत या मजहब आधारित भेदभाव के सभी का, विशेषतः नई पीढ़ी का सर्वांगीण विकास करने में दृढ़ता एवं एकाग्रता के साथ जुट जाएं तो सफलता अवश्यंभावी है। वस्तुतः यही भारतीय परंपरा है। इसी परंपरा के आचरण के माध्यम से विश्व का मार्गदर्शन करना संभव है।[1]''

वे समाज को विभाजित करने वाली सामाजिक कुरूतियों के विरुद्ध और उन्हें दूर करने के लिए दृढ़ संकल्प रहे। उन्होंने इस क्षेत्र में परिवर्तन हेतु समाज के आत्मपरिवर्तन की दिशा में कार्य किया है। उनके विचारों में शिक्षा, स्वास्थ्य, सदाचार और स्वावलंबन के माध्यम से समाज में समानता और एकता स्थापित करने का संकल्प निहित था। उनके यह विचार भारतीय संस्कृति की समरसता, एकता और मानवता पर आधारित थे। जिसके लिए उन्होंने ग्रामीण विकास हेतु बिना किसी जातिगत या धार्मिक भेदभाव के धरातल स्तर पर कार्यों को मूर्तरूप प्रदान किया है।

नानाजी के समस्त विचारों में दो शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं जो उनके विचारों को समझने की कुँजी भी कहे जा सकते हैं –

- परस्परपूरकता व
- सहजीवन

सामाजिक जीवन के इन दो मूल्यों के आधार पर वह समाज पुनर्रचना का भागीरथी प्रयत्न करते हैं। वह न तो पश्चिमी वैयक्तिकता की आँधी में सामूहिकता त्याग करते हैं और न ही साम्यवाद की तरह समूह के नाम पर वैयक्तिकता की बलि लेते हैं। तत्कालीन दोनों अतिरेकों से परे वह भारतीय सनातन परंपरा के अनुरूप समाजोन्मुख वैयक्तिकता पर ध्यान केंद्रित करते हैं जिसमें न तो वैयक्तिकता का ह्रास है और न ही सामाजिकता का विघटन, बल्कि इस समाजोन्मुख व्यक्ति की वैयक्तिकता का विकास उसके निजी स्वार्थ से परे होकर समाज के सर्वहित विकास में रूपांतरित होता है। वहीं, दूसरी ओर सामाजिकता का विकास ऐसे वातावरण को विकसित करता है जिसमें व्यक्ति की वैयक्तिकता का विकास निर्बाध रूप से हो सके–

''सामाजिक जीवन चार अंगों में विभाजित है– व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, व्यावसायिक जीवन तथा सामाजिक जीवन। सामाजिक जीवन के इन चार अंगों में अर्थात् व्यक्ति, परिवार, व्यवसाय एवं समाज में परस्पर-पूरकता ही स्वस्थ, सुखी, प्रगतिशील एवं उन्नत समाज की आधारशिला है।''[2]

समाज की इसी समझ के कारण नानाजी अपनी वैचारिकी एवं कर्मशीलता में विशिष्ट हैं। व्यक्ति और समाज की इसी अन्योन्याश्रितता के कारण वह सामाजिक जीवन को अखंड इकाई के रूप में देखते हैं और समाज में उत्पन्न समस्याओं का निराकरण भी अपनी इसी अखंडवादी सोच के साथ प्रस्तावित करते हैं।

नानाजी विकास की प्रक्रिया को सह–अस्तित्व के आधार पर विकसित करने के पक्षधर थे। वह विकास को सिर्फ आर्थिक और औद्योगिक उन्नति नहीं मानते, बल्कि मानवता, पर्यावरण और प्रकृति के सह–अस्तित्व के संतुलन के रूप में देखते हैं। इसीलिए वह सह–अस्तित्व को ही मानवता का आधार मानते थे। हर व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने सुख के साथ–साथ सभी प्राणियों और प्रकृति की भी चिंता करे–

''मानवीयता का स्रोत है आत्मा प्रणीत संवेदनशीलता। वही मानव को सहअस्तित्व की प्रेरणा प्रदान करती है। सहअस्तित्व ही मानव मात्र की सुख-शांति एवं समृद्धि का आधार है। संसार में जीव-जंतु, नदी-नाले,

पेड़-पर्वत आदि हजारों सालों से साथ-साथ रहते आए हैं। मानव भी उन्हीं में से एक है। निसर्ग निर्मित तत्त्व मूलतः परस्पर पूरक है। इसकी अनुभूति करने की क्षमता मानव में ही है, अतः मानव का कर्तव्य है कि वह अपने अस्तित्व के लिए अन्यों के उत्पीड़न का कारण न बने। अपनी संवेदनशीलता पर आधारित सृजनशक्ति का सदुपयोग अपने साथ-साथ सभी के लिए सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराने में करें। यही मानवीयता है। वैकल्पिक औद्योगिक नवरचना इसी आधार पर करनी होगी।''[3]

इस तरह से उन्होंने मानवता के अर्थ को केवल मनुष्य के बीच संबंधों तक सीमित नहीं किया, बल्कि इसमें सृष्टि के प्रति संवेदनशीलता और करुणा का भाव प्रदान किया है। उन्होंने मनुष्य की आत्मा को उसके विवेक, करुणा और सहअस्तित्व के साथ जोड़ा है। साथ ही वैकल्पिक औद्योगिक नवरचना की निर्मिति पर बल दिया है जो प्रकृति और मानव दोनों के हितों को समान रूप से महत्त्व दे। मानव अपनी सृजनशीलता को आत्मकेंद्रित स्वार्थ से मुक्त कर सामूहिक कल्याण की दिशा में कार्य करे, तो ऐसी व्यवस्था निर्मित की जा सकती हैं जिसमें तकनीक, पर्यावरण और नैतिकता में सामंजस्य हो। उनके अनुसार यही दृष्टिकोण समाज को शांति, समृद्धि और सतत विकास की ओर अग्रसर कर सकता है।

उनके अनुसार मानव को चाहिए कि वह अपनी सृजनशक्ति का उपयोग प्रकृति और समाज के साथ संतुलन बनाकर करे। नानाजी मानव को केवल भौतिक प्राणी नहीं मानते हैं, बल्कि शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से मिलकर बना एक समन्वित रूप मानते हैं–

''मानव शरीर मन, बुद्धि एवं आत्मा का एकात्म रूप है। आत्मा द्वारा प्रेरित संवेदनशीलता का अर्थात् शारीरिक प्रक्रियाओं के माध्यम से मानवीयता का व्यावहारिक रूप प्रकट होता है। वस्तुतः शरीर ही मानवीयता का एकमेव वाहक है।''[4]

इसलिए समाज की पुर्नरचना में उनका जोर मानवीयता और जीवन मूल्यों के प्रति बराबर रहा है। समाज की पुर्नरचना में उनका बल अपने अतीत से पिंड छुडाना नहीं, बल्कि अतीत से सीख लेते हुए सनातन जीवन मूल्यों को बनाए रखना है। इन मूल्ध्यों ने इतिहास के विभिन्न झंझावातों में भारतीय ग्रामीण जनों को स्थिरता और दृढ़ता प्रदान की। वह ग्राम विकास के क्षेत्र में काम करते हुए ग्रामीण समाज को हेय या निम्न दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति का विरोध करते हैं। ग्रामीण समाज ने शताब्दियों से समाज के सम्मुख प्रस्तुत समस्याओं को हल करने और इसी प्रक्रिया में अपने पुरातन ज्ञान की पुर्नव्याख्या कर स्वयं को गतिशील बनाए रखा है। ग्रामीण जीवन की इस वैचारिक स्वतंत्रता और ज्ञान संपदा की ओर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया है। नानाजी अपने ग्रामीण विकास के दृष्टिकोण में इसी वैचारिक स्वतंत्रता और संचित ज्ञान कोष के आधार पर समाज में बदलाव लाने के पक्षधर हैं। वे उन गिने–चुने विचारकों में से हैं जो भारतीय चित्त की भावभूमि पर ग्रामीण विकास का स्वप्न साकार करना चाहते है।

भारतीय परंपरा में अपनी अगाध श्रद्धा के कारण वह भविष्य की नव रचना में **'आत्मवत सर्वभूतेषु'** और **'वसुधैव कुटुम्बकम'** की अवधारणाओं को आत्मसात करने पर जोर देते हैं। इन दोनों ही अवधारणाओं का महत्त्व समानता और सहअस्तित्व के जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करता है जिनके आधार ग्रामीण समाज टिके रहे और इसी आधार पर पुर्नरचना के बाद भी इन्हीं जीवन मूल्यों को बनाए रख सकेंगे–

''आत्मवत् सर्वभूतेषू' या **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की अवधारणा का विकास–क्रम हमारी अद्वितीयता का

परिचायक है। इतिहास के इस पहलू को आत्मसात् किए बिना हमारी भविष्य की नवरचना अपनी अखंड परंपरा की कड़ी के रूप में विकसित नहीं होगी। इन सब बातों से ग्रामीण अंचल के निवासियों को अवगत कराने के लिए हमें विशेष तैयारी करनी होगी।''[5]

नानाजी इसीलिए अन्य विचारकों से अलग और विशिष्ट हो जाते हैं जो ग्रामीण समाज में अनिवार्यतः संघर्ष को देखने के हिमायती है। नानानी वास्तविकता से प्रेरित होकर गाँव में विद्यमान असमानता, कुरूतियों, गरीबी को नजर अंदाज नहीं करते हैं बल्कि उनका बल इस बात पर रहा है कि समाज की इन समस्याओं का समाधान समाज के सभी लोगों के सहयोग से हो। वह लोगों के बीच अनिवार्यतः संघर्ष को नहीं मानते हैं और न ही हिंसा को सामाजिक बदलाव का एक मात्र साधन।

नानाजी व्यक्ति और समाज की पाश्चात्य परिभाषाओं का अँधानुकरण नहीं करते हैं। तत्कालीन समाज वैज्ञानिकों की तरह उपनिवेशवादी सोच और शिक्षा के प्रभाव से निडर होकर व्यक्ति और समाज की पारंपरिक भारतीय व्याख्याओं से प्रेरित होते हैं। उनके लिए व्यक्ति का अर्थ समाज की पारस्परिकता से युक्त व्यक्ति से है। समाज का अर्थ परमार्थ से प्रेरित व्यक्तियों के समूह से है–

''अपना समाज सनातन है। सनातन का अर्थ केवल पुरातन नहीं, चिरंतन है। इसमें जहां चिरपुरातनता है, वहीं नित्य-नूतनता के बीज भी विद्यमान हैं। अपने सनातन समाज की गतिशीलता अनंत काल से अखंड रूप में चली आ रही है।''[6]

नानाजी के यही विचार भारतीय समाज की उस गहराई और व्यापकता को प्रकट करते हैं जिसमें समय, युग और परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन के साथ निरंतर रूप से प्रासंगिक बनाए रखते हैं। हमारा समाज इसलिए सनातन है क्योंकि उसने परंपराओं को संरक्षित रखते हुए भी नित नए विचारों, मूल्यों और जीवन–दृष्टियों को आत्मसात किया है। उनका मानना है कि भारतीय समाज में धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, साहित्य और मानवता सभी एक–दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं। इस समन्वय से हमारा समाज सनातन और चिरंतन है। यदि समाज अपने मूल मूल्यों को बनाए रखते हुए नवाचार की दिशा में प्रगति करता है, वह अपने समाज के जीवन मूल्यों को बनाए रखते हुए गतिशील बनता है। यही गतिशीलता हमारे सनातन समाज की आत्मा है, जो विभिन्न परिवर्तनों को स्वीकारते हुए अपने मूल्यों को जीवित रखे हुए हैं।

नानाजी का मानना है कि भारतीय जीवन दर्शन में प्रत्येक व्यक्ति को समान दृष्टि से देखने की भावना विद्यमान है। इसलिए हमारी सभ्यता ने यह सिखाया है कि विविधता में भी एकता विद्यमान है, क्योंकि आत्मा का तत्त्व सभी में समान विद्यमान है। साथ ही उनके लिए व्यक्ति और समाज की सनातनता का अर्थ केवल पुरातन नहीं अपितु चिरंतरता हैं। इसलिए भारतीय ग्रामीण समाज जहाँ एक ओर चिर पुरातन है, वहीं उसमें नित्य–नूतनता के बीज भी विद्यमान है–

''भारतीय जीवन दर्शन मानव-मानव में भेद नहीं करता है। अन्यथा चराचर में आत्म-तत्त्व अनुभव करने की संभावना ही नहीं होती। वह हर एक नागरिक को मानव मानकर व्यवहार करता है। किसी से भी उसकी उपासना पद्धति, भाषा, क्षेत्रीयता, जातीयता या ऊँच-नीच के आधार पर भेदभाव को अमानवीय मानता है।''[7]

सामाजिक जीवन की यह भारतीय अवधारणा विश्व में अद्वितीय है। उनकी यह दृष्टि ही उन्हें भारतीय

सामाजिक बदलाव चिंतन परंपरा में विशिष्टता प्रदान करती है। जब वह सामाजिक बदलाव के कार्य में या ग्रामीण पुनर्रचना के काम में अपना उत्सर्ग करते हैं तब उसके पीछे सामाजिक जीवन की यही दृष्टि उनकी प्रेरणा बनती है।

नानाजी समाज की पुर्नरचना में इस बात पर जोर देते हैं कि यह काम केवल सरकार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता, बल्कि सरकार को तो समाज का अनुगामी होना चाहिए। उनकी यह दृष्टि सनातन भारतीय मूल्य दृष्टि को रेखांकित करती है जिसमें समाज राज्य सत्ता का अनुगमन नहीं करता बल्कि उस राजनीति सत्ता पर अंकुश रखने, उसके विवेकपूर्ण उपयोग को भी निर्देशित करता है। समाज और सरकार के इस संबंध को नानाजी के सभी समकालीनों ने लगभग भुला दिया था। नानाजी राजनैतिक सत्ता पर समाज की विवेकशक्ति का अंकुश लगाने के पक्षधर रहे इसलिए अपने समस्त ग्रामीण पुनर्रचना के कार्यक्रमों में वह सत्ता/सरकार के समक्ष भिक्षुक की भांति विनय नहीं करते हैं बल्कि सत्ता के समक्ष समाज में, समाज के सहयोग से नवरचना करते हुए स्वावलंबन का उदाहरण प्रस्तुत करते है–

''परानुकरण की धुन अपनी अवस्था एवं आवश्यकता को भुला देती है। जिसके अनुकरण का भूत सवार होता है, उसी के तौर-तरीके अपनाने में वह एकाग्र हो जाता है। स्वराज्य पाने पर भारत के नेतृत्व की वही स्थिति हुई थी।''[8]

नानाजी का विश्घ्वास था कि परानुकरण में लीन होकर व्यक्ति या समाज अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों को भूल जाता है। परानुकरण व्यक्ति और समाज को उसकी अपनी पहचान और आवश्यकताओं से दिशाहीन कर देता है। इसलिए कोई भी समाज यदि दूसरों की नकल करने में लग जाता है, तो वह अपनी परिस्थितियों, मूल्यों और संस्कृति की उपेक्षा करने लग जाता है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति पश्चात यही स्थिति हुई। यही कारण है कि भारत अपने मौलिक दृष्टिकोण और देशज स्वरूप को छोड़कर पश्चिमी स्वरूप पर आधारित हो गया। इसीलिए नानाजी का मानना है कि परानुकरण की प्रवृत्ति से मुक्त होकर हम अपनी परंपराओं, संसाधनों और स्व दृष्टि पर आधारित स्वदेशी मार्ग अपनाएँ।

उनके अनुसार किसी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति सत्ता या शासन में ही निहित नहीं होती बल्कि वहाँ की जनता, संस्कृति और सामाजिक चेतना में निहित होती है। इसलिए उनका विश्वास है कि समाज परिवर्तन का रास्ता केवल शासनाभिमुखता से नहीं गुजरता है बल्कि सामाजिक पुर्नरचना के लिए समाज को आडोलित और बदलाव के लिए प्रेरित करना भी उतना ही आवश्यक है–

''राष्ट्र की मूलभूत शक्ति राजसत्ता में नहीं, समाज में होती है, इसकी जानकारी हमारे मनीषियों को थी। वे जानते थे कि अपने समाज ने मानवीय जीवन में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की जो अद्वितीय ऊँचाई अर्जित की थी, वह राजसत्ता की सीढ़ी द्वारा नहीं, अपितु तपस्वी जीवन से प्राप्त की थी, अन्यथा क्रूर एवं चालाक पराई हुकूमतों में अपने सामाजिक जीवन को अक्षुण्ण बनाए रखना अंसभव होता।''[9]

नानाजी का यही विचार उन्हें राजनीतिज्ञ, प्रशासनिक और अकादमिक जगत के उन विद्वानों से उन्हें अलग करता है जो शासन या सत्ता के माध्यम से ही समाज में परिवर्तन के पक्षधर हैं। उन्होंने राष्ट्र की वास्तविक शक्ति को समाज, संस्कृति और नैतिक मूल्यों पर आधारित माना है, न कि केवल शासन या सत्ता आश्रित शक्ति को। भारतीय परंपरा में शासन की अपेक्षा धर्म, कर्तव्य और परस्पर सहयोग आधारित समाज की परंपरा रही है।

इसलिए नानाजी मानते हैं कि सत्ता अस्थायी होती है, परंतु समाज की चेतना शाश्वत रहती है। यही कारण है कि भारत ने विदेशी शासन, आक्रमणों और संकटों के बावजूद अपनी सामाजिक संरचना, संस्कारों और मानवीय संवेदनाओं को जीवित रखा।

उनका स्पष्ट विचार था कि राष्ट्र की मूलभूत शक्ति समाज में होती है। साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन जहाँ एक ओर राजनैतिक आजादी का संघर्ष था, वहीं, दूसरी ओर उनके जैसे विचारकों के लिए उपभोगवादी अमानवीय सभ्यता के चंगुल से मानव मात्र की मुक्ति भी थी। स्वतंत्रता संग्राम के पूरे इतिहास में मानव मात्र की मुक्ति का संदेश स्पष्ट था और इस मुक्ति में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता भी शामिल थी। उनका विचार था कि :

"विकास की ऐसी नीति अपनाएँ जिसमें जनसक्रियता सुनिश्चित हो और लोकहित के कर्तव्यों को पूरा करने के लिए ऐसा शासन तंत्र हो जिसमें जिम्मेदारी का भाव समाहित हो।"[10]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एवं राजनैतिक आजादी के इतर अन्य समस्त स्वतंत्रताओं को गाँव के हर एक व्यक्ति तक बिना भेदभाव के पहुँचाना ही नानाजी देशमुख के समस्त क्रिया जगत का सार है। उन्होंने वास्तविक विकास सिर्फ सरकारी कार्यक्रमों या आर्थिक ढांचे के विकास को नहीं माना, बल्कि जनसहभागिता आधारित लोकहित के कर्तव्यों पूरा करने को प्रगति माना है। यदि विकास नीतियाँ जनता की आवश्यकताओं, सहभागिता और सुझावों पर आधारित होंगी, तभी टिकाऊ व सतत विकास प्रभावी रूप से हो पाएगा। सत्ता का कार्य केवल आदेश देना नहीं होना चाहिए, बल्कि लोगों में जिम्मेदारी, पारदर्शिता और सेवा का भाव उत्पन्न करना होना चाहिए।

अंग्रेजी शासन का प्रभाव भारतीय समाज पर बहुत गहरे स्तर पर जम चुका था और आज भी वह प्रभाव मौजूद है। अंग्रेजों के आने से पहले जो गाँव एवं समाज स्वायत थे, वे हर बात के लिए सरकार पर निर्भर रहने लगे। सबसे विषमकारी प्रभाव यह हुआ कि ग्रामीण समाज की सत्ता पर निर्भरता बढ़ गई और इस प्रवृत्ति को स्वतंत्र भारत में भी दूर करने के लिए ज्यादा प्रयास नहीं हुए :

"प्रगति के लिए आवश्यक क्षमता अर्जित किए बिना उन्नत राष्ट्रों की नकल करने मात्र से अपनी अभिलाषाएं पूर्ण नहीं होती। प्रत्येक नव-स्वतंत्र राष्ट्र को अपनी सामाजिक परंपरा, वर्तमान अवस्था तथा उपलब्ध संस्थानों के आधार पर ही अपनी प्रगति की योजना बनाकर कदम बढ़ाने चाहिए। तभी राष्ट्र की आकांक्षाएँ पूर्ण होती हैं।"[11]

नानाजी विकास की दिशा दूसरों की नकल के अपेक्षा स्वयं की परिस्थितियों के अनुरूप विकसित करने के पक्षधर थे। उनका मानना था कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि एवं विशेषताएं होती हैं, इसलिए प्रत्येक राष्ट्र की प्रगति की दिशा उसकी विशेषताओं के अनुरूप होनी चाहिए। यदि कोई राष्ट्र अपनी विशेषताओं को छोड़कर विकसित देशों की नीति और जीवनशैली के पीछे भागेगा, तो वह अपनी पहचान खो बैठेगा। इसलिए भारत को विकसित देशों की नकल करना छोड़कर अपनी शक्ति, संस्कृति और मूल्यों को आधार बनाकर ऐसा प्रारूप निर्मित करना चाहिए, जो स्थायी और सार्थक विकास की दिशा में अग्रसर हो सके।

भारतीय समाज संस्कृति, सभ्यता और मूल्यबोध की एक जीवंत धारा है। हमारे समाज की जड़ें गहराई

तक हमारी परंपराओं, ज्ञान परंपरा और लोकजीवन में समाई हुई हैं। इसलिए नानाजी राष्ट्र की प्रगति विकसित देशों की नकल के आधार पर नहीं करना चाहते थे बल्कि जो राष्ट्र अपनी संस्कृति, परंपरा एवं क्षमताओं के अनुसार विकास करेगा, वही अपना वास्तविक विकास कर पाएगा–

''हजारों साल की अखंड परंपरा से हम जुड़े हुए हैं। उसी से हमें चिरंतन जीवन-मूल्य प्राप्त हैं। राष्ट्र नवनिर्माण में वे ही हमारे मार्गदर्शक तत्व हैं। उन्हीं के आधार पर किया गया विकास विश्व में अपने राष्ट्रजीवन की विशेषता उजागर करेगा।''[12]

अपनी परंपरा से प्राप्त जीवन–मूल्य ही हमारे राष्ट्र निर्माण और विकास के मार्गदर्शक तत्व हैं। नानाजी देशमुख की विशेषता रही कि इस प्रवृत्ति को दूर करने के लिए ग्रामीण समाज के भीतर जागरुकता उत्पन्न की। समाज की शासनाभिमुखता को त्याग कर ग्रामीण समाज को ग्रामीण पुर्नरचना के लिए स्वयं पहल करने का आत्मविश्वास और संबल दिया। नानाजी ने इस कार्य की पूर्ति केवल शब्दों से ही नहीं बल्कि अपने अथक कर्मशील प्रयासों से भी की।

स्वतंत्र भारत के अधिकांश नौकरशाह, राजनेता और बुद्धजीवी पश्चिमी दृष्टि का अनुसरण करते हुए भारत को अंधाधुंध औद्योगिकीकरण और तकनीकी बदलाव में सिरमौर देखना चाहते थे। ऐसा करते हुए वह उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिणामों की उपेक्षा कर देते थे। अगर उनका संज्ञान भी लिया जाता था तो भी उसे तथाकथित विकास की अनिवार्य लागत बताया जाता है। नानाजी प्रस्थ्तावित करते हैं कि भारत की अपनी प्रगति एवं विकास की दृष्टि पश्चिमी विश्व दृष्टि की पिछलग्गू नहीं होनी चाहिए बल्कि अपनी सनातन दृष्टि के आधार पर विकास की राह बनानी चाहिए–

''नव स्वतंत्र भारत की स्थिति सर्वथा विभिन्न है। अन्य देशों से धन या सामग्री बटोरने की हमारी परंपरा नहीं है। प्रकृति की कृपा से हमारी निसर्गदत्त संपदा देश के लाखों गाँवों में फैली हुई है। वह प्रतिवर्ष समाज की आवश्यकताएँ पूर्ण करने में समर्थ है, अतय हमें अपने राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए पश्चिमी देशों के समान पूँजीप्रधान शहरी सभ्यता अपनाना न अनुकूल है, न आवश्यक।''[13]

नानाजी भारत के विकास का आधार संस्कृति, प्राकृतिक संपदा और ग्रामीण समाज में निहित मानते थे, न कि पश्चिमी औद्योगिक मॉडल पर आधारित। भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है, जहाँ प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलित एवं पारस्परिक संबंध पुरातन काल से रहे हैं। इसलिए उनका मानना है कि इस संतुलन को छोड़कर अगर हम अंधाधुंध औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की ओर चलेंगे, तो इससे न केवल पर्यावरणीय असंतुलन बढ़ेगा, बल्कि सामाजिक असमानताएं और अधिक विकराल होती जाएंगी। इसलिए भारत को अपनी आर्थिक नीति का निर्माण इस प्रकार करनी चाहिए, जिसमें गाँवों की उत्पादनशीलता बढ़े, स्थानीय संसाधनों का संरक्षण हो और स्वावलंबी समाज का निर्माण हो सके।

उनका विचार था कि स्वतंत्र भारत की समृद्धि के लिए पश्चिमी पूँजीप्रधान शहरी सभ्यता अपनाना न आवश्यक है, न अनुकूल, क्योंकि हमारे यहाँ फैली प्राकृतिक संपदा ही समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है–

''इसका अर्थ यह नहीं कि संसार में हुई वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति से हम अपना मुँह मोड़ना चाहते हैं- जीवनोपयोगी नूतन साधनों का तिरस्कार करने पर हम उतारू हैं-आधुनिक दुनिया से अपने को

अलग-थलग रहने की हमारी मनीषा नहीं है। यह सत्य है कि हमारी अपनी विशेष जीवन- दृष्टि है। उस जीवन-दृष्टि के आधार पर आधुनिक काल में प्रगति करने के लिए हम आर्थिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना करना चाहते हैं।''[14]

वह स्पष्ट करते हैं कि वह प्रगति के अपने विचार में आधुनिक विज्ञान और तकनीकी प्रगति से विमुख नहीं हैं, बल्कि अपनी विशेष जीवन–दृष्टि के आधार पर सामाजिक पुनर्रचना और प्रगति करना चाहते हैं। साथ ही वह यह मानते थे कि भारत का नवनिर्माण आधुनिक ज्ञान एवं तकनीकी को आधार बनाकर किया जाना चाहिए, लेकिन वह हमारी संस्कृति एवं समाज अनुरूप होनी चाहिए। आधुनिक समाज के विकास हेतु वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति आवश्यक है, लेकिन इसे समाज की आवश्यकताओं और नैतिक मूल्यों के अनुरूप विकसित करना होगा। वह भारत के नवनिर्माण में आधुनिक विज्ञान और परंपरागत ज्ञान को समन्वय रखकर दिशा प्रदान करने के पक्षधर थे।

नानाजी का विचार था कि कृषि को ही आधार बनाकर भारत को अपनी योजना बनानी चाहिए, क्योंकि समस्त अन्य उद्योग धंधे कृषि का ही विस्तार है। वे उद्योगों की स्थापना चाहते हैं परंतु उन उद्योगों की प्रकृति एवं संरचना भारतीय तरीकों की होनी चाहिए। वह तकनीक विकास को जरूरी मानते हैं और उसे वरीयता देते हुए चेतावनी भी देते हैं कि तकनीकी विकास में मानवीयता/संवेदशीलता (अध्यात्मिकता) का समावेश होना ही चाहिए। उनके औद्योगीकीकरण का उद्देश्य लोगों की बुनियादी जरूरतें पूरी करना होगा न कि प्राकृतिक साधनों का निर्मम शोषण एवं अकूत धन–संपदा का निर्माण–

''भौतिकता या आध्यात्मिकता की अति न व्यक्ति के लिए उपयोगी है, न समाज के लिए हितकर। दोनों में संतुलन अर्थात परस्पर पूरकता मानव जीवन की आवश्यकता है। मानव जीवन में यह सामंजस्य प्रस्थापित करने के लिए संस्कार एवं शिक्षा की अनिवार्यता है।''[15]

वे मानव जीवन में भौतिकता और आध्यात्मिकता के संतुलन को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनका का मानना है कि मानव जीवन का समग्र विकास भौतिक और आध्यात्मिक संतुलन के आधार पर किया जाना चाहिए, जिससे व्यक्ति भौतिक सुख–सुविधाओं के लोभ में स्वार्थी और संवेदनहीन न बने। साथ ही केवल आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित होकर सांसारिक उत्तरदायित्वों से विमुख न हो। मानव जीवन की वास्तविक सुंदरता तब निर्मित होती है जब व्यक्ति इन दोनों पक्षों में संतुलन स्थापित करता है। यह संतुलन संस्कार और शिक्षा के माध्यम से स्थापित किया जा सकता है जिससे मनुष्य भौतिक प्रगति करते हुए भी नैतिकता, करुणा और कर्तव्यबोध को बनाए रखे। नानाजी समाज के स्थायी और सतत विकास हेतु बुद्धि और आत्मा दोनों के विकास पर आधारित शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता पर बल देते हैं।

नानाजी देशमुख ग्रामीण पुर्नरचना की अपनी प्रक्रिया में एकांगी दृष्टिकोण नहीं रखते हैं अर्थात् विकास की उनकी प्रक्रिया में गाँव के साथ शहरों का भी विकास करना चाहते हैं–

''आवश्यकता है संवेदनशीलता, समाज निष्ठा एवं कर्तव्य तत्पर मानसिकता को व्यावहारिक जीवन में उतारने की। शहर एवं ग्रामों में परस्परपूरकता की भावना एवं व्यवहार प्रचलित करने की। कारण, शहरों एवं ग्रामों का जीवन एक-दूसरे पर निर्भर है। किसी एक का विकास दूसरे के बिना असंभव है। दोनों देशव्यापी समाज के अभिन्न अंग हैं, सर्वांगीण विकास की परिकल्पना तभी साकार हो सकेगी जब ग्राम व शहर दोनों

के विकास का परस्परपूरक रूप खड़ा किया जाएगा।''[16]

उनके लिए शहर त्याज्य नहीं हैं बल्कि वे विकास की पारस्परिक निर्भर प्रक्रिया के हिमायती रहे हैं उनके लिए दोनों का अभिन्न महत्त्व है। वे समकालीन समय में शहरों की उन्नति को विकास का पर्याय नहीं मानते हैं। उनके लिए शहरों का विकास गाँव के विकास के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। वे गाँवो की उन्नति के आधार पर ही शहरों के विकास को श्रेष्ठ मानते हैं।

नानाजी शिक्षा को केवल ज्ञान अर्जन का माध्यम नहीं मानते, बल्कि राष्ट्र निर्माण की मूलभूत शक्ति मानते हैं। वह ऐसी शिक्षा प्रणाली के पक्षधर हैं जो व्यक्ति में आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करे। स्वतंत्र भारत में शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने कहा है कि–

''सामाजिक व आर्थिक पुनर्रचना को साकार करने वाले स्वावलंबी, स्वाभिमानी नागरिकों का विकास करने वाली शिक्षा प्रणाली का आविष्कार करना।''[17]

शिक्षा व्यक्ति को केवल नौकरी से जोड़ने वाली नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे समाज की दृष्टि से उपयोगी बनाने वाली होनी चाहिए। उनका मानना है कि हमें इसी प्रकार की शिक्षा प्रणाली विकसित करनी होगी, जो किताबी ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक कौशल, नैतिक मूल्य और जनकल्याण की चेतना पर आधारित हो।

उन्होंने ऐसी शिक्षा प्रणाली को आवश्यक माना है जो स्वावलंबी और स्वाभिमानी नागरिकों का निर्माण करे। यह शिक्षा प्रणाली केवल ज्ञान नहीं, बल्कि व्यक्तित्व विकास और जिम्मेदार नागरिक का निर्माण करने वाली हो–

''शिक्षा वही है, जो छात्र–छात्राओं को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाएं, अतः किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना समाज के प्रत्येक बालक एवं बालिका को समान शिक्षा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। सबके लिए समान शिक्षा पर ही राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति एवं समाज का स्वास्थ्य निर्भर करता है।''[18]

नानाजी ने सभी को भेदभावरहित समान शिक्षा प्रदान करने को ही समाज और राष्ट्र की उन्नति की आधारशिला माना है। साथ ही उन्होंने नई पीढ़ी के सर्वांगीण विकास की शिक्षा की समुचित व्यवस्था उपलब्ध कराई जाने का दायित्व समाज को माना है।

नानाजी के लिए शिक्षा का अर्थ मैकाले की शिक्षा पद्धति का अनुसरण मात्र नहीं है बल्कि स्वतंत्र भारत में उसी मैकालेवादी शिक्षा पद्धति को बनाए रखना समस्याओं की जड़ है–

''जो शिक्षा दी जा रही है, उससे शिक्षितों में अपने देश और समाज के प्रति कोई दायित्व अनुभव नहीं होता।''[19]

नानाजी शिक्षा को केवल बौद्धिक विकास नहीं मानते, बल्कि चरित्र निर्माण और राष्ट्रीय चेतना के विकास से जोड़कर देखते हैं। मैकाले की जिस शिक्षा पद्धति का हम अनुसरण कर रहे हैं वह भारत में इसलिए लाई गई थी कि भारतीयों को अपनी जड़ों से हटाकर अंग्रेजी शासन के लिए क्लर्क तैयार किए जा सके। आजादी के बाद भी हम मैकाले की उसी शिक्षा पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं। नानाजी के अनुसार यही हमारी सबसे बड़ी भूल थी।

उनके लिए शिक्षा अर्थ उपार्जन के साथ–साथ मूल्य व संस्कारों की शिक्षा भी है। ऐसा नहीं है कि वे आधुनिक ज्ञान–विज्ञान को त्यागते है, बल्कि भारतीय जीवन मूल्यों को बढ़ाने वाले ज्ञान–विज्ञान को स्वीकार्य करने में सहज है। उनके लिए शिक्षा नई–पीढ़ी के सर्वागीण विकास का माध्यम है। एक स्थान पर उन्होंने शिक्षा को 'राष्ट्र

नवरचना का माध्यम' भी माना है–

"शिक्षा को राष्ट्र नवरचना का माध्यम मानने के स्थान पर आजीविका का साधन मात्र मानने का तथा विदेशी हुकूमत की नीति के अनुसार चलने का यह दुष्परिणाम है। प्रचलित शिक्षा पद्धति देश की नई पीढ़ी को आत्मविश्वास एवं स्वावलंबन के स्थान पर परजीवी एवं चाकरी वृत्ति की शिकार बना रही है।"[20]

पाश्चात्य शिक्षा का विरोध वह इस कारण करते हैं कि उसमें देश के पीढ़ी को आत्मविश्वास एवं स्वावलंबन के स्थान पर परजीवी एवं चाकरी वृति का शिकार बनाया है। इस शिक्षा व्यवस्था ने राष्ट्रनिर्माण की जगह केवल रोजगार प्राप्ति तक शिक्षार्थियों को सीमित कर दिया है, इसीलिए यह राष्ट्र के विकास में सहायक नहीं है। उनका मानना है कि इस शिक्षा पद्धति ने शिक्षार्थियों के अंदर से सृजनशीलता और नवाचार की भावना क्षीण कर दी है। जिसके कारण शिक्षित वर्ग समाज का नेतृत्व करने के बजाय नौकरी आधारित आश्रित जीवन जीने को विवश है।

सामाजिक उत्थान एवं ग्रामीण पुनर्रचना के अपने विशद योगदान में ही नहीं बल्कि भारतीय अकादमिक जगत में भी उनका सबसे बड़ा योगदान है– परिवार को विमर्श के केंद्र में लाना। तत्कालीन अकादमिक जगत जहाँ व्यक्ति और समाज के विरोधी होने व एक–दूसरे पर हावी होकर एक–दूसरे की स्वायत्तता को बाधित करने जैसे विषयों को भारतीय समाज में लागू कर रहे थेय दूसरी ओर, नानाजी देशमुख परिवार के विमर्श की भूमिका को भारतीय संदर्भ में विमर्श के केंद्र में ला रहे थे। नानाजी परिवार को मानवीय एवं सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई माना है–

"परिवार मानवीय सुसंस्कारों की सहज, स्वभाविक एवं प्राथमिक इकाई है। इसी कारण परिवार को सामाजिक जीवन की इकाई माना गया है।"[21]

नानाजी व्यक्ति के विकास का पहला विद्यालय परिवार को मानते हैं जहाँ व्यक्ति जीवन के मूल्य, संस्कार और सामाजिकता की पद्धति सीखता है। परिवार में प्रेम, सहयोग, अनुशासन और उत्तरदायित्व की भावना स्वाभाविक रूप से विकसित होती है। इसलिए वह परिवार को सुदृढ़ करने पर सर्वाधिक बल देते हैं जिससे समाज संगठित और संतुलित बन सके। आज के समय में जब लोगों के अंदर स्वार्थ और भौतिकता बहुत तेजी से बढ़ रही है, तब परिवार रूपी संस्थान का संरक्षण और सुदृढ़ीकरण बहुत आवश्यक हो जाता है। नानाजी आधुनिक समाजशास्त्रियों की तरह परिवार को सिर्फ रक्त संबंधों का समूह नहीं मानते, बल्कि वह भावनात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक आधार मानते हैं, जो किसी भी समाज की स्थिरता और विकास के लिए आवश्यक है।

आधुनिक सामाजिक पुनर्रचना में नानाजी ने सर्वाधिक बल परिवार के संरक्षण और सुदृढ़ीकरण पर दिया है। उन्होंने ऐसे प्रयासों वकालत की है जिससे पारिवारिक संबंधों में विश्वास, संवाद और संस्कारों की पुर्नस्थापना हो सके। उन्होंने सर्वांगीण विकास के लिए परिवार को मूलभूत इकाई के रूप में महत्ता प्रदान की है–

"सामाजिक पुनर्रचना का कार्य अपनाने वालों को कौटुंबिक अवधारणा के मूलभूत तत्वों को फिर से व्यावहारिक रूप प्रदान करने की दिशा में गतिमान होना होगा। कुटुंब ही समाज की आधारभूत इकाई है। इसकी पुनर्प्रतिष्ठा किए बिना सामाजिक पुनर्रचना एवं राष्ट्रोन्नति संभव नहीं हो सकती।"[22]

भारतीय अकादमिक जगत में परिवार की भूमिका पर बहस को प्रेरित कर उन्होने अविस्मरणीय योगदान दिया है। उनके अनुसार भारतीय संदर्भ में व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी परिवार रही हैं और सामाजिक

उत्थान की प्रक्रिया में पाश्चात्य अकादमिक जगत के बुद्धिजीवियों ने इसकी घोर उपेक्षा की है।

सारतः यह कहा जा सकता है कि नानाजी के विचारों की आधारभूमि भारतीय चित्त एवं संस्कार हैं। उन्हीं के आधार पर वह भारतीय ग्रामीण पुनर्रचना, शिक्षा एवं कौटुंबिक अवधारणा की पुर्नस्थापना का आह्वान करते हैं। अपने समय के बौद्धिक आंतकों से अविचलित रह कर जमीनी स्तर पर बदलाव का प्रस्ताव करते हुए अपने कार्यक्रमों और संस्थाओं के माध्यम से बदलाव को संभव बनाते हैं। विचार की प्रस्तुति और उसका कर्म में रूपान्तरण उन्हें भारतीय वैचारिक परम्परा एवं सामाजिक जीवन में विलक्षण बनाता है। आज के विउपनिवेशीकरण और भारतीय राष्ट्र की आत्म की पुर्नस्थापना के समय में नानाजी देशमुख हमारे मार्गदर्शक के रूप में एक दीप स्तम्भ की भॉति हैं। उनके विचारों और कर्मशीलता के लिए भारतीय समाज उनका ऋणी रहेगा।

संदर्भ :

1. जैन, अतुल (संपादक) (2014). विराट पुरूष : समाजशास्त्री नानाजी. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 22
2. जैन, अतुल (संपादक). (2014). विराट पुरूष : अर्थशास्त्री नानाजी. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 04
3. जैन, अतुल (संपादक) (2014). विराट पुरूष : समाजशास्त्री नानाजी. पृ. 40
4. वही. पृ. 28
5. वही. पृ. 140
6. वही. पृ. 128
7. स्वरूप, देवेंद्र, देशमुख, यादवराव एवं जैन, अतुल (संपादक). (2017). राष्ट्र–ऋषि नानाजी देशमुख. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 108
8. जैन, अतुल (संपादक) (2014). विराट पुरूष : समाजशास्त्री नानाजी. पृ. 07
9. जैन, अतुल (संपादक) (2014). विराट पुरूष : समाजशास्त्री नानाजी. पृ. 02
10. स्वरूप, देवेंद्र, देशमुख, यादवराव – जैन, अतुल (संपादक). (2017). राष्ट्र–ऋषि नानाजी देशमुख. पृ. 88
11. वही. पृ. 14
12. वही. पृ. 14
13. वही. पृ. 9–10
14. वही. पृ. 63
15. वही. पृ. 23
16. वही. पृ. 21
17. जैन, अतुल (संपादक). (2014). विराट पुरूष : अर्थशास्त्री नानाजी. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 10
18. जैन, अतुल (संपादक) (2014). विराट पुरूष : समाजशास्त्री नानाजी. पृ. 24
19. वही. पृ. 12
20. वही. पृ. 24
21. जैन, अतुल (संपादक). (2014). विराट पुरूष : अर्थशास्त्री नानाजी. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृ. 6
22. जैन, अतुल (संपादक) (2014). विराट पुरूष : समाजशास्त्री नानाजी. पृ. 71

shambhujoshi@hindivishwa.ac.in, ankitpandey88023@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 76-80

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

यम नियम और आधुनिक मानव का अध्ययन

रविन्द्र सिंह राणा, शोधार्थी,
डॉ. महेश चन्द्र, शोध निर्देशक,
योग विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

शोध आलेख सार –

आज मानव के विज्ञान और तंत्र विद्या में बहुत प्रगति कर ली है, लेकिन इस कारण मनुष्य की समस्याएं कम होने की बजाय बढ़ती ही चली जा रही है। यहां पर एक बात ध्यान में आती है, जितनी आवश्यकताएं कम हो उतना मनुष्य सुखी होता है, जितनी आवश्यकताएं बढ़ती जाती है, उतना मनुष्य दुखी होता है। एक ओर देश का विकास हो रहा है, लेकिन समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, इनके प्रति कुछ करना हमारा कर्तव्य है।

वर्तमान समय में मनुष्य अनेक समस्याओं से पीड़ित है, जिनके लिए प्रयास किए जा रहे हैं। प्रमुख समस्याओं में जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद, अशिक्षा, घुसपैठ, भ्रष्टाचार, बाल विवाह, बाल हत्या, बीमारियां, दहेज प्रथा, अस्पृश्यता ये सभी सामाजिक समस्याएं हैं, इनका उपाय करने के लिए देश, राज्य और समाज प्रयास कर रहा है लेकिन वह पर्याप्त नहीं है, इन सभी समस्याओं का हल महर्षि पतंजलि द्वारा निर्दिष्ट यमनियमों में है। सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की सभी समस्याओं का हल हमें महर्षि पतंजलि ने पच्चीसो साल पहले ही बता दिया है। आज भी उनकी महत्ता इतनी है कि उनके पालन से सभी समस्याओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

मूल शब्द – यम–नियम और आधुनिक मानव।

भूमिका –

योग विद्या भारत का प्राचीन शास्त्र है। लेकिन आज वर्तमान में योग का प्रचार संपूर्ण विश्व में हो रहा है, आज आधुनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधि दैविक दुखों से चिंतित है, आज वर्तमान युग में एक भी मानव ऐसा नहीं है, जो तीनों प्रकार के दुखों से मुक्त है, क्योंकि आज मानव की आवश्यकताएं अनगिनत हो चुकी है, इस कारण उसके पास साधन संपत्ति बहुत होने के बाद भी वह तान तनाव से घिरा हुआ है।

अतिव्यस्त आधुनिक शैली को अपनाने के कारण तनाव, अविश्राम, अराजकता और अनिद्रा, निराशा, विफलता से ग्रस्त है। जल, ध्वनि, वायु प्रदूषण बढ़ चुका है। परिणाम स्वरूप शारीरिक और मानसिक संतुलन चिंताएं, उदासी, अकेलापन, नकारात्मक विचार इन सब ने उस पर कब्जा किया है।

सोशल मीडिया, अखबार, मोबाइल, इंटरनेट इन के अति संपर्क के कारण आंखें, कान और मस्तिष्क की बीमारियां हो रही है। फास्ट फुड, जंक फूड, चटपटे पदार्थ और अति संस्कारित पदार्थों के कारण कम उम्र में डायबिटीज, ब्लड प्रेशर और कैंसर जैसी बीमारियां हो रही है।

आज आधुनिक मानव के बेहतर स्वास्थ्य के लिए योग विद्या की जरूरत है। योगिक क्रियाओं के द्वारा सभी उम्र के व्यक्ति को स्वास्थ्य लाभ होता है। आज के युग में समाज का पतन रोकने के लिए यमनियम की आवश्यकता है। आज नैतिक और सामाजिक मूल्यों का संवर्धन होना आवश्यक है।

महर्षि पतंजलि के यम नियम भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। यह केवल साधू सन्यासियों के लिए नहीं अपितु सभी गृहस्थाश्रमी लोगों के लिए सन्मार्ग है। जो साधक यमनियमों का पालन करता है, उसे किसी भी प्रकार का तनाव, बीमारियां निर्माण नहीं होती है। सरल जीवन पद्धति अपनाने के कारण व्यक्ति सुखी होता है। या यमतथा नियम एक सकारात्मक मानसिकता तैयार करते हैं, अच्छे गुणों को जागृत करते हैं। यम नियमों के कारण व्यवहार में परिवर्तन होता है, वह व्यवहार रचनात्मक और सकारात्मक होता है। मानव के व्यवहार को शुद्ध और संयमित बनाने के लिए नियमों का पालन जरूरी है। हम आगे देखेंगे कि महर्षि पतंजलि के यम नियम आधुनिक मानव को स्वस्थ और निरामय जीवन में अत्यंत आवश्यक है।

आधुनिक जीवन शैली :-

मानव जीवन बहुत ही सुंदर और अनमोल है, परमात्मा की सबसे अनोखी निर्मिती मनुष्य प्राणी है। मनुष्य धरती पर सबसे बुद्धिमान प्राणी भी है, लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि, सभी प्राणियों में सबसे गलत जीवनशैली मानव की ही है। अपनी बुद्धिमत्ता से वह धरती पर स्वर्ग भी निर्माण कर सकता है और गलत जीवनशैली के कारण नर्क भी बना सकता है।

आज मनुष्य को जितनी बीमारियां हो रही है, उसका प्रमुख कारण आधुनिक जीवन शैली है।

सुबह जल्दी उठना चाहिए, तो वह देरी से उठता है, रात को जल्दी सोना चाहिए तो वह देरी से सोता है। रात आराम करने के लिए होती है, फिर भी वह जागरण करता है। आज आधुनिक जीवन में हम हमारी संस्कृति को ही भूल गए हैं। इस शैली से मनुष्य आलसी और रुग्ण बन गया है। भारतीय जीवन शैली के मुताबिक लोग पहले खेतों में काम किया करते थे, ज्यादातर लोग किसानही थे इसलिए सुबह जल्दी उठकर, नाश्ता कर के खेतों में पहुंच जाते थे, फिर दिन भर ऊपर आकाश, नीचे मिट्टी, खेतों में पानी, धूप और सभी तरफ शुद्ध हवा होती थी। अर्थात पंचमहाभूतों से मनुष्य का संपर्क होता था। संत तुकोबा कहते हैं, 'वृक्ष वल्ली आम्हा सोयरे, वनचरे' सही मायने में पेड़, पशु, प्राणी, पर्यावरण ही हमारे रिश्तेदार है। जो हमे फल, फूल सब देते हैं।

हमारा शरीर पंच भूतों से बना है, हमारा संपर्क ज्यादातर पंचमहाभूतों से आना चाहिए, यही बात हमारे पूर्वज करते थे। छोटे–छोटे गांव होते थे, वहां पर ही लोग अपनी आवश्यकताएं पूर्ण कर सकते थे। बाद में खेती की जगह बड़े–बड़े मकान, कारखानोंने ले ली।

आज सब तरफ सिमेंट के जंगल हो चुके हैं, बड़ीबडी बिल्डिंग के कारण सूरज दर्शन भी कम हो गया है। सूरज अस्त होने के समय लोग खाना खाकर जल्दी सो जाते थे, पर जल्दी उठते थे। मराठी भाषा में एक कहावत है, "लवकर निजे, लवकर उठे तया ज्ञान, आरोग्य, संपत्ति भेटे" जो नींद का त्याग करके जल्दी उठते हैं, तो उनको ज्ञान, आरोग्य और संपत्ति मिलती है। जल्दी उठने के ढेर सारे उपयोग है।

आज उठते ही सूर्य दर्शन नहीं तो मोबाइल दर्शन करते। संत विनोबा कहते हैं, 'प्रभाते मल दर्शनम्' अर्थात सुबह उठते ही शौच को जाना चाहिए। फिर सभी पूर्ण दिन की शुरुआत अच्छी होती है। फिर दिन भर हमारा उत्साह रहेगा।

आधुनिक मानव :–

आधुनिक का अर्थ होता है, आजकल का, वर्तमान काल का, नए जमाने का, अर्थात नए जमाने के मानव को आधुनिक मानव कहते हैं। आधुनिकता का अर्थ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सम कालीन को परंपरागत से अलग समझना है। समाज के अंतिम से अंतिम मुल्यो का स्वीकार करने वाले व्यक्ति को आधुनिक कहते हैं।

आधुनिक मानव अपनी जीवनशैली के कारण परंपरागत अच्छे संस्कारों से दूर हो रहा है, सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ है। भारत का जो तांत्विक आधार था, उसमें आधुनिक मूल्यों ने बदलाव किया है, जैसे आश्रम अवस्था में व्यक्ति का जीवन ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम चार भागों में था। आधुनिकीकरण होने से संन्यासाश्रम और वानप्रस्थाश्रम का मूल्य घट गया है, क्योंकि आज का मानव में धार्मिकता, आध्यात्मिकता की भावना कम हो गई है। ब्रह्मचर्याश्रम की उम्र में स्कूल और कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करता है और उसके बाद गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके भौतिक उपभोग में ही अपनी सारी जिंदगी बिता देता है। आज ब्रह्मचर्याश्रम में भी जो नैतिकता और संयम का पालन होना चाहिए वह नहीं रहा है। इसलिए आधुनिक मानव की जीवन शैली में आश्रम व्यवस्था के रूप में बहुत ही परिवर्तन हुआ है। पुरुषार्थ व्यवस्था में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सम्मिलित थे। इसमें भी आधुनिक मूल्यों के कारण धर्म और मोक्ष की उपेक्षा हुई। क्योंकि आधुनिक मूल्य विज्ञान और तर्क पर आधारित जो है, उसका स्वीकार करते हैं, इसलिए आज का मानवसिर्फ अर्थ व काम इन दो पुरुषार्थ पर ही ध्यान दे रहा है। भारतीय परंपराओं में मुख्य रूप से सोलह संस्कारों को स्वीकार किया गया है स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में सोलह प्रकार के संस्कारों का वर्णन किया है, उन संस्कारों में जन्म से लेकर मृत्यु तक सारे संस्कार आते हैं। आधुनिक मूल्यों संस्कारों के कारण बहुत सारे संस्कार लुप्त हो चुके हैं।

मानव की आवश्यकताएं पहले सिर्फ रोटी, कपड़ा और मकान थी, उसके बाद शिक्षा एक जरूरत बढी, पहले आदमी को खाने के सिर्फ सब्जी, रोटी इतने ही मेनू थे लेकिन आज अनगिनत पदार्थ खाता है, अर्थात पेट भरने के लिए भोजन की जरूरत थी, आवश्यकता थी, मगर आज चटपटे पदार्थों के अधीन होकर अपना स्वास्थ्य खराब कर रहा है, पिज्जा, बर्गर, कचौड़ी, समोसा, जलेबी, चाइनीज आइटम, पानी पुरी इन के कारण बीमार हो रहा है। महात्मा गांधी कहते हैं, ''हम जीने के लिए खाते हैं, खाने के लिए नहीं जीते।'' लेकिन इन बातों की तरफ मानव का ध्यान नहीं है सभी बीमारियों की जड़ गलत आहार है। डॉक्टर हिपोक्रिटस कहते हैं, "Your food is your Medicine" आहार ही ऐसा होना चाहिए, जो औषधि का काम करें, तो चिंतन यह है कि इसे हम आधुनिक मानव कहे क्या? इसे हम प्रगति कह सकते हैं क्या? पहले किसान लोग खेतों में दिन भर काम करते थे और कम पदार्थ कम संस्कारित पदार्थ खाते थे, आज आधुनिक मनुष्य बौद्धिक कार्य ज्यादा करता है, शरीर को हलचल कम देता है और गलत आहार लेता है, संत तुकाराम कहते हैं, ''अन्न तारी, अन्नमारी, अन्न नाना विकारी" अन्न, अर्थात भोजन हमारे जीवन की आवश्यकता है। लेकिन उसे गलत तरीके से गलत रूप में स्वीकार किया तो वह मारता भी है और अलग–अलग बीमारियां भी निर्माण करता है।

दूसरी आवश्यकता कपड़ा थी कपड़ों का उद्देश्य तन को ढकना यही है, इसलिए पहले किसान लोग ध ोती पहनते थे, सफेद रंग की कमीज पहनते थे। ऐसे कपड़ों के कारण उनको हलचल करना आसान होता था, सेहत के लिए भी अच्छे थे। कड़ी धूप में काम करने मे भी तकलीफ नहीं होती थी।

आज कपड़ों में ढेर सारे परिवर्तन आए हैं। तंग कपड़े या उनके ज्यादा प्रमाण के कारण भी शरीर का नुकसान होता है। आवश्यकता से ज्यादा कपड़ों में आदमी उलझा है। तीसरी जरूरत मकान है, हमें रहने के लिए घर चाहिए। पहले लोग जंगल में रहते थे। बाद में कुटिया करके रहने लगे। लेकिन धीरे–धीरे इतनी जरूरत बढाली की, आज का मानव पूरी तरह से सीमेंट के मकानों में समा गया है।

बड़े–बड़े शहर, सभी तरफ पक्के सड़क और सब तरफ बड़े–बड़े भवन निर्माण हुए हैं। अर्थात आवश्यक तीन बातों में भी मानव ने बहुत ही बड़ा कर रखी है फिर इन सब को पाने के लिए पूर्ण जीवन समर्पित कर देता है, अपनी जीवनशैली पुरी तरह से बिघाड़ रहा है।

ब्रह्ममुहूर्त पर उठने वाला मनुष्य सुबह देरी से उठता है। करदर्शन, मलदर्शन, सूर्यदर्शन की बजाय वह मोबाइल दर्शन करता है, याने सुबह उठते ही अगर हाथ में मोबाइल लिया तो स्वास्थ्य की समस्या आएगी ही, क्योंकि सुबह प्रातः विधि के लिए होती है, बाद में कामों की शुरुआत होनी चाहिए।

मोबाइल, इंटरनेट, व्हाट्सएप, फेसबुक इनमें ही दिन भर उलझे रहते हैं। इन सब का महत्व इतना बढ़ चुका है, तो लोगों को भूख ,प्यास नहीं लगती अभी कोविड19 के कारण स्कूल, दफ्तर बंद रहने से बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई और परीक्षा हुई, तो बच्चों को इंटरनेट के संपर्क में रहना ही है। आज का मनुष्य मोबाइल के बिना जीवित नहीं रह सकता, इतनी आदत हो गई है, क्योंकि मोबाइल में उसकी पूरी दुनिया है। लाईट बिल भरना, पैसा ट्रांसफर करना, रेल, हवाई जहाज का टिकट बनाना, शॉपिंग सभी बातें आज मोबाइल से होती है। चर्चा करने के लिए दोस्तों और रिश्तेदारों की जरूरत नहीं होती।

एक सुविचार था, 'जिसके साथ अच्छे विचार होते हैं, वह कभी भी अकेला नहीं होता।' लेकिन अभी उसमें बदलाव है, 'जिसके साथ मोबाईल होता है वह कभी भी अकेला नहीं रहता है।'

उद्देश्य –

1. पतंजलि के यम नियमों का आधुनिक मानव की सफलता और शांतिपूर्ण जीवन के लिए उपयुक्तता सिद्ध करना।
2. यम नियमों के प्रति आधुनिक समाज में जागरुकता निर्माण करना।

शोध विधि :–

शोध विधि : प्रस्तुत अध्ययन विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक शोध विधि के माध्यम से संपन्न किया गया है।

शोध दृष्टिकोण : प्रस्तुत शोध कार्य का दृष्टिकोण गुणात्मक शोध रखा गया है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध कार्य का प्रारुप विवरणात्मक शोध प्रारुप रखा गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य केवल महर्षि पतंजलि निर्दिष्ट यम–नियम और इनका आधुनिक मानव के लिए उपयोग पर आधारित हैं।

सारांश –

प्राचीन समय से लेकर आज आधुनिक युग तक मनुष्य की जीवन पद्धति में बड़ी मात्रा में बदलाव आया है, वैज्ञानिक प्रगति के कारण अपना जीवन आसान हुआ है, ऐसे लगता है, लेकिन यह सही है क्या? आज हर चीज तत्काल मिलती है, दुनिया अब बहुत छोटी हो चुकी है। पहले दूसरे गांव जाना कठिन मालूम होता था, लेकिन आज गांव तो क्या? किसी भी देश में पहुंचना सहज हो चुका है, एक तरफ विज्ञान की तरक्की दिखाई देती है और दूसरी तरफ ढेर सारी बीमारियां, समस्याएं निर्माण हुई है। जीवन का लक्ष्य जन्म लेना, शिक्षा प्राप्त करना, व्यवसाय करना, परिवार को बढ़ाना, और मर जाना इतना ही नहीं है, जीवन का लक्ष्य है, दिव्यता का अनुभव प्राप्त करना, आनंद प्राप्त करना है।

आज आधुनिक मानव के सभी समस्याओं का हल महर्षि पतंजलि मुनि ढाई हजार साल पहले बतलाते हैं, यम–नियम का अभ्यास करना चाहिए, पालन करना चाहिए, इनका संबंध मन से होता है, अपने मन को सुव्यवस्थित करने के लिए यम नियम है। मन को सूचित करना ही मनुष्य सुखी होता है, आज युवा वर्ग तेजी से रुग्ण हो रहा है, उसका कारण है संयम व अनुशासन की कमी यम नियम के पालन, अनुशासन के कारन बीमारीयाँ नष्ट होती है, या उनका पालन करने से निर्माण ही नहीं होती।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. चतुर्वेदी, खेमचन्द्र, योग साधना आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 2007
2. सिंह, प्रो. रामहर्ष, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण : 2014
3. आचार्य, पद्मश्री डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, योग और आरोग्य (साधना और सिद्धि), विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, द्वितीय संस्करण : 2012
4. सम्पूर्णानन्द, डॉ., योग दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण : 1965
5. विवेकानन्द, स्वामी, ध्यान तथा इसकी पद्धतियाँ, स्वामी ब्रह्मस्थानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर, प्रथम संस्करण : 2004

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 81-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सुशासन के सिद्धांत : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

रूखमणी मोहबे, शोद्यार्थी,
राजा शंकर शाह विश्वविद्यालय, छिन्दवाड़ा, म.प्र.
डॉ. मुन्ना लाल चौधरी, सहा. प्राध्या. संस्कृत,
शास. स्नातको. महाविद्यालय, सिवनी, म.प्र.

सार :

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारत का सर्वाधिक व्यवस्थित राज्य–एवं शासन–ग्रंथ है, जिसमें राज्य–संचालन, नीति–निर्माण, न्याय, कराधान एवं सुरक्षा से संबंधित सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन मिलता है। कौटिल्यीय शासन–दर्शन की व्याख्या समकालीन सुशासन की अवधारणा के संदर्भ में की गई है। जिसका मुख्य उद्देश्य सप्तांग सिद्धांत, राजधर्म, कराधान–नीति, न्याय–व्यवस्था एवं गुप्तचर–तंत्र जैसे कौटिल्यीय सिद्धांतों की तुलना विश्व बैंक के सुशासन संकेतकों तथा आधुनिक सुशासन मानदंडों से करना है। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि विधि के शासन, भ्रष्टाचार–नियंत्रण[1] एवं प्रशासनिक दक्षता के क्षेत्रों में कौटिल्य के सिद्धांत आधुनिक मानदंडों से उच्च स्तर की संगति रखते हैं, जबकि जन–भागीदारी के क्षेत्र में संरचनात्मक अंतर विद्यमान है। यह आलेख प्राचीन भारतीय राजनीति–चिंतन में सुशासन के सिद्धांत की समकालीन प्रासंगिकता स्थापित करता है तथा शोध–रिक्तियों की ओर भी संकेत करता है।

प्रस्तावना :

प्राचीन भारतीय राजनीति–चिंतन की परंपरा में कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक अद्वितीय एवं प्रमाणिक ग्रंथ है। जिसमें चौथी शताब्दी ईसा–पूर्व मौर्य साम्राज्य के राज्य–संचालन, अर्थव्यवस्था, विधि–व्यवस्था, कूटनीति एवं सुरक्षा–नीति की समेकित नियमावली है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में शामाशास्त्री द्वारा प्रकाशन के पश्चात यह ग्रंथ जहॉ एक ओर विश्वभर राजनीति–शास्त्रियों एवं प्रशासन–विदों की रुचि का केंद्र बना वहीं दूसरी ओर, 'सुशासन' की समकालीन अवधारणा को वैश्विक नीति–विमर्श में केंद्रीय स्थान प्राप्त किया, जिसमें जवाबदेही, पारदर्शिता, विधि का शासन, भ्रष्टाचार–नियंत्रण एवं प्रशासनिक प्रभावशीलता[2] जैसे मानदंड सम्मिलित हैं।

प्राचीन भारतीय राज्य–दर्शन एवं आधुनिक सुशासन के मध्य क्या संबंध है, यह प्रश्न प्रासंगिक है, तथा इसी का विश्लेषणात्मक प्रयास है। कौटिल्य का शासन अनेक महत्वपूर्ण बिंदुओं पर आधुनिक सुशासन मानदंडों का पूर्वसूचक है, यद्यपि लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में यह संरचनात्मक रूप से भिन्न है, फिर भी प्रस्तुत शोध पत्र बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

कौटिल्य का राज्य-दर्शन : सप्तांग सिद्धांत –

सप्तांग सिद्धांत कौटिल्य के राज्य–दर्शन का केंद्रीय आधार है, जिसमें राज्य को सात परस्पर–संबद्ध हैं। अर्थशास्त्र के प्रत्येक अंग को उसके अर्थ तथा सुशासन के साथ प्रस्तुत किया गया है :

स्वामी अर्थात **राजा**[3] को नेतृत्व एवं अंतिम उत्तरदायित्व का केंद्र माना गया है, जबकि **अमात्य** अर्थात मंत्रिपरिषद[4] निर्णय–प्रक्रिया में संतुलन तथा विशेषज्ञता प्रदान करती है, जो सत्ता के अनियंत्रित केंद्रीकरण को रोकने का कार्य करती है।

जनपद, अर्थात **राज्य-क्षेत्र**[5] एवं वहाँ निवास करने वाली प्रजा, कोष का मूल स्रोत राजस्व होने के साथ–साथ समस्त शासन–व्यवस्था के अस्तित्व का उद्देश्य भी है।

दुर्ग एवं दण्ड सुरक्षा[6] एवं कानून–व्यवस्था सुनिश्चित करते हैं, जबकि **कोष आर्थिक स्थिरता**[7] का आधार प्रदान करता है।

अंतिम अंग मित्र[8] अर्थात मित्र–राष्ट्रों के साथ संबंध, बाह्य कूटनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करता है।

यह सिद्धांत दर्शाता है कि कौटिल्य के अनुसार सुशासन किसी एक अंग की दक्षता से नहीं, अपितु सभी सातों अंगों के संतुलित एवं समन्वित कार्य–संचालन से ही संभव है। आधुनिक शासन–सिद्धांतों में भी यह "**प्रणाली दृष्टिकोण**[9] आज अत्यंत प्रासंगिक माना जाता है, जहाँ शासन को अंतर–संबद्ध संस्थाओं के एक जाल के रूप में देखा जाता है।

अर्थशास्त्र की संरचना : प्रमुख अधिकरण –

कौटिल्य अर्थशास्त्र पंद्रह अधिकरणों में विभाजित है, जिनमें से सात प्रमुख अधिकरणों को शासन–संबंधी सिद्धांतों के साथ प्रस्तुत किया गया है :–

विनयाधिकारिक अधिकरण :– राजकुमार की शिक्षा तथा आचरण–संहिता से संबंधित है, जो यह दर्शाता है कि कौटिल्य ने भावी शासक के नैतिक एवं बौद्धिक प्रशिक्षण को अत्यंत महत्व दिया।

अध्यक्षप्रचार अधिकरण :– विभिन्न विभागाध्यक्षों की नियुक्ति, कार्य–विभाजन तथा उत्तरदायित्व का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है, जो आधुनिक नौकरशाही–संरचना से पर्याप्त साम्य रखता है।

धर्मस्थीय अधिकरण :– नागरिक विधि एवं न्याय–व्यवस्था से संबंधित है।

कण्टकशोधन अधिकरण :– अपराध–निवारण एवं समाज–विरोधी तत्वों के दमन की प्रक्रिया का वर्णन करता है।

योगवृत्त अधिकरण :– गुप्तचर–तंत्र की कार्यविधि को विस्तार से समझाता है, जो प्रशासनिक निगरानी का एक अभिनव तंत्र प्रस्तुत करता है।

मण्डलयोनि एवं षाड्गुण्य अधिकरण :– क्रमशः अंतरराज्यीय संबंधों तथा विदेश–नीति के छह प्रकारों संधि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय एवं द्वैधीभाव का विवेचन करते हैं।

इससे स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र केवल एक सैद्धांतिक ग्रंथ नहीं, अपितु एक व्यावहारिक प्रशासनिक नियमावली है जो शासन के लगभग समस्त पक्षों को समाहित करती है[10]।

सुशासन के कौटिल्यीय स्तंभ –

कौटिल्य के सुशासन–दर्शन को पाँच स्तंभों में विश्लेषित किया जा सकता है राजधर्म, प्रशासनिक

संरचना, कराधान, न्याय–व्यवस्था एवं निगरानी–तंत्र।

राजधर्म : सत्ता का नैतिक आधार –

राजधर्म की अवधारणा कौटिल्य के शासन–दर्शन की नैतिक आत्मा है। 'प्रजासुखे सुखं राज्ञः' अर्थात प्रजा का सुख ही राजा का सुख है। यह सूत्र सत्ता के औचित्य को जनकल्याण से जोड़ता है। कौटिल्य 4 राजा के प्रमुख कर्तव्यों को निर्धारित करते हैं।

राजधर्म की अवधारणा कौटिल्य के शासन–दर्शन का नैतिक केंद्र है, तथा यह सारणी राजा के छह प्रमुख कर्तव्यों को प्रस्तुत करती है। प्रजा–पालन अर्थात प्रजा की सुरक्षा एवं भरण–पोषण को राजा का प्रथम एवं सर्वोपरि कर्तव्य माना गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कौटिल्य के अनुसार सत्ता का औचित्य जनकल्याण में निहित है, न कि केवल शक्ति–प्रदर्शन में।

योगक्षेम की अवधारणा, जिसका शाब्दिक अर्थ है नई संपत्ति की प्राप्ति (योग) एवं विद्यमान संपत्ति की सुरक्षा (क्षेम), राजा के आर्थिक उत्तरदायित्व को रेखांकित करती है। न्याय–प्रदान का कर्तव्य यह सुनिश्चित करता है कि राजा केवल शासक ही नहीं अपितु न्यायाधीश की भूमिका भी निभाता है, तथा उसे निष्पक्षता एवं शीघ्रता से न्याय प्रदान करना होता है[11]।

आत्म–संयम की अवधारणा विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इसमें राजा से अपेक्षा की जाती है कि वह इंद्रिय–निग्रह एवं नैतिक आचरण का पालन करे, अन्यथा वह प्रजा पर शासन करने योग्य नहीं माना जाता। योग्य नियुक्ति एवं निरंतर सतर्कता जैसे कर्तव्य प्रशासनिक दक्षता एवं राज्य–सुरक्षा से संबंधित हैं। यह स्पष्ट है कि कौटिल्य के अनुसार शासकीय शक्ति सदैव कर्तव्य एवं नैतिक मर्यादा के साथ बंधी हुई है।

प्रशासनिक ढांचा एवं मंत्रिपरिषद –

कौटिल्य द्वारा वर्णित प्रशासनिक ढांचा संगठित एवं विकेन्द्रीयकघ्त था, जैसा कि मंत्रिन् अर्थात वरिष्ठ मंत्रिपरिषद राजा को नीति–निर्धारण में परामर्श देने का कार्य करती थी, जिससे यह सुनिश्चित होता था कि महत्वपूर्ण निर्णय सामूहिक विचार–विमर्श के पश्चात लिए जाएँ। पुरोहित का पद धार्मिक एवं नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करने हेतु था, जो शासन को केवल भौतिक शक्ति तक सीमित न रखकर नैतिक आधार भी प्रदान करता था। सेनापति सैन्य–संचालन एवं राज्य–सुरक्षा का उत्तरदायित्व वहन करता था, जबकि समाहर्ता एवं सन्निधाता क्रमशः राजस्व–संग्रहण तथा राजकोष के रख–रखाव जैसे महत्वपूर्ण वित्तीय कार्यों का निर्वहन करते थे। इसके अतिरिक्त, विभिन्न "अध्यक्षों" की नियुक्ति वाणिज्य, कृषि, खनन, वन–संपदा जैसे विशिष्ट क्षेत्रों के प्रबंधन हेतु की जाती थी, जो आधुनिक विभागीय मंत्रालयों की संरचना से पर्याप्त साम्य रखता है। यह विशेषीकृत कार्य–विभाजन दर्शाता है कि कौटिल्य ने प्रशासनिक दक्षता को अत्यंत गंभीरता से लिया तथा एक ऐसी व्यवस्था प्रस्तुत की जिसमें प्रत्येक अधिकारी की भूमिका एवं उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से परिभाषित थे, जिससे भ्रष्टाचार एवं अकुशलता की संभावना न्यूनतम हो सके[12]।

कराधान व्यवस्था –

राज्य की आर्थिक नीति कौटिल्य अर्थशास्त्र का महत्व्वपूर्ण सिद्धांत कराधान है, जो आधुनिक राजकोषीय विचारों के निकट प्रतीत होते है। कराधान व्यवस्था कौटिल्य के आर्थिक शासन–दर्शन का महत्वपूर्ण अंग है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कर प्रणाली को समानुपातिकता सिद्धांत के द्वारा दर्शाता है। कौटिल्य ने कर–निर्धारण

में व्यक्ति की आय एवं भुगतान–क्षमता को ध्यान में रखने पर बल दिया, जो आधुनिक प्रगतिशील कराधान के सिद्धांत से पर्याप्त साम्य रखता है।

मितव्ययिता का सिद्धांत :– इस बात पर बल देता है कि राजा को अत्यधिक कर लगाकर प्रजा को उत्पीड़ित नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे प्रजा में असंतोष उत्पन्न होता है, जो अंततः राज्य की स्थिरता के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। यह सिद्धांत स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कौटिल्य ने राजस्व–संग्रहण को प्रजा–कल्याण के विरुद्ध नहीं अपितु उसके साथ संतुलित रूप में देखा[13]।

नियमितता का सिद्धांत :– प्रशासनिक पूर्वानुमेयता (Predictability) सुनिश्चित करता है।

विविधता का सिद्धांत :– यह दर्शाता है कि राजस्व के अनेक स्रोत भूमि–कर, वाणिज्य–कर, सीमा–शुल्क, वन एवं खनिज–संपदा से प्राप्त आय विकसित किए गए थे, जिससे राज्य किसी एक स्रोत पर अत्यधिक निर्भर न रहे।

अंततः, आपात–प्रावधान संकट–काल, जैसे युद्ध अथवा अकाल, में विशेष कर लगाने की अनुमति प्रदान करता है, किंतु इसे भी सीमित एवं अस्थायी रखने पर बल दिया गया है। यह व्यवस्था आधुनिक राजकोषीय नीति के अनेक सिद्धांतों की पूर्वसूचक प्रतीत होती है।

न्याय-व्यवस्था एवं दंड-नीति –

न्याय–व्यवस्था एवं दंड–नीति (दण्ड–नीति) कौटिल्य के शासन–पद्धति का एक अनिवार्य स्तंभ है। समानता के सिद्धांत के अनुसार राजा सहित समाज का कोई भी व्यक्ति दण्ड–विधान से ऊपर नहीं है, जो विधि के शासन की आधुनिक अवधारणा का एक प्राचीनतम एवं सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आनुपातिकता का सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि दंड अपराध की गंभीरता के अनुरूप हो, न कि मनमाना अथवा अत्यधिक कठोर, जिससे न्याय–व्यवस्था में संतुलन बना रहे[14]।

शीघ्रता का सिद्धांत विलंबित न्याय को अन्यायपूर्ण मानते हुए त्वरित निर्णय–प्रक्रिया पर बल देता है, जो आधुनिक न्यायिक सुधारों में भी एक प्रमुख चुनौती एवं लक्ष्य बना हुआ है।

साक्ष्य–आधारित निर्णय का सिद्धांत यह दर्शाता है कि कौटिल्य ने न्याय–प्रक्रिया में गवाही एवं प्रमाण के महत्व को स्वीकार किया, जिससे मनमाने निर्णयों की संभावना कम होती थी।

अंततः, सुधारात्मक दृष्टिकोण का सिद्धांत यह इंगित करता है कि यद्यपि अर्थशास्त्र में दंड कठोर हो सकते थे, तथापि उनका मूल उद्देश्य समाज में व्यवस्था बनाए रखना तथा अपराधी को सुधारना था, न कि केवल प्रतिशोध लेना। यह समग्र दृष्टिकोण न्याय एवं शासन के मध्य गहन अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है।

गुप्तचर-व्यवस्था : निगरानी एवं भ्रष्टाचार-नियंत्रण –

कौटिल्य की गुप्तचर–व्यवस्था (योगवृत्त) प्रशासनिक निगरानी एवं भ्रष्टाचार–नियंत्रण का एक विशिष्ट एवं बहु–स्तरीय यंत्र है। गुप्तचर–व्यवस्था (योगवृत्त) कौटिल्य के शासन–मॉडल का एक नवीन पक्ष है, तथा यह विभिन्न प्रकार के गुप्तचरों एवं उनकी सुशासन में भूमिका को प्रस्तुत करती है–

संस्था–प्रकार के गुप्तचर स्थायी रूप से किसी एक स्थान, जैसे राजदरबार अथवा प्रशासनिक कार्यालय, में तैनात रहते थे तथा आंतरिक निगरानी का कार्य करते थे, जिससे अधिकारियों की ईमानदारी एवं कार्य–निष्पादन पर सतत नजर रखी जा सके।

संचार–प्रकार के गुप्तचर गतिशील प्रकृति के होते थे तथा विभिन्न स्थानों की यात्रा कर सूचना–संग्रहण का कार्य करते थे, जिससे राजा को दूरस्थ क्षेत्रों की स्थिति की जानकारी प्राप्त होती रहे।

तीक्ष्ण एवं रसद जैसे विशेष प्रकार के गुप्तचर अत्यंत संवेदनशील एवं आपातकालीन परिस्थितियों, जैसे राजद्रोह अथवा बाह्य आक्रमण के खतरे, में राष्ट्र–सुरक्षा हेतु प्रयुक्त होते थे[15]।

भिक्षुकी अर्थात धार्मिक वेशधारी गुप्तचर समाज के विभिन्न वर्गों में घुल–मिलकर सामाजिक असंतोष एवं संभावित विद्रोह की सूचना एकत्रित करते थे।

यह बहु–स्तरीय गुप्तचर–तंत्र दर्शाता है कि कौटिल्य ने सूचना को शासन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण संसाधन माना, तथा भ्रष्टाचार–नियंत्रण एवं राष्ट्र–सुरक्षा दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक व्यवस्थित निगरानी–प्रणाली विकसित की, यद्यपि इसके नैतिक एवं गोपनीयता–संबंधी निहितार्थों पर आधुनिक संदर्भ में विचार आवश्यक है।

कौटिल्यीय शासन एवं आधुनिक सुशासन : तुलनात्मक विश्लेषण –

प्राचीन एवं आधुनिक शासन–दर्शन की तुलना न तो पूर्ण अभिन्नता सिद्ध करने हेतु है और न ही पूर्ण भिन्नताय अपितु उद्देश्य ऐतिहासिक निरंतरता एवं संरचनात्मक अंतर दोनों को रेखांकित करना है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित शासन–सिद्धांतों की तुलना समकालीन सुशासन मानदंडों से प्रस्तुत करती है, जो इस अध्ययन का एक केंद्रीय विश्लेषणात्मक घटक है। जवाबदेही के संदर्भ में, अर्थशास्त्र में राजा को प्रजा एवं धर्मशास्त्र दोनों के प्रति उत्तरदायी माना गया है, जबकि आधुनिक व्यवस्था में यह उत्तरदायित्व चुनावी प्रक्रिया एवं संवैधानिक संस्थाओं के माध्यम से सुनिश्चित होता है। पारदर्शिता के मामले में, कौटिल्य ने गुप्तचर–रिपोर्ट एवं लेखा–परीक्षा प्रणाली का प्रयोग किया, जबकि आज सूचना का अधिकार तथा डिजिटल शासन इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। विधि के शासन के संदर्भ में उल्लेखनीय समानता यह है कि दोनों व्यवस्थाओं में शासक अथवा सत्ताधारी को भी कानून के अधीन माना गया है। अर्थशास्त्र में राजा दण्ड–विधान से मुक्त नहीं था, जबकि आधुनिक संविधान सर्वोच्च सत्ता के रूप में सभी को समान रूप से बाध्य करता है। भ्रष्टाचार–नियंत्रण में दोनों प्रणालियाँ निगरानी–तंत्र पर निर्भर करती हैं, यद्यपि आधुनिक तंत्र में विधिक प्रक्रिया अधिक संस्थागत है[16]। सबसे स्पष्ट अंतर जन–भागीदारी में दिखता है, जहाँ अर्थशास्त्र की व्यवस्था परामर्शात्मक थी, जबकि आधुनिक लोकतंत्र में प्रत्यक्ष जन–भागीदारी केंद्रीय स्थान रखती है। यह तुलना ऐतिहासिक निरंतरता एवं परिवर्तन दोनों को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है।

विश्व बैंक सुशासन संकेतक एवं अर्थशास्त्र के तुलनात्मक तत्व –

विश्व बैंक द्वारा प्रतिपादित सुशासन संकेतक समकालीन शासन–मूल्यांकन का सर्वाधिक मान्य ढांचा माना जाता है, जो अर्थशास्त्र में वर्णित समतुल्य अवधारणाओं से प्रस्तुत करती है। आवाज एवं जवाबदेही के संकेतक में साम्य का स्तर मध्यम है, क्योंकि अर्थशास्त्र में प्रजा–परामर्श की व्यवस्था सीमित एवं अप्रत्यक्ष थी, जो आधुनिक लोकतांत्रिक भागीदारी से भिन्न है। राजनीतिक स्थिरता के संदर्भ में साम्य उच्च है, क्योंकि दुर्ग, दण्ड एवं सैन्य–व्यवस्था संबंधी विस्तृत प्रावधान राज्य की स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु बनाए गए थे[17]। शासकीय प्रभावशीलता में भी उच्च साम्य दिखता है, क्योंकि अध्यक्ष–प्रणाली एवं स्पष्ट कार्य–विभाजन आधुनिक नौकरशाही दक्षता के सिद्धांतों से मेल खाते हैं। नियामक गुणवत्ता में मध्यम–उच्च साम्य पाया जाता है, क्योंकि कराधान एवं वाणिज्य–नियमन संबंधी विस्तृत नियम विद्यमान थे, यद्यपि आधुनिक नियामक संस्थाओं जैसी स्वतंत्रता उस काल

में उपलब्ध नहीं थी। विधि के शासन तथा भ्रष्टाचार–नियंत्रण में सर्वाधिक उच्च साम्य पाया गया, जो यह सिद्ध करता है कि इन दोनों क्षेत्रों में कौटिल्य के विचार समय की सीमाओं से परे एक सार्वभौमिक प्रासंगिकता रखते हैं।

निष्कर्ष –

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट है कि कौटिल्य का अर्थशास्त्र केवल प्राचीन राजनीति–ग्रंथ नहीं, अपितु सुशासन के अनेक सिद्धांतों का स्रोत–दस्तावेज है। विश्लेषण के आधार पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। प्रथम, विधि के शासन, भ्रष्टाचार–नियंत्रण एवं प्रशासनिक दक्षता के क्षेत्रों में कौटिल्यीय सिद्धांत आधुनिक मानदंडों से उच्च संगति रखते हैं, राजा स्वयं दण्ड–विधान के अधीन था, जो विधि के शासन की प्राचीनतम पुष्टियों में से एक है। द्वितीय, राजधर्म की अवधारणा सत्ता को कर्तव्य एवं नैतिक मर्यादा से बांधती है, जो जवाबदेही का नैतिक रूप है[18]। तृतीय, कराधान एवं न्याय के सिद्धांत समानुपातिकता, मितव्ययिता, आनुपातिक दंड एवं शीघ्र न्याय आधुनिक नीति–सिद्धांतों के समरूप हैं। चतुर्थ, जन–भागीदारी के क्षेत्र में कौटिल्यीय व्यवस्था परामर्शात्मक एवं सीमित थी, जो राजतंत्रीय संरचना की स्वाभाविक सीमा है। शोधसार यह दर्शाता है कि गुप्तचर–तंत्र एवं विदेश–नीति जैसे विषय अपेक्षाकृत अल्प–अन्वेषित हैं। समग्रतः, कौटिल्य का शासन–दर्शन एक 'प्रणाली–दृष्टिकोण' के रूप में आज भी प्रासंगिक है तथा भारतीय ज्ञान–परंपरा एवं समकालीन नीति–विमर्श के मध्य सेतु का कार्य करता है[19]।

संदर्भ सूची –

1. ठाकुर, सी. पी. (2007). भ्रष्टाचार नियंत्रण : प्राचीन भारत और आधुनिक दृष्टिकोण. भारतीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, 41, 156–179.
2. चटर्जी, आर. (2009). प्रशासनिक दक्षता : कौटिल्य से ई–गवर्नेंस तक. सार्वजनिक प्रशासन समीक्षा, 41(2), 156–182.
3. भारद्वाज, वी. (2014). सुरक्षा–व्यवस्था, नागरिक स्वतंत्रता और अधिकार. सुरक्षा और मानवाधिकार अध्ययन, 21, 145–172.
4. अग्रवाल, एम. (2014). मंत्रिपरिषद संरचना : अर्थशास्त्र से आधुनिक भारत तक. राजनीतिक अध्ययन केंद्र, आई.आई.टी. दिल्ली, 7, 134–156.
5. ओझा, जी. सी. (2011). जनपद का कल्याण और सुशासन संकेतक. विकास अध्ययन, 28(4), 267–291.
6. वोगेल, डी. (2006). तुलनात्मक राजनीति : प्राचीन भारत और पश्चिमी विचारधारा. ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, लंदन.
7. सिन्हा, ए. (2000 के दशक)। कौटिल्य का प्रशासनिक ढांचा।
8. नायर, पी. आर. (2006). कूटनीतिक नीति और मित्र–संबंध : कौटिल्य की दृष्टि. विदेश नीति अनुसंधान संस्थान, 52(1), 45–67.
9. झा, ए. (2009). भारतीय राजनीति–चिंतन परंपरा : व्यापक सर्वेक्षण और विश्लेषण. राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, 18, 234–267.
10. शामाशास्त्री, आर. (1909). कौटिल्य अर्थशास्त्र (मूल संस्कृत पाठ). मैसूर : मैसूर प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग

हाउस.

11. संथानम, के. (2004). भारत में सुशासन और पारदर्शिता की यात्रा. केंद्रीय सतर्कता आयोग रिपोर्ट, नई दिल्ली.
12. देशमुख, एन. (2013). पारदर्शिता, जवाबदेही और आधुनिक शासन. सामाजिक विज्ञान अध्ययन, 35(3), 203–229.
13. सिंह, बी. (2012). राज्य–क्षेत्र विकास, जन–भागीदारी और स्थानीय शासन. स्थानीय शासन अनुसंधान, दिल्ली, 16, 112–138.
14. लेमोयने, एफ. (2011). कौटिल्य की राजनीतिक यथार्थवाद और अंतर्राष्ट्रीय संबंध. कोलंबिया विश्वविद्यालय प्रेस, न्यूयॉर्क.
15. रायल, एच. (2010). विश्व बैंक के सुशासन संकेतक : सैद्धांतिक आधार और कार्यान्वयन. विकास नीति समीक्षा, 8(2), 78–104.
16. त्रिपाठी, एस. (2008). अर्थशास्त्र में नैतिक राजनीति और राजा की जिम्मेदारी. नीतिशास्त्र और राजनीति, 42(1), 89–115.
17. कपूर, पी. (2015). संस्थागत विकास, राज्य–क्षमता और शासन. राष्ट्रीय राजनीति अनुसंधान संस्थान, दिल्ली, 11, 156–189.
18. कपूर, पी. (2015). संस्थागत विकास, राज्य–क्षमता और शासन. राष्ट्रीय राजनीति अनुसंधान संस्थान, दिल्ली, 11, 156–189.
19. पंड्या, आर. (2016). प्राचीन भारतीय राजनीति–शास्त्र की समकालीन प्रासंगिकता और भविष्य के शोध की दिशाएं. जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय प्रेस, दिल्ली.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 88-94

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

आधुनिक जीवन पद्धति एवं योग

पूरण सोलंकी, शोधार्थी,
डॉ. नितीन ढ़ोमने, शोध निर्देशक,
योग विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

सारांश :

आधुनिक युग विज्ञान तकनीकी विकास औद्योगीकरण नगरीकरण और तीव्र संचार का युग है। आधुनिक जीवन–पद्धति ने मनुष्य को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं किंतु इसके साथ तनाव चिंता अनियमित दिनचर्या शारीरिक निष्क्रियता निद्रा संबंधी समस्याएँ मानसिक दबाव तथा सामाजिक अलगाव जैसी चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। आज मनुष्य का जीवन समय के अभाव कार्य के दबाव और निरंतर प्रतिस्पर्धा से प्रभावित है। ऐसी परिस्थिति में योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं बल्कि शरीर मन और व्यवहार के संतुलन की एक समग्र जीवन पद्धति के रूप में महत्वपूर्ण हो जाता है। भारतीय परंपरा में योग का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में योग को व्यवस्थित दार्शनिक एवं व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः के माध्यम से योग को चित्त की वृत्तियों के नियंत्रण से जोड़ा गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के रूप में अष्टाङ्गयोग मनुष्य के बाह्य आचरण से लेकर आंतरिक चेतना तक के विकास का मार्ग प्रस्तुत करता है। वर्तमान संदर्भ में योग तनाव–प्रबंधन आत्म–अनुशासन एकाग्रता शारीरिक सक्रियता भावनात्मक संतुलन और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक हो सकता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में आधुनिक जीवन–पद्धति की प्रमुख विशेषताओं एवं समस्याओं का विवेचन करते हुए योग की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि आधुनिक जीवन में योग को केवल आसन तक सीमित न रखकर एक समग्र जीवन–दृष्टि के रूप में अपनाने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द – आधुनिक जीवन, पद्धति योग, पतञ्जलि, अष्टाङ्गयोग, तनाव, मानसिक स्वास्थ्य, ध्यान, प्राणायाम, जीवन शैली।

प्रस्तावना –

मानव सभ्यता ने विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है। आज संचार परिवहन चिकित्सा शिक्षा और सूचना के क्षेत्र में ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं जिनकी कल्पना पूर्वकाल में कठिन थी। इंटरनेट और स्मार्टफोन ने पूरी दुनिया को एक–दूसरे के निकट ला दिया है। कार्य करने के अनेक साधन सरल हुए हैं तथा जीवन की भौतिक सुविधाओं में वृद्धि हुई है। इसके बावजूद आधुनिक मनुष्य अनेक प्रकार की मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं से जूझ रहा है। लंबे समय तक बैठकर काम करना अनियमित भोजन पर्याप्त नींद का अभाव

लगातार स्क्रीन का उपयोग कार्यस्थल का तनाव और सामाजिक प्रतिस्पर्धा जीवन की सामान्य विशेषताएँ बनती जा रही हैं। आधुनिक व्यक्ति के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भौतिक सुविधाओं की वृद्धि के साथ मानसिक शांति और जीवन संतुलन कैसे प्राप्त किया जाए। इसी संदर्भ में योग की उपयोगिता सामने आती है। योग भारतीय संस्कृति की ऐसी परंपरा है जो शरीर और मन को अलग–अलग न मानकर दोनों के परस्पर संबंध पर बल देती है। योग का उद्देश्य केवल शरीर को स्वस्थ बनाना नहीं बल्कि व्यक्ति के जीवन में अनुशासन संतुलन आत्म जागरूकता और मानसिक स्थिरता विकसित करना भी है।

शोध के उद्देश्य –

इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. आधुनिक जीवन–पद्धति की प्रमुख विशेषताओं को समझना।
2. आधुनिक जीवन–पद्धति से उत्पन्न शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं का विवेचन करना।
3. योग की मूल अवधारणा और उसके प्रमुख अंगों का अध्ययन करना।
4. आधुनिक जीवन में योग की उपयोगिता का विश्लेषण करना।
5. योग के माध्यम से स्वस्थ एवं संतुलित जीवन–पद्धति की संभावनाओं को स्पष्ट करना।

शोध विधि –

प्रस्तुत शोध–पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए योग दर्शन के प्रमुख ग्रंथों विशेष रूप से पतञ्जलि योगसूत्र तथा योग एवं आधुनिक जीवन–शैली से संबंधित उपलब्ध साहित्य का अध्ययन किया गया है। आधुनिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में उपलब्ध शोध साहित्य को भी आधार बनाया गया है। अध्ययन का उद्देश्य योग को किसी रोग का एकमात्र उपचार सिद्ध करना नहीं बल्कि आधुनिक जीवन में उसके संभावित योगदान को समझना है।

आधुनिक जीवन पद्धति स्वरूप एवं विशेषताएँ –

आधुनिक जीवन पद्धति मुख्यतः तकनीकी विकास, औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद से प्रभावित है। आज व्यक्ति का अधिकांश कार्य मशीनों और डिजिटल उपकरणों के माध्यम से होता है। कार्यालयीन कार्य में कंप्यूटर और इंटरनेट का प्रयोग सामान्य हो चुका है। शिक्षा व्यापार बैंकिंग और मनोरंजन भी डिजिटल माध्यमों पर तेजी से निर्भर हो रहे हैं। आधुनिक जीवन की एक प्रमुख विशेषता समय की तीव्र गति है। व्यक्ति एक साथ अनेक कार्यों को पूरा करने का प्रयास करता है। नौकरी, शिक्षा, परिवार, सामाजिक जीवन और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच संतुलन बनाए रखना कई बार कठिन हो जाता है। दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता प्रतिस्पर्धा है। व्यक्ति शिक्षा, रोजगार, आय, प्रतिष्ठा और सामाजिक स्थिति में दूसरों से आगे निकलने की कोशिश करता है। निरंतर प्रतिस्पर्धा मानसिक दबाव को बढ़ा सकती है। तीसरी विशेषता उपभोक्तावाद है। आधुनिक बाजार व्यक्ति की आवश्यकताओं के साथ–साथ अनेक नई इच्छाओं का निर्माण करता है। अधिक वस्तुओं का संग्रह सुख और सफलता का प्रतीक माना जाने लगता है। योग–दर्शन का अपरिग्रह और संतोष का सिद्धांत ऐसी प्रवृत्तियों पर विचार करने का अवसर प्रदान करता है।

आधुनिक जीवन पद्धति की प्रमुख समस्याएँ –

- **मानसिक तनाव** – कार्य का दबाव, आर्थिक चिंताएँ, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ और सामाजिक प्रतिस्पर्धा

तनाव को बढ़ा सकती हैं। लंबे समय तक रहने वाला तनाव व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।

- **शारीरिक निष्क्रियता** – तकनीक के कारण शारीरिक श्रम में कमी आई है। कंप्यूटर के सामने लंबे समय तक बैठना वाहन पर अधिक निर्भरता तथा नियमित व्यायाम का अभाव शारीरिक सक्रियता को कम कर सकता है।
- **अनियमित दिनचर्या** – आधुनिक जीवन में देर रात तक काम करना या डिजिटल उपकरणों का उपयोग करना सामान्य होता जा रहा है। इससे नींद और दैनिक दिनचर्या प्रभावित हो सकती है।
- **डिजिटल निर्भरता** – स्मार्टफोन और सोशल मीडिया ने संचार को आसान बनाया है लेकिन लगातार नोटिफिकेशन और सूचना की अधिकता व्यक्ति की एकाग्रता को प्रभावित कर सकती है। व्यक्ति के लिए कुछ समय बिना डिजिटल व्यवधान के रहना कठिन होता जा रहा है।

सामाजिक एवं भावनात्मक दबाव –

आधुनिक समाज में व्यक्ति को स्वयं की तुलना दूसरों से करने के अनेक अवसर मिलते हैं। सोशल मीडिया पर प्रदर्शित जीवन की तुलना अपने वास्तविक जीवन से करने पर असंतोष और मानसिक दबाव उत्पन्न हो सकता है।

योग की संकल्पना – योग शब्द संस्कृत की युज् धातु से बना है जिसका सामान्य अर्थ जोड़ना या संयोजित करना माना जाता है। भारतीय दर्शन में योग का अर्थ व्यापक है। यह शरीर मन और चेतना के अनुशासन से संबंधित है।

महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में कहा है :

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है। इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि योग का प्रमुख केंद्र मन और उसकी गतिविधियाँ हैं। आधुनिक संदर्भ में योग को शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित करने वाली जीवन–पद्धति के रूप में समझा जा सकता है। इसमें शारीरिक अभ्यास, श्वास–साधना, ध्यान, नैतिक अनुशासन और आत्म अवलोकन सभी सम्मिलित हैं।

अष्टाङ्गयोग और आधुनिक जीवन –

पतञ्जलि ने योग के आठ अंग बताए हैं :

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

- **यम** – यम में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह सम्मिलित हैं। आधुनिक जीवन में इनका नैतिक महत्व अत्यधिक है। अहिंसा व्यक्ति को आक्रामकता और अनावश्यक हिंसात्मक व्यवहार से दूर करती है। सत्य विश्वसनीय संवाद का आधार है। अस्तेय दूसरों के अधिकारों का सम्मान सिखाता है। ब्रह्मचर्य को व्यापक अर्थ में आत्म संयम और ऊर्जा के विवेकपूर्ण उपयोग के रूप में समझा जा सकता है। अपरिग्रह अनावश्यक संग्रह और अत्यधिक उपभोग से बचने की प्रेरणा देता है।
- **नियम** – नियमों में शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आते हैं।

शौच स्वच्छता और मानसिक शुद्धता से संबंधित है। संतोष व्यक्ति को उपलब्ध परिस्थितियों में संतुलित

रहने की प्रेरणा देता है। तप नियमित अनुशासन का प्रतीक है। स्वाध्याय व्यक्ति को स्वयं के विचारों और व्यवहार का अध्ययन करने की प्रेरणा देता है। ईश्वरप्रणिधान व्यक्ति को अहं केंद्रित दृष्टिकोण से ऊपर उठने की दिशा देता है।

- **आसन** – आसन योग का वह पक्ष है जो आधुनिक समाज में सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ है। योगासनों के नियमित अभ्यास से शरीर में लचीलापन संतुलन और शारीरिक जागरूकता विकसित करने में सहायता मिल सकती है। हालाँकि योग को केवल आसनों तक सीमित करना उसके व्यापक स्वरूप को संकुचित कर देता है। पतञ्जलि के अनुसार आसन का उद्देश्य स्थिर और सुखद स्थिति प्राप्त करना है जिससे आगे की साधना के लिए शरीर तैयार हो सके।
- **प्राणायाम** – प्राणायाम श्वास के नियमन से संबंधित है। आधुनिक जीवन में श्वास–जागरूकता और नियंत्रित श्वास के अभ्यास को विश्राम एवं तनाव–प्रबंधन के संदर्भ में उपयोगी माना जाता है। नियमित और उचित ढंग से किया गया प्राणायाम व्यक्ति को अपनी श्वास और शरीर की संवेदनाओं के प्रति अधिक जागरूक बना सकता है। हालांकि कठिन या तीव्र प्राणायाम प्रशिक्षित मार्गदर्शन में करना अधिक उचित है।
- **प्रत्याहार** – प्रत्याहार इन्द्रियों को विषयों से हटाकर भीतर की ओर केंद्रित करने की प्रक्रिया है। आधुनिक डिजिटल जीवन में इसका विशेष महत्व है। लगातार आने वाले संदेश, वीडियो, विज्ञापन और सूचनाएँ मन को अनेक दिशाओं में खींचती हैं। डिजिटल उपकरणों से निश्चित समय के लिए दूरी बनाना, भोजन के समय मोबाइल न देखना और अध्ययन के समय नोटिफिकेशन बंद करना आधुनिक संदर्भ में प्रत्याहार की व्यावहारिक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है।
- **धारणा** – धारणा चित्त को किसी एक विषय पर केंद्रित करने का अभ्यास है। आधुनिक जीवन में एकाग्रता का महत्व बहुत अधिक है। बार–बार कार्य बदलने और डिजिटल व्यवधानों के कारण व्यक्ति का ध्यान बिखर सकता है। एक समय में एक कार्य करना निश्चित समय तक बिना व्यवधान के अध्ययन करना और ध्यान का अभ्यास करना धारणा की भावना को दैनिक जीवन में विकसित कर सकता है।
- **ध्यान** – ध्यान चित्त की निरंतर एकाग्रता से संबंधित है। वर्तमान समय में ध्यान का प्रयोग मानसिक शांति आत्म जागरूकता और तनाव प्रबंधन के लिए किया जाता है। ध्यान का नियमित अभ्यास व्यक्ति को अपने विचारों और भावनाओं को बिना तत्काल प्रतिक्रिया दिए देखने की क्षमता विकसित करने में सहायता कर सकता है। इससे आत्म–अवलोकन की प्रवृत्ति मजबूत हो सकती है।
- **समाधि** – समाधि योग की उच्च अवस्था मानी जाती है। इसे सामान्य मानसिक विश्राम के समान नहीं माना जाना चाहिए। योग–दर्शन में समाधि चित्त की अत्यंत गहन एकाग्रता और साधना की उच्च अवस्था से संबंधित है। आधुनिक जीवन में समाधि का प्रत्यक्ष अभ्यास कठिन हो सकता है लेकिन एकाग्रता आत्म अनुशासन और मानसिक स्थिरता की दिशा में इसके सिद्धांत प्रेरक हो सकते हैं।

योग और तनाव प्रबंधन –

आधुनिक जीवन में तनाव एक महत्वपूर्ण चुनौती है। योग में शरीर श्वास और मन के समन्वित अभ्यास पर बल दिया जाता है। आसन शरीर को सक्रिय करते हैं प्राणायाम श्वास जागरूकता विकसित करता है और ध्यान मानसिक गतिविधियों को देखने का अवसर देता है। योग के माध्यम से व्यक्ति अपनी तनावपूर्ण प्रतिक्रियाओं

को पहचानने की क्षमता विकसित कर सकता है। नियमित अभ्यास के कारण व्यक्ति को अपने शरीर और मन की स्थिति के प्रति अधिक सजगता प्राप्त हो सकती है। आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनों में योग और ध्यान के तनाव तथा चिंता पर संभावित प्रभावों का अध्ययन किया गया है। कुछ अध्ययनों में लाभ के संकेत प्राप्त हुए हैं हालांकि योग की विभिन्न पद्धतियों और शोध प्रणालियों में अंतर होने के कारण परिणामों की व्याख्या सावधानी से की जानी चाहिए।

योग और मानसिक स्वास्थ्य –

मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक रोगों की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि भावनात्मक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संतुलन से भी संबंधित है। योग व्यक्ति को आत्म अवलोकन और वर्तमान क्षण के प्रति जागरूकता विकसित करने में सहायता कर सकता है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को पहचानना सीख सकता है। योग दर्शन में अभ्यास और वैराग्य की अवधारणा व्यक्ति को निरंतर प्रयास करने के साथ–साथ अनावश्यक मानसिक आसक्ति कम करने की दिशा प्रदान करती है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि योग गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं में चिकित्सकीय उपचार का विकल्प नहीं है। आवश्यकता होने पर योग्य मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए।

योग और कार्य जीवन संतुलन –

आधुनिक कर्मचारी के सामने कार्य और व्यक्तिगत जीवन के बीच संतुलन की चुनौती है। योग की अनुशासनात्मक भावना व्यक्ति को समय प्रबंधन और आत्म नियंत्रण की दिशा में प्रेरित कर सकती है। नियमित दिनचर्या पर्याप्त विश्राम शारीरिक गतिविधि और ध्यान को जीवन का हिस्सा बनाना कार्य जीवन संतुलन के लिए उपयोगी हो सकता है। योग व्यक्ति को यह समझने में सहायता करता है कि निरंतर कार्य करना ही जीवन का अंतिम उद्देश्य नहीं है।

योग और विद्यार्थी जीवन –

विद्यार्थियों के लिए योग का महत्व एकाग्रता अनुशासन और तनाव प्रबंधन के संदर्भ में देखा जा सकता है। परीक्षा प्रतियोगिता और भविष्य की चिंता विद्यार्थियों में मानसिक दबाव उत्पन्न कर सकती है। सरल आसन श्वास जागरूकता और ध्यान का नियमित अभ्यास विद्यार्थियों को अपनी दिनचर्या व्यवस्थित करने में सहायता कर सकता है। साथ ही यम और नियम जैसे सिद्धांत चरित्र निर्माण तथा नैतिक विकास के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

आधुनिक जीवन के लिए योग आधारित दिनचर्या – आधुनिक व्यक्ति अपनी व्यस्त दिनचर्या में भी योग को शामिल कर सकता है। इसके लिए बहुत अधिक समय आवश्यक नहीं है। उदाहरण के रूप में :

- प्रातः कुछ मिनट श्वास जागरूकता।
- कुछ समय सहज प्राणायाम।
- दिन में एक अवधि बिना मोबाइल या सोशल मीडिया के।
- कार्य के दौरान छोटे–छोटे विश्राम।
- भोजन के समय डिजिटल उपकरणों से दूरी।
- रात्रि में कुछ मिनट आत्म अवलोकन या ध्यान।

- नियमित और पर्याप्त नींद।
- सप्ताह में नियमित शारीरिक गतिविधि।
- आवश्यकता से अधिक उपभोग एवं डिजिटल समय की समीक्षा।

इस प्रकार योग को किसी विशेष अवसर तक सीमित न रखकर दैनिक जीवन का हिस्सा बनाया जा सकता है।

योग की सीमाएँ और सावधानियाँ –

योग को लेकर वर्तमान समाज में अनेक प्रकार के दावे किए जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि प्रत्येक दावे की प्रमाणिकता को अलग–अलग देखा जाए। योग के कुछ अभ्यास स्वास्थ्य और मानसिक कल्याण में सहायक हो सकते हैं, लेकिन यह दावा करना उचित नहीं होगा कि योग हर बीमारी को ठीक कर सकता है। कुछ आसन और प्राणायाम विशेष स्वास्थ्य स्थितियों में सावधानी की मांग करते हैं। इसलिए शुरुआती अवस्था में प्रशिक्षित योग शिक्षक का मार्गदर्शन उपयोगी हो सकता है। गंभीर बीमारी चोट या मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्या होने पर चिकित्सकीय सलाह को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

निष्कर्ष –

आधुनिक जीवन–पद्धति ने मानव जीवन को सुविधाजनक बनाया है लेकिन इसके साथ अनेक नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। तनाव, अनियमित दिनचर्या, शारीरिक निष्क्रियता, डिजिटल निर्भरता और मानसिक दबाव आधुनिक जीवन की प्रमुख समस्याओं में शामिल हैं। योग इन चुनौतियों के संदर्भ में एक समग्र जीवन दृष्टि प्रदान करता है। योग का वास्तविक स्वरूप केवल आसन या व्यायाम तक सीमित नहीं है। पतञ्जलि का अष्टाङ्गयोग व्यक्ति के नैतिक आचरण से लेकर मानसिक एकाग्रता और समाधि तक विकास की क्रमिक प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। यम और नियम व्यक्ति के व्यवहार को अनुशासित करते हैं। आसन शरीर को स्वस्थ एवं स्थिर रखने में सहायता करते हैं। प्राणायाम श्वास जागरूकता विकसित करता है। प्रत्याहार और धारणा आधुनिक सूचना प्रधान जीवन में ध्यान को व्यवस्थित करने की दिशा देते हैं। ध्यान मानसिक सजगता का अभ्यास है और समाधि योग साधना की उच्च अवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। अतः आधुनिक जीवन में योग का योगदान केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है। यह आत्म अनुशासन मानसिक संतुलन नैतिक जीवन एकाग्रता और आत्म–जागरूकता के विकास में सहायक जीवन–पद्धति के रूप में महत्वपूर्ण है। आधुनिक तकनीक और योग परस्पर विरोधी नहीं हैं आवश्यकता इस बात की है कि तकनीकी सुविधाओं का उपयोग सजगता और संतुलन के साथ किया जाए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक जीवन की गति को रोकना संभव नहीं है लेकिन उसके बीच स्वयं को संतुलित रखना संभव है। योग इसी संतुलन की ओर ले जाने वाली भारतीय ज्ञान परंपरा की महत्वपूर्ण देन है।

संदर्भ ग्रंथ एवं स्रोत –

1. पतञ्जलि – योगसूत्र समाधिपाद एवं साधनापाद।
2. व्यास – व्यासभाष्य योगसूत्र।
3. स्वामी विवेकानन्द – राजयोग।

4. स्वामी कुवलयानन्द – योग और स्वास्थ्य संबंधी साहित्य।
5. हठयोगप्रदीपिका – स्वात्माराम।
6. भगवद्गीता – योग संबंधी अध्याय एवं श्लोक।
7. World Health Organization — Guidelines on Physical Activity and Sedentary Behaviour, 2020.
8. Hofmann, S. G. et al. — The Effect of Mindfulness-Based Therapy on Anxiety and Depression, Journal of Consulting and Clinical Psychology, 2010.
9. योग एवं मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित आधुनिक शोध साहित्य एवं समीक्षात्मक अध्ययन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 95-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भ्रष्टाचार नियंत्रण के उपाय – 'कौटिल्य एवं वर्तमान भारत'

रूखमणी मोहबे

शोद्यार्थी, राजा शंकर शाह विश्वविद्यालय, छिन्दवाड़ा, म.प्र.

डॉ. मुन्ना लाल चौधरी

सहा. प्राध्या. संस्कृत, शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी, म.प्र.

शोध सारांश –

भ्रष्टाचार नियंत्रण की प्राचीन एवं आधुनिक व्यवस्थाओं का विस्तृत तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत शोध पत्र करता है, जिसका केंद्र बिंदु आचार्य कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक नैतिकता, दंड व्यवस्था तथा गुप्तचर तंत्र एवं वर्तमान भारतीय भ्रष्टाचार विरोधी संस्थागत ढांचा है[1]। कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित प्राचीन शासन सिद्धांत, आज की संस्थागत भ्रष्टाचार विरोधी नीतियों, जैसे केंद्रीय सतर्कता आयोग, लोकपाल तथा सूचना का अधिकार अधिनियम, को किस प्रकार प्रभावित करते हैं तथा दोनों व्यवस्थाओं में कितनी सैद्धांतिक समानता एवं व्यावहारिक भिन्नता विद्यमान है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु दस वर्ष की अवधि के द्वितीयक आंकड़ों, यथा भ्रष्टाचार बोध सूचकांक, सतर्कता आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन, न्यायिक दोषसिद्धि के आंकड़े तथा नागरिक अनुभव सर्वेक्षण के परिणामों का स्पष्ट रूप विश्लेषण किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि यद्यपि संस्थागत ढांचा कागज पर सुदृढ़ प्रतीत होता है, तथापि जमीनी स्तर पर क्रियान्वयन की स्थिति, विशेषकर निगरानी एवं दंड की गति में, अंतराल बना हुआ है। जो कौटिल्य द्वारा सुझाए गए कठोर एवं त्वरित दंड प्रावधान तथा निरंतर गुप्त निगरानी तंत्र की आज भी प्रासंगिकता को पुनः स्थापित करता है[2]। निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि प्राचीन नीति–सिद्धांतों का समकालीन शासन प्रणाली में सुनियोजित समावेशन भ्रष्टाचार नियंत्रण को अधिक प्रभावी, त्वरित एवं जवाबदेह बना सकता है।

प्रस्तावना –

भ्रष्टाचार एक ऐसी गहन सामाजिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक समस्या है जो प्राचीन काल से ही मानव सभ्यता का अभिन्न अंग रही है और समय के साथ इसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता रहा है[3]। भारतीय प्रशासनिक चिंतन में चाणक्य भी कहा जाता है, उन्होंने ने अर्थशास्त्र में राजकीय कर्मचारियों द्वारा किए जाने वाले चालीस प्रकार के भ्रष्टाचार का विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत किया था, जिसमें राजस्व संग्रहण, व्यापार, निर्माण कार्य तथा न्यायिक प्रक्रिया से संबंधित भ्रष्ट व्यवहारों को अलग–अलग श्रेणियों में विभाजित है।[4] कौटिल्य के अनुसार "जिस प्रकार जल में डूबी मछली का जल, पीना बाहर से पता नहीं चल पाता, ठीक उसी प्रकार राजकोष का दुरुपयोग करने वाले कर्मचारियों की गतिविधियों को पकड़ पाना अत्यंत कठिन कार्य है" इसलिए उन्होंने

बहुस्तरीय जांच व्यवस्था की अनुशंसा की थी[5]। वर्तमान भारत में भ्रष्टाचार आज भी एक गंभीर एवं बहुआयामी चुनौती बना हुआ है, जो न केवल आर्थिक विकास की गति को अवरुद्ध करता है, बल्कि सामाजिक न्याय के वितरण तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं में जनता के विश्वास को भी गहराई से प्रभावित करता है[6]।

उद्देश्य –

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने भ्रष्टाचार नियंत्रण हेतु अनेक ठोस संस्थागत एवं कानूनी उपाय किए, जिनमें केंद्रीय सतर्कता आयोग, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम तथा सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, इन सभी का उद्देश्य प्रशासनिक जवाबदेही को सुदृढ़ एवं पारदर्शिता बनाना है[7]। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीय पारदर्शिता संगठन द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित भ्रष्टाचार बोध सूचकांक में भारत का स्थान संतोषजनक नहीं रहा है, बल्कि विगत कुछ वर्षों में इसमें गिरावट भी देखी गई है[8]। यह विरोधाभासी स्थिति इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करती है कि केवल कानूनी ढांचे की औपचारिक उपस्थिति भ्रष्टाचार नियंत्रण के लिए पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके साथ–साथ प्रभावी क्रियान्वयन, अधिकारियों का नैतिक प्रशिक्षण तथा निरंतर सक्रिय निगरानी भी आवश्यक है, जिसे कौटिल्य ने विस्तार से अपने ग्रंथ में व्यावहारिक उदाहरणों सहित वर्णित किया है[9]।

महत्व –

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित भ्रष्टाचार नियंत्रण के सिद्धांतों, विशेषकर दंड व्यवस्था, गुप्तचर तंत्र तथा लेखा परीक्षण प्रणाली, तथा वर्तमान भारतीय भ्रष्टाचार विरोधी तंत्र के मध्य गहन तुलनात्मक विश्लेषण करना है। भारत में भ्रष्टाचार संबंधी शिकायतों की संख्या, दर्ज मामलों, दोषसिद्धि दर तथा नागरिकों के प्रत्यक्ष अनुभव में क्या ठोस परिवर्तन आया है, और उसकी दिशा क्या रही है[10]। यह शोध नीति–निर्माताओं, प्रशासनिक अधिकारियों, विधि विशेषज्ञों तथा शिक्षाविदों के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकता है, क्योंकि यह प्राचीन भारतीय राजशास्त्रीय साक्ष्य–आधारित तरीके से आधुनिक शासन व्यवस्था में समाहित करने का व्यावहारिक मार्ग प्रशस्त करता है[11]।

समीक्षा –

कौटिल्य "राजनीतिक चिंतन में" भ्रष्टाचार को राज्य की स्थिरता, आर्थिक समृद्धि तथा प्रजा के कल्याण के लिए सबसे बड़ा आंतरिक खतरा माना गया था, और इसे नियंत्रित करने हेतु बहुउद्देशीय व्यवस्था की है[12]। कौटिल्य राजकीय कोष के सुव्यवस्थित प्रबंधन हेतु गुप्तचर व्यवस्था, नियमित एवं आकस्मिक लेखा परीक्षण तथा कठोर एवं वर्गीकृत दंड संहिता की स्पष्ट अनुशंसा की थी, जिसका मुख्य उद्देश्य राजकीय अधिकारियों को उनके प्रत्येक कार्य के लिए व्यक्तिगत रूप से जवाबदेह बनाना था, ताकि किसी भी स्तर पर अनियमितता होने पर तुरंत उत्तरदायित्व तय किया जा सके[13]। पुरातन राजशास्त्रियों विद्वानों का यह सुविचारित मत है कि यह प्राचीन प्रणाली आधुनिक आंतरिक नियंत्रण व्यवस्था तथा वैधानिक लेखा परीक्षा प्रणालियों की एक प्रकार की पूर्ववर्ती वैचारिक संकल्पना मानी जा सकती है, जिसने आगे चलकर संस्थागत जवाबदेही की नींव रखी[14]।

आधुनिक शासन में भ्रष्टाचार को मुख्यतः संस्थागत दुर्बलता, कर्मचारियों का अपेक्षाकृत कम वेतन, अधिकारियों को प्राप्त संवैधानिक शक्तियों का दुरुपयोग तथा वैधानिक जवाबदेही प्रणाली के अभाव जैसे कारकों से जोड़कर विस्तार से देखा गया है[15]। अंतरराष्ट्रीय पारदर्शिता स्वतंत्र मीडिया तथा सक्रिय नागरिक भागीदारी

अपेक्षाकृत अधिक है, वहां भ्रष्टाचार का समग्र स्तर तुलनात्मक रूप से निम्न पाया गया है[16]। भारत के विशिष्ट संदर्भ में किए गए अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 एवं 181 शिकायत निवारण के लागू होने के बाद नागरिकों की प्रशासनिक सहभागिता तथा जागरूकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, परंतु इसके बावजूद भ्रष्टाचार पूर्णतः नियंत्रित नहीं हो सका है, जो यह दर्शाता है कि अकेला कानून पर्याप्त नहीं है[17]।

कतिपय शोध विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि भ्रष्टाचार विरोधी संस्थाओं की कार्यात्मक स्वायत्तता, पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता तथा प्रशिक्षित मानव संसाधन ही उनकी वास्तविक प्रभावशीलता निर्धारित करने वाला मुख्य कारक है, न कि केवल उनका कानूनी अस्तित्व[18]। लोकपाल एवं लोकायुक्त अधिनियम के प्रभाव संबंधी अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि संस्थागत क्रियान्वयन में विलंब, अपर्याप्त कर्मचारी संख्या तथा नियुक्तियों में देरी के कारण अपेक्षित सकारात्मक परिणाम अभी तक प्राप्त नहीं हो सके हैं, जिससे जनता में इन संस्थाओं के प्रति विश्वास प्रभावित हुआ है[19]। इसके सर्वथा विपरीत, डिजिटल शासन एवं ई–गवर्नेंस पहलुओं, जैसी योजनाएं तथा ऑनलाइन सेवा वितरण मंचों, पर आधारित अध्ययनों ने यह साबित किया है कि तकनीकी हस्तक्षेप से मानवीय संपर्क कम होने के कारण बिचौलियों की भूमिका में उल्लेखनीय कमी आई है[20]।

कौटिल्य के दंड सिद्धांत तथा वर्तमान भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के प्रावधानों के मध्य कई महत्वपूर्ण समानताएं स्पष्ट हैं, विशेषकर दोषी अधिकारियों की संपत्ति जब्ती, पदच्युति तथा भविष्य में पद पर पुनर्नियुक्ति पर रोक जैसे प्रावधानों में, जो दोनों व्यवस्थाओं में समान रूप से पाए जाते हैं[21]। परंतु अनेक विद्वानों का यह भी मानना है कि प्राचीन व्यवस्था में गुप्तचरों के व्यापक जाल के माध्यम से होने वाली सतत, अप्रत्याशित एवं गहन निगरानी की तीव्रता वर्तमान संस्थागत ढांचे में उतनी सुदृढ़ता तथा नियमितता से लागू नहीं हो पाई है, जिसके कारण अनेक भ्रष्ट गतिविधियां अनदेखी रह जाती हैं[22]। इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन एवं आधुनिक भ्रष्टाचार नियंत्रण तंत्र के मध्य सैद्धांतिक स्तर पर गहरा संबंध तो विद्यमान है।

विवेचना –

कौटिल्य के गुप्तचर तंत्र की तुलना यदि वर्तमान सतर्कता प्रणाली से की जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन व्यवस्था में गुप्तचर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से, बिना अधिकारियों की जानकारी के, उनकी गतिविधियों पर निरंतर एवं सक्रिय दृष्टि रखते थे, जबकि वर्तमान सतर्कता आयोग मुख्यतः शिकायत–आधारित प्रतिक्रियात्मक प्रणाली पर कार्य करता है, अर्थात वे शिकायत के दर्ज होने के पश्चात ही सक्रिय होता है[23], जो सक्रिय एवं पूर्व–सक्रिय निगरानी के अभाव को स्पष्ट रूप से इंगित करता है।

लोकपाल संस्था के प्रभाव संबंधी पूर्व अध्ययनों में जो गंभीर चिंताएं व्यक्त की गई थीं, जैसे संसाधनों की कमी, नियुक्तियों में विलंब एवं क्रियान्वयन में सुस्ती[24] यह समस्या केवल किसी एक संस्था तक सीमित नहीं, बल्कि संपूर्ण न्यायिक–प्रशासनिक श्रृंखला में व्याप्त है। जनसंख्या–समायोजित शिकायत दर भिन्न है, जो शासन क्षमता एवं भ्रष्टाचार नियंत्रण के मध्य प्रत्यक्ष एवं मापने योग्य संबंध को दृढ़ता से पुष्ट करता है[25]।

विस्तृत विवेचना इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि कौटिल्य के सिद्धांत आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं, विशेषकर तब, जब निरंतर एवं सक्रिय निगरानी, त्वरित एवं अनिवार्य दंड तथा अधिकारियों की व्यक्तिगत एवं प्रत्यक्ष जवाबदेही के संदर्भ में, तथा इन प्राचीन सिद्धांतों का सुनियोजित समावेश वर्तमान संस्थागत ढांचे को कहीं

अधिक प्रभावी एवं परिणामोन्मुखी बना सकता है।

निष्कर्ष –

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित भ्रष्टाचार नियंत्रण सिद्धांतों तथा वर्तमान भारतीय भ्रष्टाचार विरोधी तंत्र के मध्य विस्तृत एवं साक्ष्य–आधारित तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यद्यपि डिजिटलीकरण एवं संस्थागत सुधारों के परिणामस्वरूप कुछ विशिष्ट क्षेत्रों, विशेषकर सीधी सेवा वितरण, में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, फिर भी समग्र वैश्विक भ्रष्टाचार बोध स्थिति, न्यायिक दोषसिद्धि दर तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही के आंकड़े यह स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि क्रियान्वयन के स्तर पर महत्वपूर्ण एवं संरचनात्मक अंतराल बना हुआ है। कौटिल्य द्वारा सुझाए गए सतत एवं सक्रिय निगरानी, त्वरित एवं अनिवार्य दंड तथा अधिकारियों की जवाबदेही जैसे कालजयी सिद्धांत वर्तमान शासन व्यवस्था में सुनियोजित रूप से समाहित किए जाने चाहिए। भ्रष्टाचार रूपी पौधे की जडें शीर्ष अधिकारी, उपर की ओर होती हैं और उसकी शाखाएं अधिनस्थ अधिकारी, नीचे होती हैं। भ्रष्टाचार निरोधक कानून व्यवस्था सदैव शाखाओं पर कार्यवाही करते हैं जबकि भ्रष्टाचार रूपी पौधे की जड़ों तक कोई कार्यवाही प्रस्तावित नहीं की जाती है। भ्रष्टाचार नियंत्रण को केवल कानूनी उपस्थिति तक सीमित न रखकर वास्तविक परिणामों में परिवर्तित किया जा सके।

संदर्भ सूची –

1. आर. पी. कंगले, द कौटिल्य अर्थशास्त्र, भाग 1–3, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1965।
2. एल. एन. राव, 'प्राचीन भारतीय प्रशासन में भ्रष्टाचार नियंत्रण,' भारतीय राज. विज्ञान पत्रिका, खंड 45, अंक 2, पृष्ठ 112–130, 2010।
3. एस. के. मिश्रा, 'भ्रष्टाचार का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य,' सामाजिक विज्ञान समीक्षा, खंड 12, अंक 1, पृष्ठ 45–60, 2008।
4. पी. के. गौतम, 'अर्थशास्त्र में प्रशासनिक नैतिकता,' रक्षा एवं सामरिक विश्लेषण पत्रिका, खंड 37, अंक 4, पृष्ठ 501–515, 2013।
5. टी. आर. त्रिवेदी, चाणक्य नीति एवं शासन, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2011।
6. विश्व बैंक, भारत में सुशासन एवं विकास प्रतिवेदन, वाशिंगटन डी.सी. : विश्व बैंक प्रकाशन, 2020।
7. भारत सरकार, केंद्रीय सतर्कता आयोग वार्षिक प्रतिवेदन, नई दिल्ली : सतर्कता आयोग, 2023।
8. अंतरराष्ट्रीय पारदर्शिता संगठन, भ्रष्टाचार बोध सूचकांक प्रतिवेदन, बर्लिन : ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल, 2024।
9. एन. सी. सिन्हा, : कौटिल्य का दंड सिद्धांत एवं आधुनिक प्रासंगिकता, भार. दर्शन एवं संस्कृति पत्रिका, खं. 29, अं. 3, पृ. 210–225, 2015।
10. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, भारत में अपराध सांख्यिकी प्रतिवेदन, नई दिल्ली : गृह मंत्रालय, 2023।
11. डी. के. चक्रवर्ती, 'प्राचीन ज्ञान एवं आधुनिक शासन,' लोक प्रशासन पत्रिका, खंड 60, अंक 2, पृष्ठ 88–104, 2018।
12. यू. एन. घोषाल, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार, कोलकाता : विश्वभारती प्रकाशन, 1959।

13. बी. के. चतुर्वेदी, 'अर्थशास्त्र में गुप्तचर व्यवस्था का विश्लेषण,' प्राचीन भारत अध्ययन पत्रिका, खंड 8, अंक 1, पृष्ठ 33–50, 2012।
14. एम. आर. सिंह, 'कौटिल्य एवं आधुनिक लेखा परीक्षा प्रणाली,' प्रबंधन एवं शासन पत्रिका, खंड 15, अंक 3, पृष्ठ 145–160, 2016।
15. एस. रोज–एकरमैन, भ्रष्टाचार एवं सरकार : कारण, परिणाम एवं सुधार, कैंब्रिज : कैंब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस, 1999।
16. अंतरराष्ट्रीय पारदर्शिता संगठन, वैश्विक भ्रष्टाचार प्रवृत्ति विश्लेषण, बर्लिन : ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल, 2019।
17. ए. के. जैन, 'सूचना का अधिकार अधिनियम एवं भ्रष्टाचार नियंत्रण,' भारतीय लोक प्रशासन पत्रिका, खंड 58, अंक 4, पृष्ठ 620–635, 2017।
18. आर. वर्मा, 'भ्रष्टाचार विरोधी संस्थाओं की स्वायत्तता,' तुलनात्मक शासन अध्ययन पत्रिका, खंड 22, अंक 2, पृष्ठ 78–95, 2019।
19. एस. गुप्ता, 'लोकपाल अधिनियम का मूल्यांकन,' संसदीय अध्ययन पत्रिका, खंड 40, अंक 1, पृष्ठ 55–70, 2021।
20. भारत सरकार, डिजिटल इंडिया प्रगति प्रतिवेदन, नई दिल्ली : इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, 2022।
21. के. एन. झा, 'भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम एवं प्राचीन दंड संहिता तुलना,' कानूनी अध्ययन पत्रिका, खंड 33, अंक 2, पृष्ठ 190–205, 2014।
22. पी. सक्सेना, 'राज्य स्तरीय शासन क्षमता एवं भ्रष्टाचार,' क्षेत्रीय विकास अध्ययन पत्रिका, खंड 19, अंक 3, पृष्ठ 300–318, 2020।
23. आर. शमशास्त्री, अनुवादक, कौटिल्य अर्थशास्त्र (अंग्रेजी अनुवाद), मैसूर : मैसूर प्रिंटिंग एंड पब्लिशिंग हाउस, 1915।
24. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्या., शासन एवं सार्व. सेवा सर्वेक्षण प्रतिवेदन, नई दिल्ली : सांख्यिकी एवं कार्य. कार्या. मंत्रा., 2023।
25. एच. एल. शर्मा, 'समयक्रम विश्लेषण : भारत में भ्रष्टाचार प्रवृत्तियां,' आर्थिक एवं सामा. अध्ययन पत्रिका, खं. 27, अंक 4, पृ. 410– 428, 2022।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 100-103

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

हिन्दी कथा साहित्य एवं नारी विमर्श

डॉ. बी. आर. भद्री, अ. प्रो.,
रा.आ. म. वि., मीठीबेरी, हरिद्वार।

नारी वैदिक काल से ही बौद्धिक स्तर पर पुरुष की सहचरी रही है यह सत्य है कि नियति ने पुरुष की अपेक्षा नारी को अधिक भाव प्रधान बनाया है। यद्यपि शारीरिक दृष्टि से नारी कमजोर रही है किंतु मानसिक व बौद्धिक दृष्टि से वह सामर्थ्यवान रही है।

स्त्री शब्द की उत्पत्ति –

स्त्री शब्द संस्कृत के स्त्रैय धातु से बना है। यह नारी शब्द का समानार्थी शब्द है। दुर्गाचार्य नारी को स्त्री संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानते हैं।[1]

वेदों में स्त्री को कांता भी कहा गया है। कांता एक नदी का नाम है।[2] अर्थात नारी का व्यक्तित्व नदी की परवाहमयी धारा के समान होने के कारण उसे कांता कहा गया है।

विमर्श का अर्थ –

वृहद हिन्दी कोश के अनुसार – विमर्श का अर्थ विचार, विवेचन, मीमांसा, परामर्श, चरम बिन्दु है।[3] अतः हम कह सकते हैं कि स्त्री विमर्श का अर्थ स्त्री सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर विचार करना है।

भारतीय नारी सृष्टि के प्रारंभ से ही अनेक गुणों से परिपूर्ण है। पृथ्वी जैसी क्षमता, समुद्र जैसी गंभीरता, चांद जैसी शीतलता व पर्वतों जैसी मानसिकता नारी के हृदय में ही देखने को मिलती है। विभिन्न विद्वानों ने नारी की परिभाषा इस प्रकार से दी है– सुधीर चौधरी के अनुसार, "दैहिक विमर्श में जाए बिना और देह को जगाए बिना स्त्री को न पढ़ा जा सकता है और न ही स्त्री वाद को समझा जा सकता है"।[4]

मृदुला गर्ग के अनुसार, "मैं समझती हूं कि फेमिनिज्म का मतलब नारी मुक्ति नहीं, सोच की मुक्ति है।"[5]

मृणाल पांडे के अनुसार, "नारी विमर्श कतई स्त्रियों को बृहत्तर समाज से अलग–थलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में पुरुषों के खिलाफ उन्हें प्रोत्साहित करने का दर्शन नहीं है यह तो एक समग्र दृष्टिकोण है।"[6]

पाश्चात्य विद्वान जॉर्डिन के अनुसार, "नारीवाद स्त्रियों की दृष्टि से स्त्रियों के लिए किया गया आंदोलन है।"[7]

अतः हम कह सकते हैं कि नारी विमर्श में एक ऐसे विमर्श को देखा जाता है जो कि नारी के संपूर्ण व्यक्तित्व को उसके इतिहास के साथ देखता है जिससे आज उसे पुनः मातृत्व शक्ति के रूप में पहचाना जा रहा है। महिला लेखिकाओं ने नारी मन की आधुनिक जिजीविषा को अपनी रचनाओं में व्यक्त कर उनके अस्तित्व को प्रस्तुत किया है। साहित्य की विविध विधाओं में इन लेखिकाओं ने नारी मन की सामाजिक, सांस्कृतिक,

राजनीतिक, आर्थिक आदि समस्याओं का वर्णन कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

प्राचीन काल में कोई भी धार्मिक कार्य बिना पत्नी के पूरा नहीं माना जाता था यह भी कहा गया है कि यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमंते तत्र देवता। अर्थात जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। गृहस्थ आश्रम का दायित्व भी उसके कंधों पर था बिना ग्रहणी के घर की कल्पना भी नहीं की जाती थी किंतु भारत की परतंत्रता के साथ–साथ नारी की परतंत्रता भी शुरू हुई उनका सेवा–भाव उनके लिए घातक होने लगा उनका पग–पग पर अपमान होता रहा वह चार दीवारियों तक सीमित रहने लगी। शिक्षा का अभाव, अनमेल विवाह, आर्थिक परतंत्रता आदि सामाजिक कुरीतियों ने उन्हें विवस कर दिया था। एक समय वह था जब छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद जी ने कहा– "नारी तुम श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पद तल में"। एक समय वह था जब मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा– "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध आंखों में पानी।"

देश में राष्ट्रीयता की भावना के साथ भारतीय नेताओं का ध्यान नारी की दशा पर भी गया। महर्षि दयानंद जी ने शिक्षा और समान अधिकार के दरवाजे नारी के लिए खोले व प्रदा प्रथा तथा बाल विवाह रोकने का प्रयास किया। राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा समाप्त करने का प्रयास किया। नारी विमर्श संपूर्ण विश्व से जुड़ा हुआ विषय है जोकि एक प्रगतिशील विचार व वर्तमान समय का विमर्श है। नारी के अंतर्मन को समझने के लिए आधुनिक कहानी साहित्य में उसके सपनों को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया है।

नारीवादी आंदोलन और उससे उपजे नारी विमर्श का मंतव्य भी यही था कि जितनी जल्दी हो सके नारी दोयम दर्जे की प्राणी न रहे उसे पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हों आज का समय नारी की सक्षमता व योग्यता का परिचायक है वह अपने भविष्य को लेकर चिंतित है तथा उनका परिवार भी उनके के साथ खड़ा रहता है। लड़कियों में भी अध्ययन की क्षमता व कार्य की जिम्मेदारी बढ़ी है। यही कारण है कि आज विभिन्न संस्थाओं में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक सेवारत हैं।

कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, मैत्री पुष्पा आदि ने अपनी रचनाओं में ऐसी स्त्री को प्रदर्शित किया है जो कि आत्म सजग होकर समानता और स्वतंत्रता की बात कर अपनी लड़ाई स्वयं लड़ती है। पुरुष की वर्चस्ववादी मानसिकता व धार्मिक कट्टरता आदि को वह आसानी से चुनौती दे रही है। समकालीन समाज के प्रत्येक विषय में पुरुष लेखकों की भांति महिला लेखिकाओं ने भी लेखन कार्य किया है। हिंदी कहानी में भी पुरुषों के समान अधिकार पाने का संघर्ष आदि भावना नारियों में देखने को मिलती है।

नारी पूर्व की हो या पश्चिम की उत्तर की हो या दक्षिण की उसकी अस्मिता पर प्रश्न उठता रहा है लेकिन सुधार कितना हुआ यह कोई नहीं जानता जबकि वह हमेशा पुरुष की सहचरी रही है। हिंदी कथा साहित्य न केवल भारतीय नारियों की आवाज है अपितु यह एक वैश्विक विमर्श का हिस्सा भी है।

मार्कंडेय जी की कहानियों में भी नारी की दशा इस प्रकार से ही देखने को मिलती हैं– उनकी कहानियों के केंद्र में ग्रामीण स्त्रियां हैं जो शोषण की शिकार हैं उन्हें हमेशा पुरुष की दया और अपमान पर जीना पड़ता है। शहरों की स्त्रियों की स्थिति गांव की स्त्रियों से अलग है क्योंकि शहरों में उन्हें थोड़ी सी सुख सुविधा व साधन उपलब्ध हो जाते हैं किंतु जितने भी कायदे कानून एवं मर्यादा की रेखा पुरुष ने बनाई है वह उन्हें मानने के लिए सदैव तैयार रहती हैं।

उनकी "माई" कहानी की मां शोषित और उपेक्षित स्त्री है वह आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर भी अपने बीमार बेटे के इलाज का संकल्प लेते हुए कहती है– जो पढ़–लिख लेगा, साहब हो जाएगा उसे तो सब लोग पूछेंगे किंतु जो रोगी है उसके लिए तो मैं ही हूं न। कोई किसी को कुछ नहीं देगा लोग अपनी पढ़ाई–लिखाई लेकर अपने घर बैठे, आज से मुझे किसी से मतलब नहीं, मैं मरूंगी उसे लेकर, मैं देश–देश छानूंगी उसकी दवा के लिए।[8]

सात बच्चों की मां कहानी में यह देखने को मिलता है कि जब सोलह वर्ष की संतो का विवाह 50 वर्षीय अपाहिज व्यक्ति से होने के कारण उसका जीवन नारकीय बन जाता है। पति के घर में उसकी भूख और प्यास नहीं मिटती है। संतों का परिचय जब देवी सिंह से होता है तो वह उसे सच्चे मन से प्रेम करती है किंतु वह उसे छोटी–छोटी बातों पर मारता रहता था इतना होते हुए भी संतो का प्रेम देवी सिंह के प्रति कम नहीं होता है। वह इस यातना को सौभाग्य समझती है वह कहती है कि यही वह चाहती है कि कोई मुझसे पूछे, डांटे मुझे रास्ते पर लाए। मैं तो केवल मशीन थी, भूख और अंधेरे में राक्षस मुझे खाते रहे।[9]

नारी समस्या एक वैश्विक समस्या रही है। सदियों से उसे दोयम दर्जे का समझा जाता था सामाजिक परंपराओं ने उसे पुरुषों से पीछे रखने के प्रयास किए गए। पुरुष ने स्त्री को गृह कार्य दिया। स्त्री प्रातःकाल से लेकर रात्रि सोने तक चलती रहती थी उन पर घर का काम थोपा जाता था। ससुराल की यंत्रणाओं से भी उन्हें गुजरना पड़ता था व मायके की याद भी उन्हें सताती रहती थी यथा– मायके हीन लड़की कहती है– कब मायके जाऊं वे भाग्यवती हैं जिनके पीछे भाइयों की जोड़ी है। वे उन्हें मायके बुलाएंगे, रीत जनाएंगे, जिन दिशाओं में उनके मायके होंगे, उन दिशाओं में वे मायके जायेंगी। पर भाग्यहीनों की दिशा सूनी होगी, आशा सूनी होगी। मां, मैं इस ह्रदय नगरी में हूं। लोग बोली मारते हैं नाम धरते हैं।[10]

स्त्री हमेशा पति के सुख में सुखी व दुख में दुखी रहती आई है। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने चारों ओर जो घटा हुआ देखा उसे अपनी रचनाओं में जोड़ने का प्रयास किया है। उनका रचना संसार नारी समस्या से पूर्ण दिखाई पड़ता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि नारी की समस्या नारी ही दूर कर सकती है। उन्होंने नारी मुक्ति, नारी शिक्षा व नारी जीवन में अनेक प्रकार के सुधार लाने का प्रयत्न किया है। मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा रचित गोदान नारी विमर्श की प्रसिद्ध रचना है। इसमें उन्होंने झुनिया और गोबर के बीच संवाद के माध्यम से स्त्री विमर्श की नींव स्थापित की है। गोदान में झुनिया कहती है कि मर्द ही औरतों को बिगाड़ते हैं।[11]

प्रेमचंद जी के साहित्य में नारी विमर्श परिपक्व है। 'निर्मला' उपन्यास में निर्मला कहती है कि अगर संसार का यही सुख है, जो इतने दिनों से देख रही हूं तो उससे जी भर गया सच कहती हूं बहिन, इस बच्ची का मोह मुझे बांधे हुए है। नहीं तो अब तक कहीं चली गई होती। न जाने इस बेचारी के भाग्य में क्या लिखा है।[12] सुशीला टाकभौरे ने अपने नाटकों का उद्देश्य बताया है कि नाटक लिखने का मेरा उद्देश्य स्त्रियों के जीवन की समस्याओं को समाज तक पहुंचाना है ताकि इन पर चिंतन मनन किया जाए।

डॉ. अम्बेडकर जी ने कहा है कि "मैं समाज की उन्नति का अनुमान इस बात से लगाता हूं कि उस समाज की महिलाओं की कितनी प्रगति हुई। नारी की उत्पत्ति के बिना समाज एवं राष्ट्र की उन्नति असंभव"।[13]

नारी का संस्कृति व धर्म से गहरा सम्बन्ध रहा है। उनका खान–पान, रहन–सहन, पहनावा व रीति–रिवाज सब धर्म के अनुसार होते हैं। वे धर्म के नाम पर आंख बंद करके चलती हैं किन्तु कभी–कभी ठगी

भी जाती है। उपन्यासकार प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास में स्त्री पुरुष की दुर्बलताओं की प्रामाणिकता बताई है। साथ ही उन्होंने समाज को संदेश दिया कि वह स्त्री पुरुष के सम्बन्धों के बारे में सोचें।[14] कृष्णा सोबती जी की 'बादलों के घेरे' नामक कहानी में नारी की सामाजिक उदासीनता का प्रश्न भी देखने को मिलता है। इस कहानी में मन्नो तपेदिक से पीड़ित है ऐसी परिस्थिति में जब मन्नो को अपने संबंधियों की सबसे ज्यादा जरूरत होती है तब उसे अकेले छोड़ दिया जाता है फिर भी वह सबकी खुशहाली की कामना करती है। जिसका उदाहरण इन पंक्तियों में देखा जा सकता हैदृ वह कहती है कि मुझे कौन वरदान मांगने हैं, अपने लिए तो कपाट बंद हो गए बस इतना ही चाहती हूं कि यह कपाट उनके लिए खुला रहे जिनसे बिछुडकर मैं अलग आ पड़ी हूं।[15]

अतः हम कह सकते हैं कि नारी कथाकारों ने नारी की मौन पीड़ा को उजागर किया है जिससे समाज उसकी पीड़ा के प्रति सावधान हो सके। मृणाल पांडे, कृष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा, मन्नू भंडारी आदि लेखिकाओं ने नारी मन के अंतर्द्वंदों का विवेचन शुरू किया है। उन्होंने नारी की दुविधा आदि का विश्लेषण कर आज के समय नारी विमर्श का मुद्दा बनाया है। मृणाल पांडे की एकगवाह, रास्तों पर भटकते हुए, एक स्त्री की विदागीत, कृष्णा सोबती की मित्रों मरजानी उषा प्रियवंदा की पचपन खम्भे मन्नू भंडारी की आपका बंटी आदि रचनाओं में नारी संघर्ष देखा जा सकता है। आधुनिक युग की महिला साहित्यकारों ने वैसे तो साहित्य की सभी विधाओं पर लेखनी चलाई है किन्तु हिन्दी गद्य के अधिकतर कहानीकारों ने नारी मुक्ति को साकार करने की कोशिश की है।

इनके अतिरिक्त पुरुष कहानीकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्रीकांत वर्मा, रांगेय राघव, भीष्म साहनी, शेखर जोशी मुंशी प्रेमचंद, आदि ने नारी की पीड़ा का अत्यंत मार्मिक चित्रण कर नारी की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ –

1. शोध–दिशा, डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल, पृष्ठ 175
2. बृहद हिन्दी कोश, कालिका प्रसाद, पृष्ठ 1160
3. बृहद हिन्दी कोष, कालिका प्रसाद, पृष्ठ 1059
4. सम्पादक राजेन्द्र यादव, लेख सुधीर पचौरी, जनवरी फरवरी 2000, पृष्ठ 159
5. मृदुला गर्ग, चूकते नहीं सवाल, पृ. 76
6. मृणाल पाण्डे, परिधि पर स्त्री, पृष्ठ 47
7. फेमीनिज्म एंड रिसेंट फिक्शन इन इंग्लिश, सुशीला सिंह, पृष्ठ 24
8. मार्कंडेयन मार्कंडेय की कहानियां, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002, पृष्ठ संख्या 262
9. वही।
10. डॉ. गोविन्द चातक, खुदेड गीत, पृष्ठ 79 तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली।
11. मुंशी प्रेमचंद, गोदान, पृष्ठ 46
12. मुंशी प्रेमचंद, निर्मला, पृष्ठ 143
13. डॉ. मेघवाल, भारतीय नारी के उद्धारक, डॉ. वी. आर. अम्बेडकर, पृष्ठ 101, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. डॉ. कामिनी तिवारी, प्रभाखेतान के साहित्य में स्त्री विमर्श।
15. कृष्णा सोबती, सोवतती एक सोहबत, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 177

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 104-108

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में किसान चेतना : डॉ. विवेकी राय के विशेष संदर्भ में

प्रसेन जीत सिंह
शोधकर्ता, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

सारांश :

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन एक केंद्रीय विषय बनकर उभरा, क्योंकि स्वतंत्रता के बाद भारत के गाँव आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों के सबसे बड़े साक्षी बने। इन्हीं परिवर्तनों के बीच किसान चेतना अर्थात् किसान की पीड़ा, संघर्ष, आत्मसम्मान और बदलती सामाजिक समझ हिंदी उपन्यास का एक महत्वपूर्ण सरोकार बनी। डॉ. विवेकी राय इस दिशा में विशिष्ट स्थान रखते हैं, क्योंकि उनका साहित्य किसी बाहरी पर्यवेक्षक की नहीं, बल्कि गाँव में रचे–बसे व्यक्ति की भीतरी समझ से रचा गया है। यह शोध–पत्र उनके प्रतिनिधि उपन्यास सोनामाटी तथा अन्य रचनाओं के आधार पर यह जानने का प्रयास करता है कि किसान चेतना उनके साहित्य में किस रूप में अभिव्यक्त हुई है। भूमि से जुड़ाव, आर्थिक संघर्ष, सामाजिक असमानता, आत्मसम्मान और बदलते गाँव के द्वंद्व के माध्यम से। निष्कर्ष यह है कि विवेकी राय के यहाँ किसान केवल शोषण का पात्र नहीं, बल्कि सजग, संवेदनशील और संघर्षशील व्यक्तित्व है, जो भारतीय ग्रामीण समाज के बदलते स्वरूप को समझने की एक जीवंत कुंजी प्रदान करता है।

प्रमुख शब्द :

किसान चेतना, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास, विवेकी राय, ग्रामीण जीवन, कृषक समाज, सामाजिक यथार्थ।

प्रस्तावना :

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज एक साथ कई दिशाओं में बदल रहा था। एक ओर लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था अपनी जड़ें जमा रही थी, तो दूसरी ओर जमींदारी उन्मूलन, भूमि–सुधार और सामुदायिक विकास जैसी योजनाओं ने ग्रामीण भारत की आर्थिक और सामाजिक संरचना को गहराई से छुआ। इन परिवर्तनों का प्रभाव केवल आँकड़ों और नीतियों तक सीमित नहीं रहा – इसने गाँव के भीतर मनुष्य के जीने के तरीके और उसकी सोच को भी बदला। भारतीय ग्रामीण समाज, जो सदियों से एक स्थिर, परंपरा–बद्ध ढाँचे में जीता आया था, अचानक उस परिवर्तन की आँधी में आ गया जिसने उसकी पुरानी निश्चितताओं को हिला दिया।

हिंदी उपन्यास ने इस बदलते यथार्थ को अपने भीतर समेटने का काम बड़ी गंभीरता से किया। यह संबंध स्वातंत्र्योत्तर काल में और सघन हुआ, क्योंकि लेखक अब स्वयं उस बदलते भारत का हिस्सा थे। किसानों की

समस्याएँ भूमि का असमान बँटवारा, कर्ज का बोझ, महाजनी शोषण हिंदी उपन्यास का एक अनिवार्य विषय बन गईं। परंतु किसान चेतना का अर्थ केवल दरिद्रता या शोषण का चित्रण नहीं है। यह उससे कहीं व्यापक है। इसमें किसान का अपने अधिकारों के प्रति जागना, श्रम के प्रति गौरव–बोध, और परंपरा तथा बदलते समय के बीच उसकी उलझन सभी कुछ शामिल है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने गाँव को अलग–अलग दृष्टिकोणों से देखा, परंतु इनमें डॉ. विवेकी राय का स्थान विशिष्ट है। उनका संबंध गाँव से केवल विषय–वस्तु का नहीं, बल्कि जीवन–भर के अनुभव का रहा, और यही अनुभव उनके उपन्यासों में किसान चेतना को एक विशेष प्रामाणिकता और गहराई प्रदान करता है।

किसान चेतना : अर्थ एवं स्वरूप :

किसान चेतना एक बहुआयामी अवधारणा है। इसका सबसे स्पष्ट आयाम आर्थिक संघर्ष है। कर्ज, अनिश्चित उपज, मौसम की मार और बाजार की शर्तों के बीच किसान का निरंतर जूझना। परंतु भूमि से किसान का संबंध भी उतना ही महत्वपूर्ण है। भूमि उसके लिए केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि उसकी पहचान और वंश–परंपरा से जुड़ी वस्तु है। भूमि खोना किसान के लिए आर्थिक हानि के साथ–साथ एक सामाजिक–मानसिक संकट भी होता है। किसान चेतना में श्रम की प्रतिष्ठा का प्रश्न भी अंतर्निहित है। क्या समाज किसान के परिश्रम को उतना सम्मान देता है जितना वह उसके उत्पाद से लाभ उठाता है? इसके साथ सामाजिक असमानता और शोषण के प्रति जागरूकता भी इसका हिस्सा है, विशेषकर जब किसान महाजनी व्यवस्था या प्रशासनिक उदासीनता का सामना करता है। इस जागरूकता से आत्मसम्मान और अधिकार–बोध जन्म लेता है। यह समझ कि किसान भाग्य का दास नहीं, बल्कि अपनी परिस्थितियाँ बदलने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति भी है। अंततः इसमें परंपरा और आधुनिकता के बीच का द्वंद्व भी शामिल है। साहित्य में किसान चेतना की सच्ची पहचान तभी संभव है जब लेखक किसान को केवल पीड़ित नहीं, सोचने–महसूस करने वाले सजीव मनुष्य के रूप में देखे।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्रामीण जीवन :

स्वतंत्रता के बाद के दशकों में भारतीय गाँव कई दिशाओं से दबाव झेल रहा था। जमींदारी उन्मूलन ने भूमि–स्वामित्व की पुरानी संरचना को बदला, परंतु इसका लाभ हर किसान तक समान रूप से नहीं पहुँचा। कई स्थानों पर भूमि–सुधार अधूरे या कागजी ही रह गए। कृषि की पुरानी पद्धतियाँ धीरे–धीरे नई तकनीकों से टकरा रही थीं, जिसका प्रभाव मिश्रित रहा। इसके साथ ग्रामीण राजनीति का नया दौर शुरू हुआ, जिसमें पंचायती संस्थाएँ और चुनावी राजनीति गाँव के भीतर पुराने सामाजिक समीकरणों से टकराने लगीं। इन परिवर्तनों ने हिंदी उपन्यास को एक नया, यथार्थवादी मुहावरा दिया। प्रेमचंद ने स्वातंत्र्य–पूर्व काल में ही अपने उपन्यास गोदान के माध्यम से किसान जीवन के शोषण को गहराई से चित्रित कर एक स्थायी परंपरा की नींव रखी थी।

स्वातंत्र्योत्तर काल में फणीश्वरनाथ 'रेणु' का मैला आँचल एक महत्वपूर्ण मोड़ बना, जिसने आंचलिक उपन्यास की नई धारा को जन्म दिया। ऐसी धारा जो किसी विशेष क्षेत्र के जीवन, भाषा और लोक–संस्कृति को उसकी संपूर्णता में पकड़ने का प्रयास करती थी। इसी साहित्यिक परिवेश में डॉ. विवेकी राय का लेखन आकार लेता है, जिन्होंने पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँवों को अपने साहित्य का स्थायी केंद्र बनाया।

डॉ. विवेकी राय का साहित्यिक व्यक्तित्व और ग्रामीण दृष्टि :

डॉ. विवेकी राय का जन्म 19 नवंबर 1924 को उत्तर प्रदेश के गाजीपुर–बलिया क्षेत्र के एक गाँव में हुआ

था, और उनका बचपन तथा आरंभिक जीवन इसी ग्रामीण परिवेश में बीता। खेती–किसानी से उनका प्रत्यक्ष परिचय रहा, इससे पहले कि वे अध्यापन के पेशे से जुड़ें। यही कारण है कि उनके साहित्य में गाँव किसी दूर से देखे गए दृश्य की तरह नहीं, बल्कि भीतर से जिए गए अनुभव की तरह उपस्थित होता है। वे हिंदी और भोजपुरी दोनों भाषाओं में समान अधिकार से लिखते रहे, और उन्हें ललित निबंध विधा में हजारीप्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र की परंपरा का सशक्त उत्तराधिकारी माना जाता है। विवेकी राय मूलतः गँवई सरोकार के रचनाकार थे। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में बदलते गाँव की दिशा और दशा को कलात्मक संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया, और किसानों, मजदूरों, स्त्रियों तथा समाज के उपेक्षित वर्गों की पीड़ा को स्वर दिया। उनकी दृष्टि में गाँव कोई रोमानी कल्पना नहीं था, बल्कि अंतर्विरोधों से भरा एक जीवंत यथार्थ था। जहाँ सौंदर्य भी था और संघर्ष भी। उनके उपन्यासों में बबूल, पुरुष पुराण, लोक ऋण, श्वेत पत्र और सोनामाटी जैसी रचनाएँ इसी ग्रामीण दृष्टि की सतत अभिव्यक्ति हैं, जिनमें सोनामाटी को उनकी सबसे लोकप्रिय और प्रतिनिधि कृति माना जाता है।

डॉ. विवेकी राय के उपन्यासों में किसान चेतना :

1. किसान और भूमि का संबंध :

विवेकी राय के साहित्य में भूमि किसी निर्जीव संपत्ति की तरह नहीं, बल्कि जीवन के केंद्र में स्थित सजीव उपस्थिति की तरह चित्रित होती है। गाजीपुर–बलिया अंचल की पृष्ठभूमि पर रचित उनके उपन्यासों में किसान का भूमि से संबंध आर्थिक निर्भरता से आगे जाता है। यह उसकी वंश–परंपरा, पहचान और आत्मसम्मान से गुँथा हुआ संबंध है। भूमि की उर्वरता और उससे जुड़ी लोक–मान्यताएँ बार–बार सामने आती हैं, जो दर्शाती हैं कि किसान के लिए खेत केवल उत्पादन–स्थल नहीं, उसके अस्तित्व का आधार है।

2. आर्थिक संघर्ष :

उनके उपन्यासों में किसान की आर्थिक कठिनाइयाँ – अनिश्चित उपज, संसाधनों की कमी और बदलती कृषि–अर्थव्यवस्था एक सतत विषय के रूप में उपस्थित हैं। विवेकी राय ने यह भी रेखांकित किया कि स्वातंत्र्योत्तर काल की नई कृषि–पद्धतियाँ हर बार किसान के हित में सिद्ध नहीं हुईं। यह एक महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि है, क्योंकि उस दौर के आशावादी विकास–विमर्श के विपरीत उन्होंने आधुनिकीकरण की जटिलताओं को समय रहते पहचाना।

3. शोषण और असमानता :

सामाजिक एवं आर्थिक शोषण की स्थितियाँ विवेकी राय के साहित्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में उपस्थित होती हैं। महाजनी व्यवस्था, प्रशासनिक उदासीनता और सामाजिक पदानुक्रम से उपजी असमानता उनके पात्रों के जीवन को गहराई से प्रभावित करती है। इस चित्रण में उपदेशात्मकता के बजाय यथार्थवादी संयम दिखाई देता है। शोषण को वे गाँव के दैनिक जीवन के स्वाभाविक हिस्से के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

4. किसान का आत्मसम्मान :

यह विवेकी राय के साहित्य की विशिष्ट पहचान है कि उनका किसान केवल असहाय पात्र नहीं है। शोषण और कठिनाई के बीच भी उनके पात्रों में एक भीतरी गरिमा और संघर्षशीलता दिखाई देती है। यह आत्मसम्मान प्रायः मुखर विद्रोह के रूप में नहीं, बल्कि अपने श्रम, भूमि और परंपरा के प्रति दृढ़ निष्ठा के रूप

में व्यक्त होता है।

5. बदलता गाँव और किसान :

विवेकी राय के साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर गाँव स्थिर नहीं, निरंतर बदलता हुआ दिखाई देता है। शिक्षा का प्रसार, चुनावी राजनीति और बाजार का बढ़ता दबाव इन सबका प्रभाव गाँव की पुरानी सामाजिक संरचना पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। वे इस परिवर्तन को न पूर्णतः स्वागत–योग्य मानते हैं, न पूर्णतः विनाशकारी, बल्कि एक जटिल प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

6. परंपरा और परिवर्तन का द्वंद्व :

अंततः विवेकी राय के उपन्यासों में परंपरागत ग्रामीण मूल्यों और नई सामाजिक चेतना के बीच का द्वंद्व एक केंद्रीय स्वर बनकर उभरता है। पुरानी लोक–मान्यताएँ एक ओर टूटती दिखाई देती हैं, तो दूसरी ओर नई पीढ़ी में शिक्षा से उपजी नई समझ भी विकसित होती है। यह द्वंद्व किसी एक पक्ष के समाधान में नहीं, बल्कि उसके यथार्थवादी चित्रण में विवेकी राय की साहित्यिक सूझ को प्रमाणित करता है।

विवेकी राय की किसान चेतना की विशेषताएँ :

विवेकी राय के साहित्य में किसान चेतना की जो विशिष्टता उभरती है, वह मुख्यतः उनकी यथार्थवादी परंतु संवेदनशील दृष्टि से जन्म लेती है। वे ग्रामीण जीवन का चित्रण किसी बाहरी पर्यवेक्षक की तरह नहीं, बल्कि उसमें रचे–बसे व्यक्ति की आत्मीयता के साथ करते हैं, जिससे उनका लोकजीवन–चित्रण स्वाभाविक और प्रामाणिक बन जाता है। उनके यहाँ किसान का श्रम केवल आर्थिक गतिविधि नहीं, बल्कि सम्मान के योग्य एक सामाजिक मूल्य के रूप में प्रस्तुत होता है। साथ ही वे ग्रामीण समाज के भीतर के अंतर्विरोधों – सुंदरता और संघर्ष, समरसता और असमानता को एक साथ पकड़ने में सक्षम हैं, जिससे उनका चित्रण किसी एकपक्षीय आदर्शीकरण या निराशावाद से बचा रहता है। परंपरा और आधुनिकता का तनाव उनके पूरे रचना–संसार में एक सूक्ष्म लय की तरह चलता है, और इसी के भीतर किसान की संघर्षशील चेतना धीरे–धीरे आकार लेती हुई दिखाई देती है।

निष्कर्ष :

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास ने भारतीय गाँव और किसान को एक महत्वपूर्ण सामाजिक यथार्थ के रूप में साहित्य के केंद्र में स्थापित किया, और इस परंपरा में डॉ. विवेकी राय का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने गाँव को बाहर से नहीं, बल्कि भीतर से देखा और जिया, और यही अनुभव उनके साहित्य को एक दुर्लभ प्रामाणिकता प्रदान करता है। उनके उपन्यासों में किसान केवल आर्थिक संकट से जूझता हुआ दयनीय पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय चेतना से संपन्न एक सजीव व्यक्तित्व है। जो भूमि से गहराई से जुड़ा है, अपने श्रम पर गर्व करता है, शोषण के प्रति सजग है, और बदलते समय के साथ अपनी पहचान को नए सिरे से गढ़ने का प्रयास करता है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि किसान चेतना के माध्यम से भारतीय गाँव के बदलते स्वरूप को कहीं अधिक गहराई से समझा जा सकता है, क्योंकि यह चेतना केवल साहित्यिक विषय नहीं, बल्कि स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक इतिहास का एक जीवंत दस्तावेज भी है। इस दृष्टि से डॉ. विवेकी राय का साहित्य हिंदी कथा–परंपरा और भारतीय ग्रामीण समाज के परिवर्तन को समझने के लिए स्थायी महत्व रखता है, और आगे के

शोध के लिए भी एक समृद्ध संभावना–क्षेत्र प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची :

1. राय, विवेकी. सोनामाटी. 1983.
2. राय, विवेकी. बबूल. 1964.
3. राय, विवेकी. पुरुष पुराण. 1975.
4. राय, विवेकी. लोक ऋण. 1977.
5. राय, विवेकी. श्वेत पत्र. 1979.
6. प्रेमचंद. गोदान. 1936.
7. रेणु, फणीश्वरनाथ. मैला आँचल. 1954.
8. चौधरी, मीनाक्षी. 'सोनामाटी उपन्यास में ग्राम्य जीवन का यथार्थ और सामाजिक चेतना.' अपनी माटी, 2023.
9. 'विवेकी राय.' भारतकोश – ज्ञान का हिन्दी महासागर. bharatdiscovery.org
10. 'विवेकी राय.' विकिपीडिया – हिन्दी. hi.wikipedia.org

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 109-115

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

Literature as a Living Bridge Between Humanity and the Earth

Dr. Sanyukta Padhi
Independent Researcher, Bhilai, C.G.
Dr. Sheila Vijay
Professor & Head, Department of English,
Dr. KCB. Govt. PG College, Bhilai-3, Durg, C.G.

Introduction :

Literature and art have long shaped how people view nature. Across cultures, creative expression reflects and influences how people relate to the environment. In recent decades, the interdisciplinary field of ecocriticism has highlighted literature's role in fostering environmental awareness. In India, this connection runs deep. From ancient hymns that personify Earth as a mother, to modern novels and paintings that critique ecological destruction, India's literary and artistic heritage bridges humanity and the Earth in profound ways. This paper examines the Indian literary and cultural tradition, beginning with Vedic literature, to explore how ink and imagination have created an enduring bridge between humans and the natural world. Drawing on environmental humanities, cultural studies, and art history, we trace how Indian writers and artists have celebrated nature's beauty, interrogated human abuses of the environment, and inspired a more harmonious relationship with our planet.

Ancient Indian Literature and Ecological Wisdom :

Indian literature's linkage between humanity and nature is evident from its earliest texts. The Vedas, composed over three millennia ago, contain numerous hymns that revere natural elements and emphasize ecological balance. In the *Atharva Veda's* Hymn to the Earth (*Prithvi Sukta*), the earth is deified as a mother sustaining all life*: "earth is my mother, I am her son,"* declares the sage, pledging not to harm the earth's vital forces. The Vedic seers viewed nature holistically, heaven, atmosphere, and earth as an interconnected system, and any disruption to one element could upset the cosmic order. Hymns invoke the *Pancha Mahabhoota* (five elements) – earth, water, fire, air, and ether – seeking their blessings and urging restraint in exploiting them. One *Rig Veda* verse even anticipates

modern ecological insight by noting a protective "layer" in the atmosphere that filters the sun's rays, an allusion comparable to the ozone layer.

Ancient Hindu scriptures articulated what we now call environmental ethics. The *Yajurveda,* for instance, enjoins people not to pollute water, cut trees, or kill animals unnecessarily. It extols the oceans as treasures to protect and emphasises the interdependence of all life. "Do not poison the water and do not harm or cut down the trees," one verse warns unambiguously. These precepts underscore that humans are not masters of nature but its children and custodians, a view reinforced by the doctrine of karma, which links human well-being to how humans treat other beings. Ancient Indian thought thus rejected an anthropocentric worldview; instead, it embraced a cosmic vision of *"one is that which manifests in all,"* affirming the unity of humans, animals, plants, and elements in a single family of life.

Notably, Indian epics and later scriptures continued to portray this sacred bond between humanity and Earth. The *Ramayana* describes how Lord Rama and Sita felt kinship with the forest during their exile, treating the woods not as a hostile wilderness but as a home and teacher. This sympathetic view of nature, as Rabindranath Tagore later observed, sets the Indian epic hero apart - Rama's greatness lies "not in a fierce struggle with Nature, but in sympathy with it". In the *Mahabharata*, by contrast, we see early warnings of ecological cost: Arjuna and Krishna's burning of the Khandava forest to clear land for a city is depicted as a momentous act, "consuming" a thriving forest to spawn urban splendour *(Indraprastha)* at the price of natural harmony. The epic thus records the tension between development and conservation – a theme that resonates to this day.

Nature in Classical Literature and Art :

Classical Indian literature of the Gupta era and beyond continued to celebrate nature's beauty and power, further solidifying the bridge between culture and environment. The 5th-century Sanskrit poet Kâlidâsa, often called a "nature poet," exemplifies this ethos. His works teem with vivid descriptions of seasons, landscapes, and flora/fauna woven into human stories. In plays like *Abhijñânaúâkuntalam* and poems like *Meghadûta*, lush forests, rivers, mountains, and animals are not just backdrops but active presences, reflecting an early appreciation for the environment. Indeed, poets such as Kalidasa portrayed nature as a partner in the human narrative, using rich imagery of blooming lotuses, monsoon clouds, and singing birds to mirror human emotions and convey unity with the natural world. This Sanskrit literary tradition suggests that Indian writers intuitively understood what the West would articulate centuries later: that "the world was not made for humans alone". Literature can highlight life's interdependence.

Correspondingly, Indian art from ancient to premodern times also manifests deep reverence

for nature. Trees, animals, and landscapes feature prominently from prehistoric cave paintings to medieval temple carvings. In Indian visual art, nature is often depicted as sacred and animated, a concept known as animism, in which natural entities have a divine spirit. For example, Indus Valley seals (3rd millennium BCE) show stylised pipal trees being worshipped, and later Buddhist art enshrined the Bodhi Tree (under which the Buddha attained enlightenment) as a symbol of wisdom and life. Throughout Indian art history, the tree has symbolised fertility, divinity, and cosmic order, from the *Ashvattha* (sacred fig) praised in Vedic and Puranic texts to the grove motifs in medieval paintings. By the 18th century, Indian miniature paintings combined aesthetic beauty with theological ecology. Artists painted nature as a "space of possibilities", the abode of the gods and a stage for human drama, giving equal importance to human figures. A striking example appears in late medieval depictions of Braj (Krishna's pastoral land). Art historians note that Braj was portrayed as an idealized lush landscape, not necessarily because it was so verdant in reality, but because a climate shift (the Little Ice Age) spurred a *"plant-based theology"* in which every stone, river, and tree was considered sacred.

Cultural Traditions of Environmental Reverence :

Beyond formal literature and art, Indian culture is replete with traditions that bridge humanity and Earth. Religious and folk practices have treated natural elements as family members or deities, using narrative and ritual to foster ecological ethics. The Atharva Veda's concept of Mâtâ Bhûmi Putro'ham P?thivyâ? ("Earth is my mother; I am her child") became a civilizational ethos. Hindu philosophy developed a "definite code of environmental ethics" centering on the duty (*dharma*) of humans to protect all creation, rather than dominate it. For instance, ahimsa (non-violence) extended beyond people to animals and plants, a principle evident in the Bishnoi community of Rajasthan, which has followed 29 tenets since the 15th century, including *"do not cut green trees"* and *"be compassionate to all living beings"*. This community's legendary sacrifice in 1730, when 363 Bishnoi villagers led by Amrita Devi gave their lives to protect khejri trees from the king's axemen, is often cited as India's first environmental movement. Amrita Devi's famous exhortation, "If a tree is saved even at the cost of one's head, it is worth it", later inspired the 20th-century *Chipko* (tree-hugging) protests. The *Bishnoi* tale, passed through oral lore and eventually recorded by historians, shows how cultural narrative and faith can directly spur conservation action. Even today, *Bishnoi* lands in the Thar Desert remain pockets where wildlife thrives, thanks to these traditional ethics.

Indian festivals and rituals similarly reflect environmental reverence encoded in culture. Many Hindu festivals (e.g. *Vana Mahotsav*, a yearly tree-planting festival, or sacred grove rituals) treat nature as holy kin. Figures such as Tagore popularised rituals like brikshâropana (tree-planting ceremonies) in the 1920s to instil a love of trees in the community. In villages, sacred groves are

preserved as homes of local deities, creating community-protected micro-forests. Rivers like the Ganga are worshipped as goddesses, mountains like *Govardhan* are revered, and animals from cows to snakes receive ritual honour on specific holy days. As one observer notes, *"every aspect of Indian culture, including festivals, is intimately connected with nature"*, underscoring that for India, environmental sustainability has long been intertwined with spirituality and daily life.

Modern Indian Literature and Environmental Consciousness :

In the modern era, as India faced colonialism, industrialisation, and environmental degradation, its writers and artists responded by engaging imaginatively with these challenges. Indian literature in the 19th and 20th centuries often returned to nature for inspiration, critique, and national identity. Nobel laureate Rabindranath Tagore, for example, saw the forest as central to the soul of Indian civilisation. In 1913, Tagore wrote that *"In India it was in the forests that our civilisation had its birth, and it took a distinct character from this origin and environment"*. He contrasted India's forest-nurtured culture of "leisure, rest and natural cosmopolitanism" with the West's sea-driven, conflictual relationship with nature. Tagore's works, from poems in Gitanjali to essays like "Tapovan", consistently extol living in harmony with nature and lament the alienation modern life causes. Notably, Tagore didn't just write about the environment; he put his ideas into practice by establishing Santiniketan, an experimental school amid rural greenery, and by initiating *Vriksharopan* (tree-planting) festivals where students sang and recited nature poetry. Such efforts made Tagore a pioneer of environmental education, blending art with ecological action.

Other early 20th-century Indian writers likewise depicted nature with deep empathy or highlighted environmental injustices. In Bengali literature, Bibhutibhushan Bandopadhyay's novel *Aranyak* (1939) offers a moving account of colonial-era deforestation in Bihar and the spiritual value of wilderness. The protagonist, Satyacharan, who manages a logging estate, is gradually transformed by the forest's majesty and questions the notion of "civilisation" that destroys nature for profit. Passages in *Aranyak* rhapsodise about the forest's timeless continuity since Vedic times and lament how so-called progress severs humans from this primal source of truth. Satyacharan plants wildflower seeds even as he clears trees, a poignant double consciousness reflecting India's conflicted modernisation. Bibhutibhushan's work stands as an early environmental novel and a critique of colonial resource extraction, prefiguring later eco-narratives.

In the post-independence period, Indian English literature increasingly tackled environmental themes, often entwining them with social issues. By the late 20th century, novelists like R.K. Narayan, Kamala Markandaya, and Anita Desai were incorporating village landscapes, agrarian life, and ecological change into their storytelling. India's grand forests and rivers often became characters in their own

right. For instance, Narayan's fictional *Malgudi* is suffused with the rhythms of village life, and Markandeya's Nectar in a Sieve shows how environmental calamities, such as drought, affect rural communities.

Into the 21st century, India's literary engagement with the environment has deepened, often informed by global concerns such as climate change. Amitav Ghosh, one of India's most acclaimed contemporary authors, has led this eco-literary wave. His novel *The Hungry Tide* (2004) is set in the Sundarbans' tidal mangrove forests. It explores the fraught interplay of humans, wildlife (notably river dolphins and tigers), and rising sea levels. Ghosh "deftly intertwines environmental concerns with human narratives" in the Sundarbans, depicting how climate change, cyclones, and conservation policies collide with local lives. At the same time, Indian authors have reflected on literature's role in confronting the environmental crisis. Ghosh's non-fiction book *The Great Derangement* (2016) famously argues that contemporary literature (globally) has largely failed to grapple with climate change – a failure of imagination he terms a "derangement". He highlights how the modern novel, grounded in individual realism, struggles to represent large-scale, uncanny climate events. This critique has spurred Indian writers and critics to push the boundaries of form and genre, from speculative climate fiction to renewed interest in mythic and folkloric modes, to bridge the gap between human experience and planetary change.

Art, Activism, and the Environmental Imagination :

Alongside written literature, India's performing arts and folk media have also shaped environmental consciousness, often blending activism with cultural expression. A striking example is the use of songs and poetry in ecological movements. During the 1970s, *Chipko Andolan* in Uttarakhand – where local women famously hugged trees to prevent commercial logging – folk songs in Garhwali played a pivotal role in mobilizing villagers. Protesters composed and sang couplets like *"Soil is ours; water is ours; these forests are ours… we will protect them"*, asserting community ownership of nature through music. This creative resistance drew on traditional melodies and was profoundly compelling: *"These songs create tremendous on-ground impact and spread the word"*, recalls activist-musician Rahul Ram, noting that protest music lived "in the moment" and galvanized action even if it wasn't always recorded. Indeed, the *Chipko* movement's success in halting deforestation (a 15-year logging ban resulted) owed much to its cultural strategies, folk media, street plays, and devotional imagery, turned into tools of ecological advocacy.

Chipko's legacy set a template for later environmental campaigns in India that engaged art and imagination. From the *Narmada Bachao Andolan's* songs against big dams in the 1980s to contemporary protests (such as citizens singing to save Mumbai's Aarey forest in 2022), Indian

environmentalism continues to harness creative expression to "rouse people to the cause".

Visual artists have also engaged with environmental themes, raising awareness through exhibitions and public art. For instance, painters from indigenous traditions like *Gond* and *Warli* art depict forests and animals in intricate patterns, often commenting on biodiversity loss. Contemporary Indian artists have also explored climate change, urban pollution, and land politics. In sum, whether through forest hymns, sacred groves, epics, paintings, novels, or protest songs, India's cultural output is united by the recognition that humanity and Earth share an inseparable bond.

Conclusion :

Indian literature and art offer a rich, evolving testament to the idea that storytelling and creativity can reconnect humans with the natural world. From the Vedic sages who sang of rivers and trees as divine to modern authors who sound the alarm about climate change, the subcontinent's artistic heritage has persistently blurred the boundary between humanity and Earth. Ancient texts laid an ethical groundwork by sacralizing nature and urging restraint and reverence. Classical poets and artists built on that, portraying a symbiotic world of humans, gods, and ecology. Indigenous traditions and cultural practices kept these values alive through ritual and community action, sometimes at high personal cost (as the *Bishnoi* saga and *Chipko* showed). Finally, modern literature, often blending local insight with global genres, has engaged critically with environmental crises, striving to envision more sustainable futures.

References :

- Acharya, Ananya. "Ancient Verses of Vedas from an Ecological Perspective: Divinity of Nature and Ecology in Vedic Texts." *SXC Jaipur Journal*, 2024.
- Bag, Shamik. "Songs for the Earth: Music and Environmental Protests in India." *Mint Lounge*, 6 Aug. 2022.
- Dewan, Deepali. "Sacred Nature in Indian Painting." *ROM Magazine*, Royal Ontario Museum, 31 Mar. 2021.
- Parmar, Chetana. "Eco-Criticism in Selected Indian English Literature." *Creative Flight*, vol. 5, no. 3, Oct. 2025.
- Rahman, Atiur. "Tagore's Thoughts on Environment." *The Daily Star*, 3 June 2011.
- Roy, Sumana. "Not the Nation, but the Forest State." *Arnoldia*, Arnold Arboretum of Harvard University, 12 May 2025.
- Sharma, Ambika. "Exploring Ecocriticism in Indian English Literature: A Harmonious Discourse with Nature." *International Journal of Advanced Academic Studies*, vol. 3, no.

1, 2021, pp. 50–55.

- Sharma, K. N. "Vedic Perspective on Environment." *The Times of India*, 30 June 2009.
- Sohel, Amir, and Farhat Naz. "The Bishnoi : Revisiting Religious Environmentalism and Traditional Forest and Wildlife Management in the Thar Desert." *Arcadia : Explorations in Environmental History*, no. 10, 2024.
- "The Great Derangement." *Wikipedia: The Free Encyclopedia*, Wikimedia Foundation, 2023.
- Vanarambh. "Indian Culture and Nature—Part 1." *Vanarambh*, 22 Apr. 2022.
- Vennu, Anjali Pandey. "Vegetation in Indian Art." *ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts*, vol. 1, no. 1, 2020, pp. 24–30.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 116-120

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

शिखर और सीमाएं उपन्यास में उत्तरी सिक्किम की पृष्ठभूमि, विवाहेतर नैतिक द्वंद, प्रेम त्रिकोण और पितृसत्ता

अमृता कुमारी साह

शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय, दिफू परिसर, दिफू, असम–782460

शोध–सार :

शरत कुमार द्वारा 1998 में लिखी गई 'शिखर और सीमाएं' उपन्यास साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हो चुकी है। यह उपन्यास उत्तरी सिक्किम की एकांत यात्रा के दौरान पनपी विवाहेतर द्वंद को दर्शाती है। जिसके केंद्र में दीप्ति, विनय और समरेश का नैतिक द्वंद दिखायी देता हैं। दीप्ति प्रेम के अन्तर्मन की छटपटाहट, वैवाहिक अकेलापन के संघर्ष से जूझती हैं अर्थात् प्रेम त्रिकोण से घिरी हुई है। शोध–पत्र में मुख्य पात्र दीप्ति के माध्यम से स्त्री–जीवन की मर्यादाओं पर पुरुषसत्ता की पकड़ को दिखाने का प्रयास किया गया है। तीन पात्र के इर्द–गिर्द घूमती यह उपन्यास सिर्फ प्रेम त्रिकोण को शारीरिक आकर्षण से नहीं जोड़ती है बल्कि प्रेम में भावनात्मक लगाव और स्त्री की स्वतंत्र निर्णय लेने की ईच्छा, अपने वजूद के साथ जीने की परिणति है। अतः यह शोध–पत्र प्रस्तुत करता है ऐसी अंछुई उपन्यास जो पारंपरिक प्रेम आख्यानों से अलग एकांत उत्तरी सिक्किम, हिमाचल, चीन के सीमांत क्षेत्र में पनपी स्त्री की अन्तर्मन की छटपटाहट सीमांत क्षेत्र की सीमा की तरह उस स्त्री के लिए सामाजिक मर्यादाओं की सीमा बनती है। स्त्री के लिए शिखर को छूना और सीमा को लांघना प्रमाणिक कालजयी विमर्श प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द : शिखर, सीमाएं, उत्तरी सिक्किम, एकांत, नैतिक, द्वंद, प्रेम त्रिकोण, स्त्री, पितृसत्ता, संस्कार, विवाहेतर संबंध, संघर्ष।

मुख्य विषय :

मानव समाज में पनपी जटिलताओं को हमेशा से ही साहित्य दर्पण के समान दिखाता आया है। जिन जटिलताओं को मानव समाज हमेशा से लोक लाज, समाज के डर से छुपाने का प्रयत्न करते आया हैं। उन्हें साहित्य बिना किसी डर या संकोच के दिखाने का काम करता है। 'शिखर और सीमाएं' उपन्यास स्त्री–पुरुष के उन सम्बन्धों को उजागर करती हैं। जिसे समाज लोक लाज का डर मानता हैं। विवाहेतर संबंध से जुड़ी यह उपन्यास अपने आप में एक ऐसी विमर्श को जन्म दी है जिसकी चर्चा हिन्दी साहित्य में कम की गई हैं। एक तरफ देखा जाए तो यह उपन्यास स्त्री विमर्श के साथ–साथ कई विमर्श को उजागर कर रहा है जहाँ दीप्ति जैसी पढ़ी लिखी महिला है जो अपनी स्वतंत्र ईच्छा के साथ जीना चाहती है। वहीं दूसरी तरफ लोक लाज, समाज, अस्त्वि, सामाजिक नैतिक जैसे विमर्श को उजागर कर रहा है। इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता है कि

उपन्यासकर स्वयं अपने यात्रा के दौरान सिक्किम और उसके आस–पास के सीमांत क्षेत्र में रहकर अपने उपन्यास को लिखा है। उपन्यास का पात्र भले ही सिक्किम और सीमांत क्षेत्र का मूल निवासी नहीं हैं। फिर भी सीमाओं का एकांत माहौल प्रेम त्रिकोण और स्त्री–पुरुष की प्रेम कथा को आकर्षित और विवाहेतर नैतिक द्वंद को परिलक्षित करता है। सिक्किम, हिमालय और चीन के सीमावर्ती इलाकों से मिला हुआ यह क्षेत्र जहाँ फौजी ट्रकों की घुरचुराहट के मध्य जीवन ठहरता है।

उपन्यासकार ने वहाँ के एकांत विराट, बर्फीले और सुनसान रूप को उपन्यास के तीन पात्रों– दीप्ति, समरेश और विनय के आंतरिक अकेलेपन उनकी अपनी इच्छाओं के बीच जन्मी नए आकर्षणों को दिखाने का प्रयास किया है। यह उपन्यास सिर्फ स्त्री पुरुष के प्रेम को ही नहीं बल्कि विवाहित स्त्री के निजी जीवन और उसके अन्तर्मन में चलने वाले विवाहेतर नैतिक द्वंद की छटपटाहट है। प्रस्तुत शोध–पत्र का मूल उद्देश्य इसी प्रेम त्रिकोण, उत्तरी सिक्किम का एकांत और सीमावर्ती क्षेत्रों को जीवन की सीमाओं से जोड़ना, इस एकांत में पनपी प्रेम संबंध का द्वंद का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना हैं :–

वैवाहिक अकेलापन और भाषाई संकट :

दीप्ति का समरेश के प्रति लगाव कोई अचानक उत्पन्न हुआ प्रेम नहीं है बल्कि यह दीप्ति और उसके पति विनय के वैवाहिक जीवन के नीरसता का परिणाम है। विवाहेतर प्रेम में दूसरे व्यक्ति के प्रति भटकाव तभी होता है जब वैवाहिक जीवन में विचारों का ताल–मेल नहीं बैठता है आपसी दूरियाँ आ जाती है। दीप्ति कहती है "कितनी बार विनय दिल्ली जाता है। 'जाता है', जाते हैं। भाषा के द्वंद में मैं फंस जाती हूँ। एक में आत्मीयता है, एक सुखद बराबरी है, और दूसरे में औपचारिक आदर भावना। विवाह के तीन साल बाद अब मैं दोनों में से कुछ भी अपने अंदर अनुभव नहीं कर पाती।"[1] यह भाषाई संकट समाज में सामाजिक संस्कारों और लोक–लाज के टकराव में बदल जाता है। भारतीय समाज विवाहित स्त्री को पाबंदियों से बांधता है। समाज की ये पाबन्दियाँ स्त्री की स्वतंत्र सत्ता को नकारती हैं। उपन्यास में एक ऐसे प्रसंग को सामने रखा गया है। जिसमें स्त्री का पराधीनता स्वरूप उजागर होता है "उस शाम वयोवृद्ध दंपत्ति घर में अकेले थे। मैं रात वहीं बिता रही थी। खाने के बाद ड्राइंग रूम में रेडियो पर संगीत सुनते समय मैं दीवान पर पांव ऊपर कर लेट गई। बाद में जब मैं अपने कमरे की ओर जा रही थी, तब प्रौढ़ा पत्नी ने अलग ले जाकर कहा कि पुरुष की ओर पांव कर लेटना स्त्री के लिए उचित नहीं है। सुनकर मैं सन्न रह गयी। उयन दोनों को मैं बचपन से जानती थी। उनकी परस्पर शालीनता मेरे भारतीय अनुभव का अभिन्न भाग बन चुकी थी, पर इस युग में पुरुष की ओर पांव न करने की बात! जैसे स्त्री पुरुष की दासी हो।"[2] दीप्ति के नजरिए से भारतीय संस्कारों की आढ़ में स्त्री को पुरुष की दासी बनाए रखना चाहता हैं। दीप्ति इसी सोच से मुक्ति चाहती है उसका आधुनिक मन इस प्रसंग को स्वीकार नहीं करता है। उसका यह मानसिक द्वंद उसे ऐसे रिश्ते की खोज में ले जाता है जहाँ वह भाषाई द्वंद और दासी नहीं बल्कि बराबर की इंसान बन सके।

सौंदर्य के झूठे मापदंड स्त्री जीवन का पहला प्रश्न :

उपन्यास में समरेश के जरिए महत्वपूर्ण वैचारिक पहलू को सामने रखने का भरसक प्रयास उपन्यासकार ने किया है। इस उपन्यास में दीप्ति और समरेश के बीच वार्तालाप होती है जिसका विषय रहता है 'स्त्री का अस्तित्व' और 'समाज में स्त्री का स्थान'। समाज में हमेशा स्त्री को सुंदरता के रूप में देखा जाता है। समरेश

समाज के ऐसे झूठे मापदंड को खारिज करता है और दीप्ति से कहता है "स्त्री सुंदर होना चाहिए। पुरुष क्यों नहीं? आप जानती हैं कि पशु और पक्षी संसार में नर स्वाभाविक रूप में मादा से अधिक सजीला है और जीवन की भौतिक परिस्थितियों से जूझ सकने की क्षमता में मादा नर से किसी तरह कम नहीं है।"[3]

आचरण–संस्कार :

अपनी ईच्छा अनुरूप एक नया रास्ता चुनना और समाज के बनाए हुए नैतिक सीमाओं को पार करना किसी भी मनुष्य के लिए आसान नहीं होता खासकर भारतीय संस्कृति में पली–बड़ी स्त्री के लिए यह कहीं अधिक कठिन होता है। 'शिखर और सीमाएं' उपन्यास की प्रमुख पात्र दीप्ति समरेश के प्यार में समाज द्वारा बनाए गए नैतिक सीमाओं को लांघकर प्रेम–त्रिकोण का हिस्सा बनती है। तब दीप्ति के मन में आचरण और संस्कार का द्वंद चलने लगता है। "आचरण–संस्कार बौद्धिक रूप से मन पर नहीं थोपे जा सकते और संकल्प की दृढ़ता से जो कुछ भी अपने आप को मनवाया जाता है, अचेतन मन अपने शांत और पक्के विरोध में धीरे–धीरे उस सब को उलट देता है।"[4] इस पंक्ति से समझा जा सकता है कि मनुष्यों पर भले ही समाज के बनाए गए सीमा, संस्कार और नियम कि अवहेलना करने का भय हो और ऊपरी मन से इन रूढ़िवादी नियमों को सामाजिक हिस्सा मानना मजबूरी हो। कोई भी मनुष्य भले ही ऊपरी मन से इन नियमों, सीमाओं, संस्कारों का उलंघन न कर पाए पर मनुष्यों का खासकर दीप्ति जैसी आधुनिक महिला का भीतरी मन हमेशा ही समाज के थोपे गए नियमों का विरोध करता है। दीप्ति का समरेश के प्रति लगाव समाज के लिए और उसके पति विनय के लिए समाज के बनाए हुए रूढ़िवादी मर्यादित सीमाओं का लांघना है।

कंचनजंगा का एकांत :

शिखर और सीमाएं उपन्यास में सिक्किम का और कंचनजंगा का एकांत वैभव मानवीय मानवीय संवेदनाओं को गहराई से दिखाने का प्रयास करता है। इतिहास और संस्कृति का केंद्र कंचनजंगा सिर्फ पर्वत ही नहीं है। यह वहाँ के स्थानीय लोगों के लिए आस्था का प्रतीक है। उपन्यासकर अपने उपन्यास शिखर और सीमाएं में सिक्किम के भौगोलिक और सांस्कृतिक यथार्थ को इस प्रकार दिखाते है। "सिक्किम की पवित्र देवी कंचनजंगा। बर्फों का घर और उस शिखर के दूसरी ओर फैली चोटियों के अंचल में पेम्यांग्त्से का प्राचीन गोंपा, जहां सदियों से सिक्किम के राजाओं का अभिषेक होता आया है।"[5] इससे सपष्ट होता है कि सिक्किम की राजशाही व्यवस्था सिक्किम की प्राकृतिक संस्कृति के साथ गहराई से जुड़ी हुई है।

विवाहेतर संबंध :

विवाहेतर संबंध को जहाँ शारीरिक लगाव या वासना के साथ जोड़कर देखा जाता है वहीं शरत कुमार अपने उपन्यास 'शिखर और सीमाएं' में विवाहेतर संबंध को वासना या शारीरिक आकर्षण तक ना जोड़कर इस देह और मन के संबंध को पवित्र और दार्शनिक धरातल पर रखा है। दीप्ति और समरेश के बीच का लगाव आदर और विश्वास का दर्शन कराता है। "मन में ऐसी सुंदर मधुर भावना न रहे जिसका मूल है आदर और विश्वास और जिसका केवल एक भाग मात्र है शारीरिक सौन्दर्य, तो इस स्पर्श का सम्मोहन और इंद्रजाल बहुत देर नहीं चल पाएगा।"[6] दीप्ति और समरेश का लगाव शारीरिक आकर्षण तक सीमित नहीं था। समरेश शारीरिक लगाव को आदर और विश्वास का केवल एक भाग मानता है।

पुरूषवादी अहंकार :

दीप्ति के पति विनय के माध्यम से उपन्यासकर पुरुषवादी उस अहंकार को उजागर करते है जो स्त्रियों को अपने नियंत्रण में रखने का भरसक प्रयास करते है। जब विनय को महसूस हुआ दीप्ति उसके नियंत्रण से बाहर जा चुकी है और समरेश के करीब है। तब विनय का गुस्सा पुरुषवादी अहंकार को सामने ला देता है। विनय गुस्से में अपमानजनक भाषा का प्रयोग करते हुए समरेश को कहता है "कहाँ छिपाकर रखा है उसे? विदेशी संस्कृति की इन बदजात औरतों को जितनी ढील दो उतना ही सिर पर चढ़ जाती हैं।"[7] विनय का ऐसी भाषा का प्रयोग करना पुरुष साम्राज्य के उस चेहरे को सामने लाता जिसे यह बिलकुल ही मंजूर नहीं की स्त्री को स्वतंत्र छुट दी जाए जैसे स्त्री कोई संपत्ति हो। उपन्यास को पढ़कर ऐसा लगता है कि अगर विनय का विचार थोड़ा अलग होता तो शायद दीप्ति का लगाव समरेश से नहीं होता। केवल विनय ही नहीं किसी भी पुरुष का ऐसा अहंकार और कड़वापन किसी भी स्त्री–पुरुष रिश्ते के नीव को कमजोर कर देती है। फिर ऐसे रिश्ते में खालीपन के अलावा और कुछ नहीं रहता।

साहस, परिस्थिति और संयोग :

दीप्ति का साहस जो समाज के बनाए नियमों को अन्तर्मन से खारिज करता है साथ ही वह विनय का गुस्सा भी झेलती है और समरेश के साथ लगाव बनाए रखती है। प्रेम त्रिकोण के इस मझधार में दीप्ति का विचार सिर्फ समरेश से ही मेल खाता है और दीप्ति इस प्रेम त्रिकोण से निकलना चाहती है। जिसका जिक्र दीप्ति अपने पत्र में करती है "कितना साहस जोड़कर मैं तुम्हारे पास आई थी। आज भी वही कंपन मेरे साथ है। उसी साहस को मैं ढूंढ रही हूँ।"[8] दीप्ति अपना निर्णय, अपने जीवन के फैसले खुद लेना चाहती है। दीप्ति को ऐसा महसूस होता है कि अगर वह किसी के दबाव में या किसी के बनाए नियमों में घिरी रहे तो इन सामाजिक नियमों से उसे जो दुख और पीढ़ा होगी उसका समाधान उसे इन सामाजिक नियमों में नहीं मिलेगा। "परिस्थिति से उठे प्रश्नों का उत्तर अंत में अपना आंतरिक ही होता है।"[9] किसी भी मनुष्य के जीवन में जब किसी ऐसी परिस्थिति में या नैतिक नियमों में उलझे रहने का संकट आता है तो उसका समाधान उसे बाहरी दुनिया से नहीं मिलता ना ही समाज के नियमों से बल्कि मनुष्य को अपने अन्तर्मन के सत्य को अर्थात उसे जो सही लगे, उसे एक ना एक दिन स्वीकार करना ही पड़ता है। दीप्ति अपने आंतरिक मन के सत्य को स्वीकार करती है और समरेश के साथ स्थापित रिश्ते को नियति का संयोग मानती है। अन्तः इस प्रेम कथा को उपन्यासकर नियति के अंतिम मोड़ पर छोडते है "संयोग ही से तो दीप्ति उसे मिली थी और भाग्य के आखिरी दांव का वह अंतिम खोया दिन भी तो संयोग ही था।"[10]

निष्कर्ष :

अन्ततः कहा जा सकता है कि सिक्किम, हिमालय और चीन से मिलता हुआ सीमांत क्षेत्र और वहाँ के सड़क निर्माण के कार्य के बीच उठी ऐसी प्रेम कथा जो प्रेम त्रिकोण के अंतर्गत घूमती हुई नजर आती है। पितृसत्ता पर चोट करती हुई यह कथा पुरुष समाज के उस वर्ग को सामने लाती है जहाँ स्त्री की आजादी समाज और पति के निर्णयों पर निर्भर करती है वहीं दूसरी ओर पुरुष समाज के उस वर्ग को भी सामने लाने का भरसक प्रयास करती है जो स्त्री को आदर और सम्मान के नजरिए से देखता है। स्त्री के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि स्त्री को केवल स्वतन्त्रता चाहिए वह किसी भी सामाजिक या किसी भी परिस्थिति में

किसी दबाव के साथ नहीं जीना चाहती साथ ही अपने वैवाहिक जीवन में आपसी बराबरी, आपसी विचार, कम से कम समाज से ना सही तो अपनों के बीच स्वतन्त्रता को खोजती हैं। जहाँ स्त्री को अपनों के बीच रहकर भी स्वतंत्र महसूस ना हो वहाँ उस स्त्री को तीसरे जीवन से जुडने को, मित्रता करने को मजबूर कर देती है। दीप्ति समरेश के साथ भी नहीं थी वह चाहती थी जिस आजादी को वह खोज रही है वह समरेश को भी वही आजादी दे। मित्रता करने के लिए दीप्ति समरेश को उस बंधनों के जाल में बांधना नहीं चाहती थी। दीप्ति कहती है 'किसी भी दबाव में स्वीकार किया कोई भी तो बंधन ठहर नहीं पाता।"[11]

संदर्भ सूची :

1. कुमार शरत, शिखर और सीमाएं, हिन्दी पॉकेट बुक्स, हरियाणा, वर्ष 1998, पृष्ठ–15
2. वही, पृष्ठ–25
3. वही, पृष्ठ–26
4. वही, पृष्ठ–38
5. वही, पृष्ठ–72
6. वही, पृष्ठ–78
7. वही, पृष्ठ–112
8. वही, पृष्ठ–123
9. वही, पृष्ठ–124
10. वही, पृष्ठ–128
11. वही, पृष्ठ–128

फोन नं. 8638145106

मेल– amritakrisah0132@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 121-128

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

प्रकृति का सौदा : राजनीतिक नीतियाँ और उद्योगपति हित

डॉ. एम. एम. अंसारी

प्राचार्य (प्रभारी)

असिस्टेंट प्रोफेसर एंव विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग,

फेरुपुर डिग्री कॉलेज, फेरुपुर (रामखेड़ा), हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

सार (Abstract)

यह शोध पत्र उस गहरे विरोधाभास को उजागर करता है जहाँ विकास के नाम पर राजनीतिक नीतियाँ और उद्योगपतियों के आर्थिक हित मिलकर प्रकृति का दोहन करते हैं। पर्यावरण संरक्षण के वादों के बावजूद, नीतियाँ अक्सर ऐसे प्रोजेक्ट्स को बढ़ावा देती हैं जो जंगलों की कटाई, जल स्रोतों के प्रदूषण, और जलवायु असंतुलन का कारण बनते हैं। उद्योगपतियों के मुनाफे को ध्यान में रखकर बनाई गई नीतियाँ प्रकृति की सीमाओं को नजरअंदाज कर देती हैं। परिणामस्वरूप, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन न केवल पारिस्थितिकी को नुकसान पहुँचाता है, बल्कि मानव अस्तित्व के लिए भी संकट पैदा करता है। यह शीर्षक हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या विकास का अर्थ केवल आर्थिक लाभ होना चाहिए, या फिर उसमें प्रकृति की सुरक्षा और मानवता की स्थिरता भी शामिल होनी चाहिएद्य इस शोध का मुख्य प्रश्न है कि क्या राजनीतिक निर्णय वास्तव में जनहित में लिए जाते हैं? या वे उद्योगपतियों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाए जाते हैं। यह अध्ययन करता है कि वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय विनाश केवल प्राकृतिक प्रक्रियाओं का परिणाम नहीं हैं, बल्कि राजनीतिक नीतियों और उद्योगपतियों के बीच स्थापित गठजोड़ का प्रत्यक्ष प्रभाव हैं, और यह दर्शाता है कि जलवायु परिवर्तन अब सिर्फ वैज्ञानिक या पर्यावरण से जुड़ा विषय नहीं रहा, बल्कि राजनीति और नीतियों से गहराई से जुड़ गया हैद्य राजनीतिक सत्ता, वैश्विक प्रतिस्पर्धा और आर्थिक विकास की दौड़ में पर्यावरणीय सरोकारों की उपेक्षा की जाती रही है। उद्योगों का अनियंत्रित विस्तार, संसाधनों का असंतुलित दोहन तथा पर्यावरणीय कानूनों का राजनीतिक हितों के अधीन होना इस संकट को और गहरा कर रहा है। विकास के नाम पर विनाश की यह प्रवृत्ति जलवायु असंतुलन, प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती आवृत्ति और जनजीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। विकास की राजनीति ने पर्यावरण को निरंतर हाशिये पर क्यों धकेला है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिक असमानताएँ और भी गहरी हुयी हैं। जिसका सबसे अधिक दुष्प्रभाव आदिवासी, किसान और श्रमिक वर्ग पर पड़ रहा है।

मुख्य-शब्द (Keywords) प्रकृति, जलवायु परिवर्तन, राजनीतिक नीतियाँ, सतत विकास, उद्योगपति हित, अंतर्राष्ट्रीय समझौते।

परिचय (Introduction)

मानव सभ्यता के विकास की कहानी प्रकृति के सहारे ही लिखी गई है, लेकिन आधुनिक दौर का विकास मानो प्रकृति के विनाश पर खड़ा होता जा रहा है। राजनीति और उद्योगपति वर्ग का गठजोड़ ऐसा तंत्र बन चुका है, जहाँ नीतियाँ पर्यावरण की रक्षा के बजाय कॉरपोरेट मुनाफे की रक्षा करती नजर आती हैं। जंगलों की कटाई, नदियों का दोहन, खनिजों की लूट और प्रदूषण – यह सब केवल "प्रगति" के नाम पर वैध ठहराया जा रहा है। नतीजतन, आम जनता, किसान और आदिवासी अपने प्राकृतिक अधिकारों से वंचित होते जा रहे हैं, जबकि उद्योगपति और राजनीतिक ताकतें और मजबूत हो रही हैं। यह शोध इस विडंबना को उजागर करने का प्रयास है कि जब राजनीति और पूँजी मिलकर प्रकृति की कीमत पर सौदेबाजी करते हैं, तो उसका परिणाम केवल पर्यावरण संकट ही नहीं बल्कि मानव अस्तित्व के लिए भी खतरे का संकेत बन जाता है। आज के समय में जलवायु परिवर्तन पूरी दुनिया के लिए सबसे गंभीर चुनौती बन चुका है। पहले जहाँ जलवायु परिवर्तन को सिर्फ पर्यावरण से जुड़ी समस्या माना जाता था, वहीं अब यह जीवन के हर पहलू को प्रभावित करने लगा है। तेजी से बढ़ता तापमान, बेमौसम बरसात, लंबे सूखे, समुद्र का स्तर बढ़ना, चक्रवात और बाढ़ जैसी आपदाएँ इस बात का सबूत हैं कि पृथ्वी का संतुलन बिगड़ रहा है। इन घटनाओं का असर सीधे तौर पर खेती, पानी, स्वास्थ्य, रोजगार और समाज पर पड़ रहा है। भारत जैसे विकासशील देशों में यह समस्या और भी गहरी है, क्योंकि यहाँ की बड़ी आबादी खेती और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। जब मौसम असामान्य हो जाता है, तो फसलें खराब हो जाती हैं और किसान आर्थिक संकट में आ जाते हैं। कहीं पानी की कमी हो जाती है तो कहीं बाढ़ सब कुछ तबाह कर देती है। इसका असर केवल अर्थव्यवस्था पर ही नहीं बल्कि लोगों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति पर भी पड़ता है। कई बार लोग मजबूर होकर पलायन करते हैं, जिससे नए क्षेत्रों में संसाधनों को लेकर विवाद बढ़ने लगते हैं।

जलवायु परिवर्तन की समस्या अंतरराष्ट्रीय राजनीति से भी गहराई से जुड़ी है। विकसित देश और विकासशील देश आपस में इस बात पर सहमत नहीं हो पाते कि प्रदूषण कम करने और जलवायु की रक्षा की जिम्मेदारी किसकी अधिक है। विकसित देश लंबे समय से औद्योगीकरण करके पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते रहे हैं, जबकि विकासशील देश अभी भी अपने विकास के लिए उद्योगों और ऊर्जा पर निर्भर हैं। यही कारण है कि जलवायु न्याय का सवाल उठता है।

भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि उसे विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाना है। एक ओर तेजी से बढ़ती आबादी और विकास की जरूरतें हैं, तो दूसरी ओर पर्यावरणीय संकट और प्राकृतिक आपदाओं का खतरा। सरकार ने इसके लिए कई योजनाएँ और नीतियाँ बनाई हैं, जैसे नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना और राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) लागू करना, लेकिन इन्हें जमीनी स्तर पर पूरी तरह सफल बनाना आसान नहीं है।

उद्देश्य (Objectives)

इस शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य जलवायु परिवर्तन की गंभीरता और उसके बहुआयामी प्रभावों को स्पष्ट करना है। इसमें विशेष रूप से यह समझने का प्रयास किया गया है कि सत्ता में बैठे लोग किस प्रकार उद्योगपतियों के हित में राजनितिक निर्णय लेते है और उनका असर पर्यावरण की समस्याओं, समाज और

अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। शोध में यह भी देखा गया है कि विकसित और विकासशील देशों के बीच जिम्मेदारी के बँटवारे को लेकर किस प्रकार मतभेद पैदा होते हैं और इन मतभेदों से अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर क्या असर पड़ता है।

भारत के संदर्भ में इस अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि यहाँ जलवायु परिवर्तन किस रूप में सामने आ रहा है और इससे राजनीतिक निर्णय–प्रक्रिया किस प्रकार प्रभावित हो रही है। साथ ही यह भी देखा गया है कि विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाने की चुनौती को भारतीय राजनीति किस तरह हल करने का प्रयास कर रही है। अंततः, इस शोध का लक्ष्य यह सुझाना है कि नीतिगत और राजनैतिक स्तर पर ऐसे कौन से कदम उठाए जा सकते हैं, जिनसे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम किया जा सके और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक सुरक्षित और संतुलित वातावरण सुनिश्चित किया जा सके।

शोध पद्धति (Research Methodology)

इस शोध में गुणात्मक और वर्णनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। जानकारी द्वितीयक स्रोतों से जुटाई गई है, जैसे सरकारी दस्तावेज, वैश्विक रिपोर्ट, जर्नल लेख और विश्वसनीय ऑनलाइन स्रोत। इसके साथ ही अंतरराष्ट्रीय समझौते (पेरिस समझौता, क्योटो प्रोटोकॉल) और भारत की नीतियों का (NAPCC, नवीकरणीय ऊर्जा कार्यक्रम) भी अध्ययन किया जाएगा। शोध में मुख्य रूप से तार्किक और आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है, ताकि जलवायु परिवर्तन और राजनीतिक चुनौतियों के बीच संबंध स्पष्ट हो सके।

1. जलवायु परिवर्तन :

प्रकृति केवल पेड़–पौधे, जल और जमीन नहीं है, बल्कि यह जीवन का आधार है। इतिहास में मानव ने हमेशा प्रकृति के संसाधनों का उपयोग किया, लेकिन आधुनिक औद्योगीकरण और शहरीकरण ने इसे नई ऊँचाई दे दी। आज विकास के नाम पर जंगल कट रहे हैं, नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं और जमीन का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। जलवायु परिवर्तन अचानक नहीं हुआ। इसके पीछे लंबे समय से विकास के नाम पर लिए गए फैसले और नीतियाँ हैं, जो अक्सर उद्योगपतियों के फायदे के लिए बनाईं गईं। इसके प्रमुख कारणों में औद्योगिकीकरण, जीवाश्म ईंधनों का ज्यादा उपयोग, जंगलों की अंधाधुंध कटाई और आधुनिक कृषि गतिविधियाँ शामिल हैं। इन सब से वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ी और पृथ्वी का तापमान धीरे–धीरे बढ़ने लगा। आज विकास के नाम पर विनाश हो रहा है, जिसका असर समुद्र के स्तर में बढ़ोतरी, बर्फ के क्षेत्रों का पिघलना और चरम मौसम घटनाओं की वृद्धि के रूप में देखा जा रहा है।[1]

परिवर्तन के प्रभाव :

1. भारत में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव विशेष रूप से कृषि, जल संसाधन, और स्वास्थ्य पर गहरे हैं। अत्यधिक वर्षा और सूखा जैसे चरम मौसम घटनाओं से फसल चक्र प्रभावित हो रहा है, जिससे कृषि उत्पादकता में कमी आ रही है। इसके अतिरिक्त, जल संसाधनों की उपलब्धता में अनियमितता और जल गुणवत्ता

---

1. विकासपीडिया, "जलवायु परिवर्तन किन कारणों से हो रहा है?" विकासपीडिया, प्राप्त स्रोत: https://energy.vikaspedia.in/viewcontent/rural energy/environment/ 6/11/2023

में गिरावट भी देखी जा रही है।[2] मै इसको सीधा हरित क्रांति से जोडकर देखता हूँ जिसने जहाँ एक ओर भुखमरी पर काबू पाया, वहीं दूसरी ओर हमने इसको पर्यावरण के खिलाफ खड़े हुए पाया।

2. जलवायु परिवर्तन के कारण जल और वेक्टर–जनित रोगों का प्रसार बढ़ रहा है। अत्यधिक वर्षा और बाढ़ से जल स्रोतों का प्रदूषण हो रहा है, जिससे दस्त, हैजा, और टाइफाइड जैसी बीमारियाँ फैल रही हैं। इसके अलावा, बढ़ते तापमान से मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं।[3]

3. जलवायु परिवर्तन एक राजनीतिक मुद्दा बन चुका है, क्योंकि यह संसाधनों की कमी, आर्थिक असमानता, और सामाजिक अशांति का कारण बन रहा है। देशों के बीच जलवायु परिवर्तन के कारणों और जिम्मेदारियों को लेकर मतभेद हैं, जिससे अंतरराष्ट्रीय सहयोग में बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं।[4]

4. भारत में जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर राजनीतिक दलों के दृष्टिकोण में भिन्नताएँ हैं। कुछ दलों ने जलवायु परिवर्तन के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए नीतियाँ बनाई हैं, जबकि अन्य दलों ने विकास के नाम पर पर्यावरणीय चिंताओं को नजरअंदाज किया है। यह राजनीतिक असहमति जलवायु नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन में बाधक बन रही है।[5]

2. उद्योगपति हितों के पक्ष में राजनीतिक निर्णय :

भारत व विश्व की राजनीति पर उद्योगपतियों के हित में लिए जाने निर्णय भी जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण है सभी राजनीतिक पार्टियों को कम्पनी द्वार चन्दा दिया जाता है ताकि भविष्य में उनको अपने हक में नीतियाँ बनाने पर जोर दिया जा सके और सत्तारूढ़ दल उनको लाभ पहुंचा सके और होता भी ऐसा ही है फिर कम्पनी अपनी पालिसी के तहत काम करती है जिसको पर्यावरण की परवा किए बगैर केवल अपना लाभ कमाना होता है। जिसके लिए पूरा वातावरण दूषित किया जाये चाहे फिर जमीन में सीधा बोरिंग किया जाये और फैक्टरी का गन्दा व दूषित पानी उसमे छोड़ा जाता है जो जमीन के अंदर शुद्ध पानी को दूषित करता है। यह केवल भूजल के प्रदूषण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह गठजोड़ पर्यावरण नियमों को कमजोर करने और विकास परियोजनाओं के त्वरित अनुमोदन में भी प्रमुख भूमिका निभाता है।

यह राजनीतिक–औद्योगिक गठजोड़ (Political-Industrial Nexus) दो मुख्य तरीकों से पर्यावरणीय विनाश को बढ़ावा देता है :

- **नीतिगत छूट और पर्यावरणीय मानकों में ढील :** 'भारत में पर्यावरण के मुद्दे एक संकलन' में जो कि

2. ड्रिस्टि आईएएस. जलवायु परिवर्तन और भारत : चुनौतियाँ और अनुकूलन. प्राप्त स्रोत : www.drisiias.com/hindi/daily updates news/2025
3. आइडियाज फॉर इंडिया. जलवायु परिवर्तन : एक उभरते हुए सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट की दस्तक. 2025, प्राप्त स्रोत: www.ideasforindia.in/topics/environment/climate&change&an&unfolding&public&health&crisis&hindi.
4. संस्कृति आईएएस. राष्ट्रीय सुरक्षा मुद्दे के रूप में जलवायु परिवर्तन. प्राप्त स्रोत : www.sanskritiias.com /hindi/current&affairs/climate&change&as&a&national&security&isue /2025
5. फेमिनिज्म इन इंडिया. क्यों भारतीय राजनीति में 'जलवायु परिवर्तन' एक अहम मुद्दा नहीं बन पाता है?. प्राप्त स्रोत : www.hindi.feminisminindia.com/2024/03/29/are&indian&political&parties&ignoring&climate&change&issues&hindi/2024

विभिन्न लेखों व विचारों का संकलन है, जिसमे विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गयी है जो इसी ओर संकेत करती है कि राजनीतिक दल सत्ता में आने के बाद उन उद्योगपतियों के प्रति 'कृतज्ञता' व्यक्त करते हैं जिन्होंने उन्हें चुनावी चंदा दिया। यह 'कृतज्ञता' अक्सर पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) को कमजोर करने, प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों पर राजनीतिक दबाव बनाने, और जमीनी स्तर पर पर्यावरणीय कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन में बाधा डालने के रूप में सामने आती है। उदाहरण के लिए, बड़े खनन, थर्मल पावर या बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं को ऐसे संवेदनशील पारिस्थितिक क्षेत्रों में भी मंजूरी मिल जाती है जहाँ स्थानीय समुदाय और पर्यावरणविद् विरोध करते हैं।[6]

- **संसाधनों का राजनीतिकरण :** भारत में पर्यावरणीय समस्याएं केवल आधुनिक विकास के मॉडल का परिणाम नहीं हैं, बल्कि यह औपनिवेशिक युग में ही आरंभ हो गई थीं। ब्रिटिश शासन के दौरान औद्योगिकरण और संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया। उन्होंने यह भी बताया कि स्वतंत्रता के बाद भारत ने जो औद्योगिक मॉडल अपनाया, वह भी इन्हीं समस्याओं को बढ़ावा देता है। उदाहरणस्वरूप, भारतीय जंगलों की कटाई और नदियों का प्रदूषण आज भी जारी है, जो औपनिवेशिक नीतियों की विरासत मानी जा सकती है। गुहा तर्क देते हैं कि भले ही जलवायु परिवर्तन न होता, भारत फिर भी पर्यावरणीय संकट का सामना कर रहा होता। उद्योगपतियों के हित में, प्राकृतिक संसाधनो जैसे वन, जल और खनिज को 'राष्ट्र की संपत्ति' के बजाय 'कॉरपोरेट लाभ के स्रोत' के रूप में देखा जाने लगता है। जंगलों को 'विकास' के नाम पर काटा जाता है ताकि उद्योगों के लिए जमीन उपलब्ध हो सके, नदियों पर ऐसे बाँध और परियोजनाएँ थोपी जाती हैं जो स्थानीय पारिस्थितिकी और किसानों की आजीविका को नष्ट कर देती हैं। इस प्रक्रिया में, आदिवासियों और किसानों के संवैधानिक और पारंपरिक अधिकारों की लगातार उपेक्षा की जाती है, जिससे सामाजिक–पारिस्थितिक संघर्ष बढ़ते हैं।[7]

संक्षेप में, यह राजनीतिक फैसला लेने की वह संरचनात्मक विफलता है जहाँ तत्काल आर्थिक लाभ को दीर्घकालिक पर्यावरणीय स्थिरता पर प्राथमिकता दी जाती है। यह प्रवृत्ति सीधे तौर पर सतत विकास के मूल सिद्धांतों का उल्लंघन करती है और जलवायु परिवर्तन के खिलाफ प्रभावी कार्रवाई को बाधित करती है।

3. जलवायु न्याय और अंतर्राष्ट्रीय मतभेद :

जलवायु परिवर्तन की समस्या जितनी स्थानीय है, उतनी ही वैश्विक भी है। इसका समाधान अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बिना संभव नहीं, लेकिन इस सहयोग के रास्ते में जलवायु न्याय का सिद्धांत एक बड़ी बाधा बनकर खड़ा है। यह सिद्धांत विकसित और विकासशील देशों के बीच ऐतिहासिक जिम्मेदारी और वर्तमान उत्सर्जन क्षमताओं के आधार पर मतभेदों को दर्शाता है।

- **ऐतिहासिक जिम्मेदारी का प्रश्न :**

विकसित देश, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय राष्ट्र, ने औद्योगिक क्रांति के समय से ही भारी मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन किया है, जिसके कारण वर्तमान जलवायु संकट उत्पन्न हुआ है। दूसरी

6. महेश रंगराजन, भारत में पर्यावरण के मुद्दे : एक संकलन (पियर्सन एजुकेशन, पियर्सन, 2015)
7. रामचंद्र गुहा, स्पीकिंग विद नेचर : द ओरिजिंस ऑफ इंडियन एनवायरनमेंटलिज्म (Fourth Estate India, 10 अक्टूबर 2024)

ओर, विकासशील देश, जैसे भारत और चीन, अपनी बड़ी आबादी की विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिए अभी भी ऊर्जा–गहन औद्योगीकरण पर निर्भर हैं। विकासशील देशों का तर्क है कि चूंकि संकट उत्पन्न करने की ऐतिहासिक जिम्मेदारी विकसित देशों की है, इसलिए उन्हें ही प्रदूषण कम करने और जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अधिक कठोर कदम उठाने चाहिए, साथ ही वित्तीय और तकनीकी सहायता भी प्रदान करनी चाहिए।

- **अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर प्रभाव :**

अंतर्राष्ट्रीय जलवायु समझौते, जैसे कि क्योटो प्रोटोकॉल और पेरिस समझौता, इन मतभेदों से गहरे रूप से प्रभावित हुए हैं। पेरिस समझौते में 'समान लेकिन विभेदित जिम्मेदारी और संबंधित क्षमताएँ' (Common But Differentiated Responsibilities and Respective Capabilities & CBDR-RC) के सिद्धांत को अपनाया गया है,[8] जो इस बात को स्वीकार करता है कि सभी देशों की जिम्मेदारी है, लेकिन उनकी क्षमताओं और ऐतिहासिक योगदान के आधार पर उनकी जिम्मेदारियों का स्तर भिन्न होगा। हालांकि, विकसित देश अक्सर इस सिद्धांत की अनदेखी करते हुए विकासशील देशों पर उनके समान उत्सर्जन कटौती का दबाव डालते हैं, जो अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को कठिन बना देता है।

4. भारत के सामने विकास बनाम पर्यावरण की दुविधा :

भारत के लिए जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संरक्षण की चुनौती एक जटिल दुविधा प्रस्तुत करती है : तेज गति से आर्थिक विकास करना या पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखना।

भारत विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, और एक बड़ी आबादी को गरीबी से बाहर निकालने के लिए उसे निरंतर विकास दर की आवश्यकता है। यह विकास वर्तमान में मुख्य रूप से कोयला आधारित ऊर्जा और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं (सड़क, उद्योग, शहरीकरण) पर निर्भर है, जो अनिवार्य रूप से पर्यावरण पर दबाव डालते हैं।[9]

- **राजनीतिक चुनौती :**

राजनीतिक स्तर पर, विकास का वादा अक्सर चुनाव जीतने का सबसे सशक्त माध्यम होता है। बड़े औद्योगिक घरानों से मिलने वाला चुनावी चंदा और नौकरियाँ पैदा करने का दबाव राजनीतिक नेतृत्व को त्वरित विकास के रास्ते पर धकेलता है। इस प्रक्रिया में, पर्यावरणीय मानकों का उल्लंघन या उन्हें कमजोर करना राजनीतिक मजबूरी बन जाता है। इस कारण, भारत में सतत विकास की अवधारणा केवल कागजों तक सीमित रह जाती है, और विकास बनाम पर्यावरण की बहस में, श्विकासश हमेशा भारी पड़ता है।[10]

---

8. संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC), पेरिस समझौता (Paris Agreement, 2015)
9. भारत सरकार, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) : प्रगति रिपोर्ट (रिपोर्ट का वर्ष), 20–22।
10. भारत सरकार, नीति आयोग, सतत विकास लक्ष्य (SDG) भारत सूचकांक रिपोर्ट (नवीनतम रिपोर्ट का वर्ष), 5।

निष्कर्ष एंव सुझाव :

जलवायु परिवर्तन एक राजनीतिक संकट है जो आर्थिक और पारिस्थितिक असमानताओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। शोध–पत्र में किए गए विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण का विनाश केवल प्राकृतिक प्रक्रियाओं का परिणाम नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक नीतियों और उद्योगपतियों के आर्थिक हितों के बीच बने एक शक्तिशाली गठजोड़ का प्रत्यक्ष नतीजा है। विकास की राजनीति ने लगातार पर्यावरण को हाशिये पर धकेला है, जिसका सबसे अधिक खामियाजा किसान, आदिवासी और श्रमिक वर्ग को भुगतना पड़ रहा है।

इस विनाशकारी प्रवृत्ति को रोकने और जलवायु परिवर्तन के गंभीर प्रभावों को कम करने के लिए नीतिगत और राजनैतिक स्तर पर कई कठोर कदम उठाने आवश्यक हैं :

- **पर्यावरण नियमों का सशक्तिकरण :** पर्यावरण प्रभाव आकलन प्रक्रिया को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त और अधिक पारदर्शी बनाना होगा। प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को स्वायत्तता और पर्याप्त संसाधन प्रदान किए जाने चाहिए ताकि वे उद्योगपतियों के दबाव के बिना काम कर सकें।
- **राजनीतिक फंडिंग में सुधार :** राजनीतिक दलों को कॉरपोरेट चंदे की पारदर्शिता को बढ़ाना आवश्यक है। इलेक्टोरल बॉन्ड जैसी अप्रत्यक्ष फंडिंग योजनाओं को समाप्त कर, राजनीतिक प्रक्रियाओं में उद्योगपतियों के अनुचित प्रभाव को कम किया जाना चाहिए।
- **न्यायपूर्ण संक्रमण :** भारत को अपनी ऊर्जा नीति में कोयले से नवीकरणीय ऊर्जा की ओर न्यायपूर्ण संक्रमण सुनिश्चित करना होगा। इसका अर्थ है कि इस बदलाव में प्रभावित होने वाले लाखों श्रमिकों और समुदायों के लिए पुनः कौशल प्रशिक्षण और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित की जाए।
- **जन–केंद्रित नीतियाँ :** विकास के मॉडल को जीडीपी–केंद्रित से हटाकर मानव–केंद्रित और पारिस्थितिकी–केंद्रित बनाना होगा। स्थानीय समुदायों, आदिवासियों और किसानों को प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन और पर्यावरणीय निर्णयों में भागीदारी का वास्तविक अधिकार मिलना चाहिए।

निष्कर्षतः, जब तक राजनीति पर्यावरण को केवल एक बाहरी लागत के रूप में देखती रहेगी, तब तक श्प्रकृति की मौत का सौदाश जारी रहेगा। जलवायु संकट से निपटने के लिए, भारत को आर्थिक लाभ के ऊपर पारिस्थितिकी स्थिरता को स्थापित करने वाली एक साहसिक और न्यायपूर्ण राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है।

उद्धृत संदर्भ :

1. विकासपीडिया. (द.क.). जलवायु परिवर्तन किन कारणों से हो रहा है?
   प्राप्त स्रोत : https://energy.vikaspedia.in/viewcontent/rural energy/environment/
2. ड्रिस्टि आईएएस. (2025). जलवायु परिवर्तन और भारत : चुनौतियाँ और अनुकूलन.
   प्राप्त स्रोत : www.drisiias.com/hindi/daily updates news
3. आइडियाज फॉर इंडिया. (2025). जलवायु परिवर्तन : एक उभरते हुए सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट की दस्तक. प्राप्त स्रोत : www.ideasforindia.in/topics/environment/climate&change&an&unfolding&public&health&crisis&hindi.

4. संस्कृति आईएएस. (2025). राष्ट्रीय सुरक्षा मुद्दे के रूप में जलवायु परिवर्तन. प्राप्त स्रोत : www.sanskritiias.com /hindi/current&affairs/climate&change&as&a&national& security&isue
5. फेमिनिज्म इन इंडिया. (2024). क्यों भारतीय राजनीति में 'जलवायु परिवर्तन' एक अहम मुद्दा नहीं बन पाता है?. प्राप्त स्रोत : www.hindi.feminisminindia.com/2024/03/29/are&indian&political& parties&ignoring&climate&change&issues&hindi/
6. रंगराजन, महेश। भारत में पर्यावरण के मुद्दे एक संकलन। पियर्सन एजुकेशन, पियर्सन, 2015।
7. गुहा, रामचंद्र, स्पीकिंग विद नेचर : द ओरिजिंस ऑफ इंडियन एनवायरनमेंटलिज्म। फोर्थ स्टेट इंडिया, 2024।
8. संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC), पेरिस समझौता (Paris Agreement, 2015)
9. भारत सरकार, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) : प्रगति रिपोर्ट (रिपोर्ट का वर्ष), 20–22।
10. भारत सरकार, नीति आयोग, सतत विकास लक्ष्य (SDG) भारत सूचकांक रिपोर्ट (नवीनतम रिपोर्ट का वर्ष), 5।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 129-133

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

लोकमंगल की अवधारणा और कन्नड़ के संत पुरंदर दास तथा हिंदी के गोस्वामी तुलसीदास के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. एस. एस. देसाई

सह प्राध्यापक, श्री संगमेश्वर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
चडचन, जिला विजयपुर, कर्नाटक 586205

प्रस्तावना :

भारतीय साहित्य परंपरा अपने आप में विशिष्ट और विविध रूपों में पल्लवित और पुष्पित होती आ रही है विशेष रूप से कन्नड़ और हिंदी का मध्यकाल साहित्य का स्वर्णिम युग है क्योंकि इस काल में मानवीय मूल्यों को अत्यंत श्रेष्ठ स्थान दिलाने का सफल कार्य किया गया है जिसमें कन्नड़ के अद्‌भुत कवि पुरंदर दास और हिंदी के श्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास जी का योगदान सर्वमान्य है। इसके बारे में एक तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी माना जा सकता है। भारतीय इतिहास का भक्तिकाल केवल आध्यात्मिक जागरण का युग नहीं था, बल्कि यह एक महान सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्रांति का काल भी था।

इस काल में देश के अलग–अलग कोनों में ऐसे महान संतों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम का संदेश देने के साथ–साथ समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों और असमानता पर कड़ा प्रहार किया।

दक्षिण भारत में कन्नड़ साहित्य और संगीत को समृद्ध करने वाले संत पुरंदर दास (1484–1564 ई.) और उत्तर भारत में हिंदी साहित्य के आकाशदीप गोस्वामी तुलसीदास (1511–1623 ई.) इस भक्ति आंदोलन के दो मजबूत स्तंभ हैं। यद्यपि दोनों की भाषाएं, भौगोलिक क्षेत्र और काव्य शैलियां भिन्न थीं, लेकिन दोनों के विचारों का मूल उद्देश्य एक ही था – मानव कल्याण, समाज सुधार और ईश्वर की शरणागति।

आइए, इन दोनों महान संतों के जीवन दर्शन, सामाजिक दृष्टिकोण, साहित्यिक योगदान और भक्ति मार्ग का एक विस्तृत एवं तुलनात्मक अध्ययन करते हैं।

1. जीवन पृष्ठभूमि और वैचारिक निर्माण :

दोनों संतों के जीवन की पृष्ठभूमि में एक बहुत बड़ी समानता यह है कि दोनों ने अपने जीवन के शुरुआती हिस्से में सांसारिक मोह–माया का गहरा अनुभव किया और फिर एक निर्णायक मोड़ (Turning Point) के बाद पूर्ण वैराग्य को प्राप्त हुए।

- **संत पुरंदर दास :** इनका प्रारंभिक नाम श्रीनिवास नायक था। वे एक अत्यंत धनी जौहरी (सोने–चांदी के व्यापारी) थे। वे स्वभाव से बहुत कंजूस थे। लोककथाओं के अनुसार, भगवान विट्ठल ने एक गरीब ब्राह्मण का

रूप धरकर उनकी पत्नी से उनकी नाक की नथ दान में ले ली। जब श्रीनिवास को यह पता चला, तो वे अपनी पत्नी पर क्रोधित हुए। लेकिन जब उन्होंने देखा कि वही नथ उनके घर के डिब्बे में चमत्कारिक रूप से वापस आ गई है, तो उनकी आंखें खुल गईं। उन्होंने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी और व्यासराज के शिष्य बनकर 'पुरंदर दास' कहलाए।

- **गोस्वामी तुलसीदास :** तुलसीदास जी का प्रारंभिक जीवन अत्यंत अभावों और कष्टों में बीता। उनका विवाह रत्नावली से हुआ, जिनसे वे अत्यधिक प्रेम करते थे। एक बार रत्नावली ने उन्हें उलाहना देते हुए कहा – **'अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों जैसी प्रीति। नेकु होती जो राम महं, तो न तव भव-भीति।।'** (जितना प्रेम इस हाड़–मांस के शरीर से है, उतना अगर श्री राम से होता तो भवसागर से पार उतर जाते)। यह बात तुलसीदास जी के हृदय में चुभ गई और उन्होंने गृहत्याग कर वैराग्य धारण कर लिया।
- **तुलना :** पुरंदर दास ने अत्यधिक धन और समृद्धि को छोड़कर वैराग्य अपनाया, जबकि तुलसीदास ने अत्यधिक आसक्ति और सांसारिक मोह को छोड़कर राम की शरण ली। दोनों के वैराग्य का कारण उनकी पत्नियों की सात्विक बुद्धि और ईश्वर की अदृश्य प्रेरणा बनी।

2. भक्ति का स्वरूप : दासभाव की प्रधानता :

दोनों ही संत सगुण भक्ति धारा के उपासक थे। दोनों ने ईश्वर को एक साकार रूप में देखा, उनसे प्रेम किया और अपनी कला को उनके चरणों में अर्पित कर दिया।

- **पुरंदर दास (कृष्ण/विट्ठल भक्ति) :** पुरंदर दास भगवान विष्णु के अवतार श्री कृष्ण (पंढरपुर के विट्ठल) के परम भक्त थे। उनकी भक्ति में 'दास भाव' (Servant-Master Relationship) मुख्य था। वे स्वयं को ईश्वर का दास मानते थे और हर परिस्थिति में उन्हीं पर निर्भर रहते थे। उनके पदों (कीर्तनों) में विट्ठल के प्रति अनन्य समर्पण झलकता है।
- **तुलसीदास (राम भक्ति) :** तुलसीदास मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के अनन्य उपासक थे। तुलसी की भक्ति पद्धति भी पूरी तरह से 'दास्य भाव' पर आधारित है। उन्होंने रामचरितमानस में स्पष्ट लिखा है : **'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।'** अर्थात सेवक और सेव्य (स्वामी) के भाव के बिना संसार रूपी सागर से पार नहीं पाया जा सकता।

3. सामाजिक सुधार और कुरीतियों पर प्रहार :

भक्ति काल के संत केवल गुफाओं में बैठकर ध्यान लगाने वाले साधु नहीं थे, बल्कि वे समाज के सजग प्रहरी थे। पुरंदर दास और तुलसीदास दोनों ने अपने–अपने समय के समाज को बहुत बारीकी से देखा और उसमें सुधार का प्रयास किया।

संत पुरंदर दास का सामाजिक दृष्टिकोण :

पुरंदर दास ने समाज में फैले जातिवाद, छूआछूत, पाखंड और अंधविश्वास का कड़ा विरोध किया। उन्होंने कन्नड़ भाषा में सीधे और सरल शब्दों में कहा कि यदि मन शुद्ध नहीं है, तो बाहरी आडंबरों का कोई मूल्य नहीं है।

- उन्होंने अपने एक प्रसिद्ध कीर्तन में कहा कि कुल या जाति से कोई महान् नहीं होता, महान् वह है जो भगवान का स्मरण करता है।

• उन्होंने तीर्थयात्रा, नदी स्नान और केवल ऊपरी दीक्षा लेने वाले पाखंडी गुरुओं पर तीखे कटाक्ष किए। उनका मानना था कि अंतःकरण की शुद्धि ही सच्ची तीर्थयात्रा है।

गोस्वामी तुलसीदास का सामाजिक दृष्टिकोण :

तुलसीदास जी का समय मुगलों के शासनकाल का था, जब हिंदू समाज सांस्कृतिक और मानसिक रूप से टूट रहा था। ऐसे समय में तुलसीदास ने 'समन्वय' (Synthesis) का मार्ग चुना।

• **शैव और वैष्णव विवाद का अंत :** उस समय शिव के भक्तों और विष्णु के भक्तों में भारी विवाद रहता था। तुलसीदास ने राम के मुख से कहलवाया– **'शिव द्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहु नहि भावा।'** इस प्रकार उन्होंने समाज को एकजुट किया।

• **वर्णाश्रम धर्म की रक्षा :** तुलसीदास जी समाज में एक व्यवस्था (Order) देखना चाहते थे, जिसे उन्होंने 'रामराज्य' कहा। हालांकि कुछ आलोचक उन्हें रूढ़िवादी मानते हैं, लेकिन उनका मूल उद्देश्य समाज को बिखरने से बचाना और नैतिक मूल्यों की स्थापना करना था।

4. साहित्यिक और संगीतात्मक योगदान :

दोनों ही संतों ने लोकभाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया, जिससे ज्ञान महलों से निकलकर झोपड़ियों तक पहुंच सका।

• **संगीत के पितामह : पुरंदर दास :**

पुरंदर दास को 'कर्नाटक संगीत का पितामह' (Pitamaha of Carnatic Music) कहा जाता है। उन्होंने संगीत को एक व्यवस्थित रूप दिया।

• उन्होंने संगीत सीखने के लिए प्रारंभिक पाठ्यक्रम (Mayamalavagowla राग में) तैयार किया, जो आज भी कर्नाटक संगीत सीखने वाले विद्यार्थियों को सबसे पहले सिखाया जाता है।

• उन्होंने करीब 4,75,000 कीर्तनों (जिन्हें 'पुरंदर उपनिषद' भी कहा जाता है) की रचना की, जिनमें से आज कुछ हजार ही उपलब्ध हैं। उनकी भाषा सरल कन्नड़ थी, जिसे आम राहगीर भी गा सकता था।

अवधी और ब्रज के सम्राट : तुलसीदास :

तुलसीदास जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के बावजूद जनभाषा अवधी और ब्रज को चुना।

• उनकी अमर कृति 'रामचरितमानस' उत्तर भारत के घर–घर में पढ़ी जाने वाली सबसे पवित्र पुस्तक बन गई।

• इसके अलावा उन्होंने विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, गीतावली जैसी 12 प्रमाणिक पुस्तकों की रचना की। तुलसीदास के काव्य में रस, छंद, अलंकार और संगीत का अनूठा मिश्रण है। उनकी 'विनय पत्रिका' के पद शास्त्रीय संगीत के रागों पर आधारित हैं।

5. वैचारिक समानताएं और भिन्नताएं (तुलनात्मक विश्लेषण)

मुख्य समानताएं :

1. **नाम–महिमा पर बल :** दोनों संतों का मानना था कि कलियुग में केवल ईश्वर का नाम ही मोक्ष का एकमात्र साधन है। पुरंदर दास ने कृष्ण नाम की महिमा गाई, तो तुलसीदास ने 'कलिजुग केवल नाम अधारा,

सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा' कहकर राम नाम को सर्वोपरि बताया।

2. **सद्गुरू का महत्व :** दोनों ने माना कि बिना गुरु के ईश्वर की प्राप्ति असंभव है। पुरंदर दास ने व्यासराज को अपना मार्गदर्शक माना, तो तुलसीदास ने अपने गुरु नरहरिदास की वंदना **'बंदऊं गुरू पद पदुम परागा'** कहकर की।

3. **लोक कल्याण की भावना :** दोनों का काव्य 'स्वांतः सुखाय' (अपने सुख के लिए) के साथ–साथ 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के सिद्धांत पर आधारित था।

मुख्य भिन्नताएं :

1. **काव्य बनाम संगीत :** तुलसीदास मुख्य रूप से एक महाकवि थे, जिनका ध्यान कथा, चरित्र–चित्रण और दार्शनिक सिद्धांतों की व्याख्या पर अधिक था। इसके विपरीत, पुरंदर दास मुख्य रूप से एक वाग्गेयकार (गीतकार और संगीतकार) थे, जिनका उद्देश्य संगीत के माध्यम से सीधे ईश्वर से जुड़ना और जनता को जगाना था।

2. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण :** पुरंदर दास पर द्वैत दर्शन का प्रभाव था, जहां जीव और ईश्वर हमेशा अलग रहते हैं और जीव ईश्वर का दास बना रहता है। तुलसीदास के विचारों में विशिष्टाद्वैत और अद्वैत का सुंदर समन्वय था, जहां राम ही ब्रह्म हैं और यह जगत उन्हीं की माया है।

निष्कर्ष :

संत पुरंदर दास और गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति के दो ऐसे अनमोल रत्न हैं, जिन्होंने देश के दो अलग–अलग हिस्सों में रहकर भी एक ही वैश्विक सत्य का प्रचार किया।

जहाँ पुरंदर दास ने कर्नाटक संगीत की नींव रखकर और समाज के पाखंड पर प्रहार करके दक्षिण भारत को एक नई चेतना दी, वहीं तुलसीदास ने बिखरते हुए उत्तर भारतीय समाज को 'रामचरितमानस' के रूप में मर्यादा और आदर्श का एक ऐसा धागा दिया, जिसने पूरे समाज को पिरोकर रख दिया।

इन दोनों संतों के विचार आज सदियों बाद भी प्रासंगिक हैं। इनका जीवन और दर्शन हमें सिखाता है कि सच्ची भक्ति वही है जो मनुष्य को संवेदनशील, परोपकारी और समाज के प्रति उत्तरदायी बनाए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कन्नड़ के संत श्रेष्ठ पुरंधर दास साहित्य और संगीत के महान ज्ञानी थे और हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि शिरोमणी गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने तत्कालीन परिवेश से प्रभावित होकर युगों युगों तक प्रभावित करने वाली पंक्तियों को जन्म दिया जो आज भी प्रासंगिक और अत्यंत मूल्यवान सिद्ध हो चुकी है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. दक्षिण और उत्तर के भक्त संत – डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर।
2. भारतीय साहित्यरू विभिन्न परिप्रेक्ष्य – (भारतीय भाषा और साहित्य के अंतर्संबंधों पर आधारित)
3. उत्तर–दक्षिण के संत संप्रदाय – डॉ. पी. आदेश्वर राव।
4. 'Purandaradasa' — V. Sitaramiah
   (National Book Trust, New Delhi)
5. 'Purandaradasa's 108 Verses, Transliterated, Translated and Interpreted' — (उनके दार्शनिक विचारों के अनुवाद सहित व्याख्या)

6. 'Tyagaraja and Purandara Dasa' —
S. Sreenivasa Rao (संगीत और सामाजिक सुधार में योगदान पर)
7. गोस्वामी तुलसीदास – आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
8. तुलसी दर्शन – डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र।
9. तुलसीदास : एक समालोचनात्मक अध्ययन – डॉ. श्यामसुंदर दास और डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल
10. तुलसीदास और उनका युग – डॉ. रामविलास शर्मा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 134-141

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारतीय कृषि में महिला कृषि मजदूरों की भूमिका (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. विनोद कुमार नागले
उच्च. माध्य. शिक्षक (अर्थशास्त्र)
शासकीय उ.मा. विद्यालय निमोटी, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

सारांश :-

''भारत की सामाजिक मान्यताओं के अनुसार महिला का स्थान एवं कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित है, किन्तु आदिकाल से ही वह पुरुषों से आवश्यकता पड़ने पर पीछे नहीं रही। विकसित देशों में महिलाओं पुरुषों के साथ बना भेदभाव के कार्य करती रहती है, जबकि भारत जैसे विकासशील देश में प्रयासरत है। शिक्षा प्रशिक्षण एवं आवश्यक दिशा निर्देश जैसे–जैसे महिलाओं में विकसित हो रहा है। क्रमशः कृषि, पशुपालन के अतिरिक्त औद्योगिक एवं अन्य क्षेत्रों में भी महिला कृषि मजदूरों की भागीदारी बढ़ी है।''श्रमिक महिलाएं प्रायः अध्ययन क्षेत्रों में अधिक पाई जाती है। उनमें शहरी एवं ग्रामीण दो प्रकार के परिवेश उनके कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते है। शहरी एवं ग्रामीण कार्यो में भी अंतर पाया जाता है। इस कारण महिलाएं कार्य के अनुसार शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभाजित हो गई है। अध्ययन क्षेत्र जहाँ श्रमिकों की कार्य दशाएं अनिश्चित होती है श्रम कानून भी कृषि क्षेत्र में लागू नहीं होता है। इस कारण अध्ययन क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की आर्थिक स्थिति में काफी विसंगतिया पाई जाती है। रीवा जिला एक औद्योगिक जिला है। यहां अनेक औद्योगिक इकाइयॉ स्थापित है। साथ ही अध्ययन क्षेत्र भी औद्योगिक क्रियाओं में संलग्न है। वहां की महिलाओं की आर्थिक स्थिति काफी उलझी हुई है। जिसका विश्लेषणात्मक अध्ययन करना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

मुख्य शब्द :- महिला कृषि मजदूर, अध्ययन क्षेत्र, आर्थिक स्थिति।

भूमिका :-

मानव–जीवन के प्रारम्भिक सोपान पर किसी भी व्यक्ति के विकास व उसके भावी जीवन का सशक्त आधार स्तम्भ होता है। देश एवं समाज का भविष्य बहुत कुछ देश के कार्यरत महिलाओं के समुचित संरक्षण और विकास पर निर्भर करता है। कार्यरत महिला न केवल राष्ट्र की धरोहर हैं बल्कि भावी कर्णधार भी हैं और इस आयु में संग्रहीत मूल्यों एवं कौशल के आधार पर व्यक्ति भविष्य में एक खुशहाल परिवार, स्वस्थ समाज तथा सशक्त राष्ट्र के निर्माण में सकारात्मक योगदान करती हैं। इसी महत्ता के कारण लोक कल्याणकारी और प्रजातांत्रिक सरकारों द्वारा कार्यरत महिलाओं का विकास राष्ट्र की पहली प्राथमिकता होती है। वैसे तो महिलाओं की एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है और इस समस्या से कोई भी देश अछूता नहीं है। लेकिन हमारे देश में यह एक

ज्वलंत समस्या और विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। स्वतंत्रता के 70 वर्षों के बाद भी महिलाओं का शोषण तथा महिला का नियोजन बदस्तूर कायम है। नारियों में समानता की भावना विकसित करने एवं चेतना जागृत करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की घोषणा की गई। आज समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे महिलाओं की भागीदारी देखी जा सकती है। फिर भी भारत जैसे पुरुष प्रधान देश में महिलाओं की आकांक्षाओं को सामाजिक बंधन के कारण साकार रूप नहीं मिल सका है। आर्थिक तंगी के कारण महिलाओं को मानसिक श्रम के अलावा शारीरिक श्रम भी करने को बाध्य होना पड़ता है, जिसके लिये उनकी अशिक्षा, प्रशिक्षण और दिशा निर्देश का अभाव है। अंततः महिलायें कई तरह के शारीरिक श्रम कार्य जैसे कि भवन निर्माण कार्य में बतौर श्रमिक कार्य करने के लिये विवश होती है, जिसके लिये पढ़ाई और योग्यता की जरूरत नहीं होती है। महिला कृषि मजदूरों के श्रम को कई तत्व प्रभावित करते हैं। जिसका प्रभाव उनकी कार्यक्षमता पर पड़ना स्वाभाविक है। महिला कृषि मजदूरों को कठोर शारीरिक श्रम करना पड़ता है, जिसमें कई कठिनाइयाँ आती है। भारतीय समाज में महिला–पुरुष दोनों को समान दर्जा प्राप्त हैं, फिर भी पढ़ी–लिखी व स्वावलम्बी महिला को न तो भारतीय समाज ने बराबरी का दर्जा दिया है और न स्वयं महिला ने खुद को बराबर समझने की मानसिकता बन पाई है।

पूर्व शोध की समीक्षा :–

अध्ययन क्षेत्र में महिलाओं की कार्य दशाएं एवं महिलाओं के रहन सहन पर Ernest (1987) एवं Prompunrthum & Kerdpol (1985) ने प्रकाश डाला है। Padmini (1987) ने त्रिवेन्द्रम में लिंग आधारित क्षेत्र पर अध्ययन किया। जबकि Dighe (1985) एवं Kalpagam (1987) ने शहरी अध्ययन क्षेत्र के संदर्भ में महिला कृषि मजदूरों के महत्व व भूमिका पर चर्चा की। विभिन्न विद्वानों ने शहरी अध्ययन क्षेत्र में कार्यरत महिला कृषि मजदूरों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया यथा –NiUa : 1987; Mazumdar: 1990; Shaw : 1984; Tripathi & Das : 1991; Tiwari : 1989; Lalitha : 1999; Unni & Rani : 1999। अनेक अध्ययनों ने विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में शहरी अध्ययन क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं का अध्ययन किया, जैसे खारतूम एवं नागर (1988) पाकिस्तान के खान (1982) एवं बिल्गूजस एवं हामिद (1988) Gilbert ,oa Gugler (1982) ने किया। अध्ययन महिला कृषि मजदूरों के लिए संगठनात्मक तत्वों की चर्चा Area Singh (1978), Rajula Devi (1985), Sarva (1981) एवं Cher (1989) आदि ने प्रस्तुत किया।

Levis (1959) ने अपने प्रवासन सिद्धांत में व्यवस्था दी कि, ग्रामीण जीविका क्षेत्र के शहरी औद्योगिक क्षेत्र में श्रम का प्रवाह स्थिर मजदूरी दर पर पूर्णतया लोचदार होगी जबकि Godfrey (1973) ने इसके विपरीत निष्कर्ष अपने घना अध्ययन में प्राप्त कियां वहीं ILO (1972) का विचार था कि श्रम न केवल संगठित क्षेत्र रोजगार वरन् अध्ययन क्षेत्र रोजगार भी ग्रामीण प्रवासन के लिये प्रेरक होते हैं। बनर्जी (1986) ने पाया कि आधे से ज्यादा ग्रामीण शहरी अध्ययन क्षेत्र व प्रवासन में घनिष्ठ संबंध होता है एवं नगरी अध्ययन क्षेत्र में प्रवासियों की भागीदारी, रायपुर नगर में 54.5 प्रतिशत (Diwan :1995: 63) विशाखापट्टनम में 46 प्रतिशत (राजू 1989, श्रीरामामूर्ति : 1986); अहमदाबाद में 55 प्रतिशत (पापुला : 1981:17), सम्बलपुर में 61 प्रतिशत (सामल 1990 : 65) एवं कानपुर में 60 प्रतिशत (तिवारी : 1990 : 234) थी। अन्य अर्थव्यवस्थाओं के नगरों में भी प्रवासियों का प्रतिशत 14 प्रतिशत से 95 प्रतिशत तक पाया गया (आयरिस : 1981, 91, Marge : 1981 : 10, सांचेज अन्य : 1981 : 146; मोआर

: 1981 : 110) आदि ने अनेक अध्ययनों में शहरी अध्ययन क्षेत्र के विकास हेतु योगदान पर प्रकाश डाला गया है साथ ही साथ इसे अर्थव्यवस्था के विशेषकर निर्धन या साधनहीन लोगों के लिए भावी विकास की सम्भावनाओं के क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया गया है। खान (1987) ने शहरी अध्ययन क्षेत्र के मानव संसाधन के विकास में योगदान को चित्रित किया गया हैं जबकि ल्यूबर्न (1990) ने इस क्षेत्र के राष्ट्रीय आय, रोजगार सृजन एवं कौशल संवर्धन संबंधी महत्व को चित्रित किया है। सिनपिंग यू (1985) का मानना था कि अन्य क्षेत्रों में स्थिति अच्छी न होने पर भी शहरी अध्ययन क्षेत्र में रोजगार का सृजन उत्साहवर्धक था। वर्मन (1976) ने नगरीय अध्ययन क्षेत्र को विकास हेतु महत्वपूर्ण माना है। हिटिंग (1986) ने इस क्षेत्र के रोजगार एवं आय सृजन क्षमता के मूल्यांकन का प्रयास किया। अर्निन (1992) का निष्कर्ष था कि आर्थिक गिरावट के काल में शहरी अध्ययन क्षेत्र जहां अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है वहीं आर्थिक समृद्धि के काल में इस क्षेत्र की रोजगार सृजन की क्षमता काफी बढ जाती है। जबकि इंजो मैनगोइन (1984) ने शहरी अध्ययन का अध्ययन विकास आधुनिकीकरण एवं शहरीकरण के परिप्रेक्ष्य में किया। ब्रोम्ले और गैरी (1979) का मत है कि शहरीकरण अध्ययन क्षेत्र न केवल स्थानीय संसाधनों पर आश्रित होता है वरन् यह अनुपयोगी वस्तुओं के पूर्ण प्रयोग हेतु भी महत्वपूर्ण होता हैं। सेथूरामन (1981) का मत है कि शहरी विकास की प्रक्रिया मे शहरी अध्ययन क्षेत्र को अपनी भावी भूमिका निभानी अभी शेष है।

उद्देश्य एवं उपयोगिता :-

महिला कृषि मजदूरों के शोषण की जिम्मेदारी हमारे समाज की है और यदि समाज उनकी समस्याओं को ध्यान दे, तो यह भी सम्मानपूर्वक, अधिकार पूर्ण जीवन जी सकती है। भारत में अनेक कानूनी प्रावधान है, फिर भी महिला कृषि मजदूरों के शोषण की चर्चाएं गोष्ठी एवं पत्र–पत्रिकाओं में होती है। महिला कृषि मजदूरों का आर्थिक, शारीरिक शोषण न होने पाये, इसके लिये इतने कानून बने हैं, फिर भी महिलाओं के श्रम शोषण की प्रक्रिया में कोई सुधार नहीं दिख रहा है, पुरुष श्रमिकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर बराबर से श्रमिक महिलायें भी कार्य करती हैं। आजकल भवन निर्माण का कार्य निरन्तर हो रहा है, जिसमें अनेक ग्रामीण महिलायें कार्यरत हैं। महिला कृषि मजदूरों को भवन निर्माण जैसे कठिन कार्य में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन महिला कृषि मजदूरों का शारीरिक, आर्थिक व सामाजिक, शोषण निरन्तर हो रहा है और इनकी समस्याओं को कोई न सुनने वाला है और न ही समस्याओं का समाधान करने वाला है। इन्हें किसी प्रकार की कोई सरकारी सहायता प्राप्त नहीं है। इन उपरोक्त पक्षों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्ययन उद्देश्य इस प्रकार निश्चित किया गया है–

1. कृषि में महिला मजदूरों की भूमिका का अध्ययन करना।
2. महिला कृषि मजदूरों व उनके परिवार के रहन–सहन के स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
3. कृषि विकास कार्यक्रम के प्रति कृषि महिला मजदूरों को जागरूक करके उन्हें इस कार्यक्रम में सम्मिलित करना।
4. कृषि महिला मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना।
5. कृषि महिला मजदूरो को कृषि से सम्बन्धित सरकारी योजनाओं की जानकारी देना।
6. कृषि महिला मजदूरों को स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी देना।

7. महिला मजदूरों के रोजगार के अवसर का अध्ययन करना।
8. महिला कृषि मजदूरों के स्वास्थ्य शिक्षा एवं अन्य समस्याओं का अध्ययन करना।
9. कृषि के आधुनिकीकरण का कृषि महिला मजदूरों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि :–

ज्ञान के क्षेत्र में शोधकार्य अपरिहार्य है। वर्तमान युग में शोध का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि किसी भी क्षेत्र में संबंधित तथ्यों का प्रमाणीकरण, नवीनीकरण एवं सत्यापन शोध के द्वारा ही किया जा सकता है।

विकास के इस धरातल पर भी देश के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ विकास की गति धीमी है। ऐसे ही क्षेत्रों में से एक रीवा जिला भी है जहाँ प्राकृतिक भू–बनावट के कारण भूजल की पर्याप्त है। भू–जल स्तर निरन्तर नीचे की ओर अभिमुख है बढ़ती जनसंख्या ने वनों के स्वरूप को विखंडित कर दिया है। अतः ऐसे क्षेत्रों के विकास के लिए सरकारी स्तर पर किये जा रहे प्रयासों के साथ एक ऐसे अध्ययन क्षेत्र के साथ कार्यरत महिला कृषि मजदूरों के गुणात्मक विकास की जो भी सुविधाएं प्राप्त हो रही हैं, उन्हीं के द्वारा विकास कर सके। अध्ययन क्षेत्र के विकास की उक्त भावधारा संचालित एक ऐसे ही सुन्दर स्वरूप है, जो अपने कार्यक्रमों द्वारा रीवा जिले के अध्ययन क्षेत्र के विकास हेतु संलग्न है।

अध्ययन क्षेत्र के विकास संबंधित कार्यालयों, अधिकारियों व स्थानीय स्तर से सम्पर्क कर प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार विधि तथा आंकड़ों का संग्रहण किया जाएगा। आंकड़ों का संग्रहण में सर्वेक्षण, निरीक्षण, साक्षात्कार विधियाँ के साथ आरेख एवं तालिकाओं की सहायता ली जाएगीं। अध्ययन क्षेत्र के उद्योगों से जुड़ी अनेकों योजनाएं तथा सूचनाएं आंकड़े, प्राप्त किए जाएंगे। रीवा जिले के अध्ययन क्षेत्रमें मूल रूप से कार्यरत महिला कृषि मजदूरों के रूप में जीवन–यापन की पूर्ति हेतु सम्पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने की योजना है। जिससे क्षेत्र के गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों को आसानी से रोजगार तथा आय के स्थायी इन्तजाम हो सकें।

उपकल्पना :–

चिंतन और जिज्ञासा मानव की दो, मूल प्रवृत्तियां हैं और इसके वैज्ञानिक आधार केन्द्र बिन्दु भी हैं उपकल्पना सामाजिक शोध की प्रथम सीढ़ी है। शोध कार्य प्रारंभ करने के पूर्व शोध के कारणों समस्याओं के समाधान एवं परिणाम के बारे में हम जो एक निश्चित रूपरेखा बना लेते हैं उसे उपकल्पना कहते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में परीक्षण के लिए निम्न उपकल्पनाओं का पालन किया गया है –

1. भारतीय कृषि महिला मजदूरों का कृषि में महत्वपूर्ण योगदान होता है।
2. महिला कृषि मजदूरों पर उनके कार्य का प्रभाव उनके परिवारिक जीवन पर भी पड़ता है।
3. कार्यशील महिला मजदूर अधिक स्वस्थ्य और खुशहाल होती है।
4. भारतीय कृषि महिला मजदूरों में शिक्षा का स्तर अति निम्न होता है।
5. कृषि के आधुनिकीकरण का कृषि महिला मजदूरों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।
6. भारतीय कृषि महिला मजदूर कृषि कार्य में अधिकतर पुरूषों के सहभागिनी होती है।

अध्ययन का क्षेत्र एवं शोध प्रारूप –

विन्ध्य का गौरव रीवा उत्तरी पूर्व मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित है रीवा नगर का कुल क्षेत्रफल 11187.70 हेक्टेयर

पर फैला हुआ है तथा इसकी नगर पालिका की सीमा 7186.20 हेक्टेयर पर फैली है। नगर पालिका की दृष्टि से 45 वार्ड बने हुए है रीवा की औद्योगिक नगरी के रूप में विश्वमान चित्र पर पहचान मिल चुकी है। 229307 आबादी वाले इस नगर में सात बड़ी औद्योगिक इकाइयों समेत कई छोटे मोटे लघु उद्योग इकाइयाँ स्थापित हैं। जिले का कुछ क्षेत्रफल 7495 वर्ग कि.मी. है, जो कि मध्यप्रदेश के मूल भौगोलिक क्षेत्रफल का 1.8 प्रतिशत है। जनसंख्या की दृष्टि से रीवा जिला मध्यप्रदेश में औसत से आगे है। 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 2,228,935 है, जिसमें पुरूषों की संख्या 1,157,495 तथा महिलाओं की संख्या 1,071,440 है। रीवा जिले में जनसंख्या का घनत्व 297 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। जिले की साक्षरता प्रतिशत 72.26 प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित है जिसमें पुरूष का साक्षरता प्रतिशत 81.37 एवं महिलाओ का साक्षरता प्रतिशत 62.45 है।

तथ्यों का सारणीयन विश्लेषण एवं व्याख्या –

शोधार्थी द्वारा किया गया कोई भी शोध कार्य सही अर्थो में तभी प्रभावी होते है, जब शोधार्थी द्वारा उस समस्या की वास्तविक स्थिति का मूल्यांकन किया जाये। इसके लिये यह आवश्यक है कि शेाधार्थी द्वारा शेाध अध्ययन में उपयोग किये गये समस्त शेाध उपकरण द्वारा प्राप्त जानकारियों को व्यवस्थित क्रम में सारणीबद्ध किया जाये। शोध द्वारा तथ्यों को प्राप्त करने के बाद संकलित तथ्यों को सारणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है और सांख्यिकी विश्लेषण किया गया है–

तालिका क्रमांक–1

महिला कृषि मजदूरों के कार्य

क्र.	महिला मजदूर के कार्य	संख्या	प्रतिशत
1.	कृषि कार्य	30	60
2.	संनिर्माण/मजदूरी	20	40
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 60 प्रतिशत महिलायें कृषि के कार्य में व 40 प्रतिशत महिलायें संनिर्माण/मजदूरी के कार्य में कार्यरत हैं। ज्यादातर महिलाएँ भवन निर्माण में इसलिये संलग्न रहती है, क्योंकि अन्य क्षेत्रों की तुलना में मजदूरी ज्यादा मिलती है।

तालिका क्रमांक–2

परिवार का स्वरूप

क्र.	परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1.	संयुक्त	20	40
2.	एकल	30	60
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल 40 प्रतिशत परिवार संयुक्त परिवार है, शेष 60 प्रतिशत महिला कृषि मजदूरों के परिवार एकाकी है। ग्रामीण क्षेत्र में शहरों में आकर कार्य करती हैं जिसके कारण एकाकी परिवार ज्यादा पाये गये।

तालिका क्रमांक–3

परिवार में महिला कृषि मजदूरों का स्थान

क्र.	परिवार में स्थान	संख्या	प्रतिशत
1.	उच्च स्थान	15	30
2.	मध्यम	10	20
3.	निम्न	25	50
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 30 प्रतिशत महिला कृषि मजदूरों का परिवार में उच्च स्थान है। 20 प्रतिशत महिला कृषि मजदूरों का मध्यम तथा 50 प्रतिशत महिला कृषि मजदूरों का स्थान परिवार में निम्न है।

तालिका क्रमांक–4

महिला कृषि मजदूरों की वैवाहिक स्थिति

क्र.	वैवाहिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	विवाहित	20	40
2.	अविवाहित	15	30
3.	विधवा	10	20
4.	परित्यक्ता	05	10
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 40 प्रतिशत महिला कृषि मजदूर विवाहित है तथा 30 प्रतिशत अविवाहित है और विधवा महिला कृषि मजदूरों का प्रतिशत 20 है तथा परित्यक्ता महिला कृषि मजदूरों का प्रतिशत 10 है। अतः स्पष्ट है कि महिला कृषि मजदूरों में विवाहित महिला कृषि मजदूरों का प्रतिशत अधिक है।

तालिका क्रमांक–5

परिवार की आर्थिक स्थिति

क्र.	आर्थिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	अच्छी	15	30
2.	खराब	25	50
3.	सामान्य	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि परिवारों की आर्थिक स्थिति में 30 प्रतिशत अच्छी, 50 प्रतिशत खराब तथा 20 प्रतिशत सामान्य आर्थिक स्थिति में अपना जीवन यापन कर रहे हैं अतः स्पष्ट है कि 50 प्रतिशत महिलायें

आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण श्रमिक बन गये।

तालिका क्रमांक–6

महिलाओं का समाज में पुरूषों के बराबरी के अधिकार के पक्ष में विचार

क्र.	विचार	संख्या	प्रतिशत
1.	सहमत	25	50
2.	असहमत	15	30
3.	कोई वक्तव्य नहीं	10	20
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि महिला कृषि मजदूर पुरुषों के बराबरी में अपने आपको खड़ा करना चाहती है, अध्ययन में 50 प्रतिशत महिलाओं ने अपनी सहमति जताई शेष 50 प्रतिशत में 30 प्रतिशत असहमति जताई और शेष 20 प्रतिशत महिलाओं ने कोई मत व्यक्त नहीं किया है।

तालिका क्रमांक–7

महिला कृषि मजदूरों में शैक्षणिक स्थिति

क्र.	शैक्षणिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	शिक्षित	05	10
2.	अशिक्षित	45	90
	योग–	50	100

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि केवल 10 प्रतिशत महिला कृषि मजदूर ही शिक्षित हैं और 90 प्रतिशत महिला कृषि मजदूर अशिक्षित पाई गई इससे स्पष्ट है कि महिला कृषि मजदूरों में शिक्षा की स्तर निम्न है।

तालिका क्र. 08

कार्य के आधार पर उत्तरदाताओं का विवरण

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	खेतो में/कृषि कार्य	45	45
2.	सड़क तथा मकान बनाने में	40	40
3.	खाना बनाने में	5	5
4.	बर्तन तथा अन्य साफ सफाई में	10	10
	कुल योग	100	100

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि कामकाजी महिलायें भिन्न–भिन्न कार्य करके अपनी जीविका अर्जन करती हैं तथा परिवार में आय की वृद्धि करती है। जिसमें से 45 प्रतिशत महिलायें खेतों में काम करना पसंद करती है। और 40 प्रतिशत महिलायें भवन निर्माण या सड़क के कार्य करती है। तथा 5 प्रतिशत महिलायें दूसरो के घर पे खाना बनाती है। और 10 प्रतिशत महिलाये श्रमिक बर्तन तथा अन्य साफ–सफाई का कार्य करके अपने परिवार का गुजारा करती है।

निष्कर्ष :-

औद्योगिक विकास के साथ–साथ यह बात देखी गई कि पूंजीपति इस बात के लिये बहुत उत्सुक थे कि शीघ्र ही अधिक लाभ हो, जिससे उन्होंने स्त्री, पुरुष तथा असहाय बच्चों तक को काम में लगा दिया।

रीवा जिले के अध्ययन क्षेत्र की महिला कृषि मजदूरों का अध्ययन करने से यह पाया गया कि कई महिलायें कृषि एवं भवन निर्माण/सड़क निर्माण, घरेलू कामकाजी, बीड़ी बनाने, सब्जी/फल बेचने आदि के कार्य में लगी हैं और अधिक संख्या में एकल परिवार से हैं और 10 प्रतिशत महिला शिक्षित पाई गई और परिवारिक अध्ययन से पता चला कि परिवारिक और आर्थिक स्थिति निम्न है। इन्हें परिवार में बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है। इन महिलाओं का 18 वर्ष से कम आयु में ही विवाह हो जाता है, जिससे इनके बच्चे भी अधिक रहते हैं। जीवन के लिये भोजन के साथ–साथ वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि की भी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु इन महिला कृषि मजदूरों की मासिक आय इतनी नहीं रहती कि जिससे कि ये अपना तथा अपने बच्चों का गुजारा अच्छे से कर पायें और उन्हें पुरुषों से कम मजदूरी भी दिया जाता है।

सुझाव :-

अध्ययन क्षेत्र में कार्यरत महिला कृषि मजदूरों की स्थिति काफी खराब है। अतः यह देखते हुये सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिये तथा उनके शारीरिक, आर्थिक व समाजिक शोषण को रोकने के लिये काननू को सक्त होना चाहिये और महिलाओ को शिक्षित करने के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये तथा पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता प्रदान की जानी चाहिये तथा उन्हे उचित प्रशिक्षण तथा दिशा निर्देश दी जानी चाहिए। महिलाओं का शोषण करने वाले को दण्डित किया जाना चाहिय, ताकि उन्हें सबके मिल सके। महिलाओं को रोजगार हेतु विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक प्रशिक्षण प्रदान किये जाने चाहिये, ताकि वे स्वावलम्बी बन सके तथा सबसे महत्वपूर्ण बात ये होनी चाहिये कि महिला कृषि मजदूरों को भी पुरुषों के बराबर वेतन दिया जाना चाहिए अर्थात् समान कार्य का समान वेतन मिलना चाहिये।

संदर्भ :-

1. सक्सेना, एस.सी. (1992), 'श्रम समसयें एवं सामाजिक सुरक्षा', रस्तोगी पब्लिकेशन शिवाजी रोड, मेरठ।
2. शर्मा, डॉ. एम.के. (2010), 'भारतीय समाज में नारी', पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।
3. आहुजा राम (2000), 'सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली।
4. गिरि, व्ही.व्ही. (1957) भारतीय मजदूरों की समस्याएँ एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बई।
5. सक्सेना, डॉ. आर.सी. (1982) श्रम समस्याएं एवं सामाजिक सुरक्षा, रस्तोगी पब्लिकेशन शिवाजी रोड मेरठ।
6. अग्रवाल, गोपाल कृष्ण (1993) भारतीय समाजिक संस्थायें, आगरा बुक स्टोर, आगरा।
7. बावेल, बसन्ती लाल (1989) भारत की संवैधानिक विधि, सेन्ट्रल ला एजेन्सी, मोतीलाल नेहरू रोड इलाहाबाद।
8. शर्मा डॉ. ब्रह्मदेव (1986) शिक्षा समाज और व्यवस्था, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
9. श्रीवास्तव डॉ. राजमणिलाल (1969) मजदूरी तथा सामाजिक सुरक्षा, प्रसाद प्रकाशन मंदिर कानपुर।
10. लवानिया, एम.एम. (1989) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर,।
11. गुप्ता मोतीलाल (1973) भारतीय सामाजिक संस्थायें, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए–26/2 विद्यालय मार्ग तिलक नगर जयपुर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 142-153

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

उच्चतर माध्यमिक छात्राओं की मोटर फिटनेस पर योग एवं पारंपरिक व्यायाम का तुलनात्मक अध्ययन

प्रो. रामभूषण मिश्रा, संचालक एवं विभागाध्यक्ष,
स्वाती सिंह, शोधार्थी,
शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

सारांश :

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य उच्चतर माध्यमिक स्तर की छात्राओं की मोटर फिटनेस पर योग एवं पारंपरिक व्यायाम के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन करना है। मोटर फिटनेस व्यक्ति की उन शारीरिक क्षमताओं का समूह है, जो शारीरिक गतिविधियों, खेलकूद तथा दैनिक कार्यों के कुशल निष्पादन में सहायक होती हैं। इसमें लचीलापन, मांसपेशीय शक्ति, मांसपेशीय सहनशक्ति, संतुलन तथा हृदय-श्वसन सहनशक्ति जैसी क्षमताएँ सम्मिलित हैं।

प्रस्तावित अध्ययन में 100 उच्चतर माध्यमिक छात्राओं को सम्मिलित किया गया है। तुलनात्मक विश्लेषण के लिए 50 छात्राओं का एक समूह योगाभ्यास तथा 50 छात्राओं का दूसरा समूह पारंपरिक व्यायाम करेगा। अध्ययन की प्रस्तावित अवधि 12 सप्ताह होगी। दोनों समूहों की मोटर फिटनेस का मापन कार्यक्रम शुरू होने से पहले तथा कार्यक्रम समाप्त होने के बाद किया गया है।

अध्ययन में लचीलेपन के लिए सिट-एंड-रीच परीक्षण, मांसपेशीय सहनशक्ति के लिए उपयुक्त सिट-अप या संशोधित पुश-अप परीक्षण, संतुलन के लिए स्टैंडिंग बैलेंस परीक्षण तथा हृदय-श्वसन सहनशक्ति के लिए 20 मीटर शटल रन परीक्षण का उपयोग प्रस्तावित है। प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण माध्य, मानक विचलन, प्रतिशत परिवर्तन तथा उपयुक्त सांख्यिकीय परीक्षणों द्वारा किया गया है।

इस शोध से यह समझने में सहायता मिल सकती है कि योग और पारंपरिक व्यायाम में से कौन-सा कार्यक्रम मोटर फिटनेस के विभिन्न घटकों में अपेक्षाकृत अधिक सुधार से संबंधित है। वास्तविक निष्कर्ष परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित होंगे।

मुख्य शब्द: योग, पारंपरिक व्यायाम, मोटर फिटनेस, उच्चतर माध्यमिक छात्राएँ, शारीरिक शिक्षा, लचीलापन, संतुलन, सहनशक्ति।

प्रस्तावना :

शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य केवल खेलों गें दक्षता प्राप्त करना नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं क्रियात्मक विकास को प्रोत्साहित करना भी है। किशोरावस्था में शरीर की वृद्धि, मांसपेशियों के विकास, शारीरिक क्षमता तथा सक्रिय जीवनशैली की आदतों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में नियमित एवं व्यवस्थित शारीरिक गतिविधियों की विशेष भूमिका होती है।

मोटर फिटनेस शारीरिक गतिविधियों को प्रभावी ढंग से संपन्न करने की क्षमता से संबंधित है। इसमें शरीर का संतुलन बनाए रखना, अंगों के बीच समन्वय स्थापित करना, मांसपेशियों का उपयोग करना, पर्याप्त लचीलापन बनाए रखना तथा लंबे समय तक शारीरिक कार्य करना सम्मिलित है। छात्राओं में इन क्षमताओं का विकास विद्यालयी खेलों, शारीरिक शिक्षा तथा दैनिक जीवन की गतिविधियों में उपयोगी हो सकता है।

योग भारतीय परंपरा में विकसित एक व्यवस्थित अभ्यास-पद्धति है। इसमें विभिन्न आसन, नियंत्रित श्वसन तथा विश्राम की विधियाँ सम्मिलित हो सकती हैं। ताड़ासन, वृक्षासन, त्रिकोणासन, भुजंगासन और सूर्य नमस्कार जैसे अभ्यास शरीर की गतिशीलता, संतुलन तथा लचीलेपन के विकास में सहायक हो सकते हैं। इसके विपरीत, पारंपरिक व्यायाम से इस शोध में आशय उन सामान्य शारीरिक अभ्यासों से है, जिनमें दौड़ना, तेज चलना, रस्सीकूद, स्काट, सिट-अप, पुश-अप, गतिशील स्ट्रेचिंग तथा अन्य सामान्य कंडीशनिंग अभ्यास शामिल हैं।

दोनों पद्धतियों की प्रकृति अलग-अलग होने के कारण इनके परिणामों की तुलना करना उपयोगी है। वर्ष 2018 में प्रकाशित एक यादृच्छिक नियंत्रित अध्ययन में 802 स्कूली विद्यार्थियों पर योग और सामान्य शारीरिक व्यायाम की तुलना की गई थी। दोनों समूहों में हृदय-श्वसन फिटनेस में सुधार देखा गया, लेकिन समग्र तुलना में दोनों के बीच स्पष्ट अंतर नहीं मिला।

यह निष्कर्ष बताता है कि किसी एक पद्धति को सभी फिटनेस घटकों के लिए श्रेष्ठ मानने के बजाय प्रत्येक घटक का अलग-अलग अध्ययन करना आवश्यक है।

समस्या का कथन :

प्रस्तुत शोध की समस्या है:

"उच्चतर माध्यमिक छात्राओं की मोटर फिटनेस पर योग एवं पारंपरिक व्यायाम के तुलनात्मक प्रभावों का अध्ययन करना।"

इस समस्या के अंतर्गत यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि योगाभ्यास तथा पारंपरिक व्यायाम करने वाली छात्राओं की लचक, मांसपेशीय सहनशक्ति, संतुलन एवं हृदय-श्वसन सहनशक्ति में कितना परिवर्तन होता है तथा दोनों समूहों के परिवर्तन में कोई सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर है या नहीं।

अध्ययन के उद्देश्य :

- उच्चतर गाध्यगिक छात्राओं की प्रारंगिक गोटर फिटनेस का आकलन करना।
- योगाभ्यास के बाद छात्राओं की मोटर फिटनेस में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन करना।
- पारंपरिक व्यायाम के बाद छात्राओं की मोटर फिटनेस में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन करना।

- योग एवं पारंपरिक व्यायाम के प्रभावों की तुलनात्मक जाँच करना।
- विद्यालयी शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध-परिकल्पनाएँ :

- योग एवं पारंपरिक व्यायाम समूहों में मोटर फिटनेस के पूर्व-परीक्षण और पश्च-परीक्षण के परिवर्तन में कोई सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं है।
- दोनों समूहों की लचक में परिवर्तन के बीच कोई सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं है।
- दोनों समूहों की मांसपेशीय सहनशक्ति में परिवर्तन के बीच कोई सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं है।
- दोनों समूहों के संतुलन तथा हृदय-श्वसन सहनशक्ति में परिवर्तन के बीच कोई सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं है।

अध्ययन का महत्त्व : इस अध्ययन का महत्त्व निम्नलिखित बिंदुओं में निहित है:

- विद्यालयों में छात्राओं की शारीरिक फिटनेस बढ़ाने के लिए उपयुक्त अभ्यास-पद्धति चुनने में सहायता मिल सकती है।
- योग एवं पारंपरिक व्यायाम की तुलनात्मक उपयोगिता को अलग-अलग फिटनेस घटकों के संदर्भ में समझा जा सकता है।
- शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों को नियमित व्यायाम कार्यक्रम बनाने के लिए आधार प्राप्त हो सकता है।
- भविष्य के शोधकर्ताओं को बड़े नमूने पर तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए उपयोगी शोध-रूपरेखा मिल सकती है।

संबंधित साहित्य की समीक्षा :

1. Raghuraj एवं Telles (1997): इस अध्ययन में योग का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाली तथा शारीरिक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाली लड़कियों के कुछ शारीरिक एवं मनोगत्यात्मक मापदंडों की तुलना की गई। इसके निष्कर्ष योग और शारीरिक प्रशिक्षण के बीच तुलनात्मक अध्ययन की उपयोगिता को दर्शाते हैं।

2. Vhavle एवं सहयोगी (2018): "Yoga versus physical exercise for cardio-respiratory fitness in adolescent school children" शीर्षक अध्ययन में 802 विद्यार्थियों को योग एवं शारीरिक व्यायाम समूहों में बाँटकर दो महीने तक अध्ययन किया गया। दोनों समूहों में हृदय-श्वसन फिटनेस में सुधार हुआ, जबकि समग्र समूहों की तुलना में स्पष्ट अंतर नहीं पाया गया।

3. Manjre: "Effect of Yogic Practices and Walking Exercises on Health Related Physical Fitness" अध्ययन में महिला विद्यार्थियों की फिटनेस के लिए योगाभ्यास एवं चलने के व्यायाम की तुलना की गई। अध्ययन में 75 महिला विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया था।

4. Donahoe-Fillmore एवं सहयोगी (2010): इस शोध में 14–18 वर्ष की किशोरियों में योग अभ्यास के संदर्भ में संतुलन, लचीलेपन ओर शक्ति का अध्ययन किया गया। यह अध्ययन किशोरियों की शारीरिक फिटनेस के संदर्भ में योग के मूल्यांकन की प्रासंगिकता प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त साहित्य से स्पष्ट होता है कि योग तथा सामान्य शारीरिक व्यायाम का किशोर विद्यार्थियों की फिटनेस के संदर्भ में अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध में 300 उच्चतर माध्यमिक छात्राओं को सम्मिलित करके मोटर फिटनेस के कई घटकों की एक साथ तुलना करने का प्रस्ताव है।

शोध-विधि (Research Methodology) :

शोध की प्रकृति : प्रस्तुत अध्ययन के लिए **अर्ध-प्रयोगात्मक तुलनात्मक शोध अभिकल्प (Quasi-Experimental Comparative Design)** प्रस्तावित है। इसमें दो समूहों को निर्धारित अवधि तक अलग-अलग अभ्यास कार्यक्रम दिए जाएँगे तथा दोनों समूहों की फिटनेस का पूर्व-परीक्षण और पश्च-परीक्षण किया गया है।

जनसंख्या : अध्ययन की जनसंख्या में चयनित क्षेत्र के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्राएँ सम्मिलित होंगी। छात्राओं की आयु, कक्षा तथा विद्यालय का विवरण वास्तविक नमूना चयन के अनुसार दर्ज किया गया है।

नमूना एवं नमूना चयन : प्रस्तावित नमूना आकार 100 छात्राएँ है। तुलना को संतुलित बनाने के लिए निम्नलिखित समूह प्रस्तावित हैं।

क्रमांक	समूह	छात्राओं की संख्या	कुल नमूने का प्रतिशत
1	योगाभ्यास समूह	50	50%
2	पारंपरिक व्यायाम समूह	50	50%
कुल	**दोनों समूह**	**100**	**100%**

नमूना चयन के लिए विद्यालयों का चयन निर्धारित मानदंडों के आधार पर किया जा सकता है। पात्र छात्राओं को दोनों समूहों में यादृच्छिक रूप से बाँटना संभव हो, तो उससे समूहों की तुलनीयता बेहतर होगी।

नमूना चयन के मानदंड :

समावेशन के मानदंड :

- उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययनरत छात्राएँ।
- अभिभावक की लिखित सहमति तथा छात्रा की स्वैच्छिक सहमति।

- निर्धारित फिटनेस परीक्षणों में सुरक्षित रूप से भाग लेने की क्षमता।
- निर्धारित प्रशिक्षण एवं परीक्षण कार्यक्रम में भाग लेने की इच्छा।

बहिष्करण के मानदंड :

- ऐसी चोट या चिकित्सकीय स्थिति जिसमें निर्धारित गतिविधियाँ असुरक्षित हों।
- प्रशिक्षण या परीक्षण में भाग लेने के लिए चिकित्सकीय अनुमति आवश्यक होने पर अनुमति उपलब्ध न होना।
- आवश्यक पूर्व-परीक्षण या पश्च-परीक्षण में अनुपस्थित रहना; ऐसी स्थिति में अनुपस्थितियों तथा विश्लेषण में उनके प्रबंधन का विवरण देना होगा।

प्रशिक्षण कार्यक्रम : दोनों समूहों को समान अवधि और लगभग समान समय वाला प्रशिक्षण दिया गया है, ताकि तुलना उचित हो सके।

विवरण	योगाभ्यास समूह	पारंपरिक व्यायाम समूह
कुल अवधि	12 सप्ताह	12 सप्ताह
आवृत्ति	सप्ताह में 5 दिन	सप्ताह में 5 दिन
प्रति सत्र समय	लगभग 45 मिनट	लगभग 45 मिनट
प्रारंभिक वार्म-अप	5 मिनट	5 मिनट
मुख्य अभ्यास	30 मिनट	30 मिनट
समापन एवं कूल-डाउन	10 मिनट	10 मिनट
पर्यवेक्षण	प्रशिक्षित योग प्रशिक्षक	शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षक

प्रस्तावित योगाभ्यास में ताड़ासन, त्रिकोणासन, वृक्षासन, भुजंगासन, पवनमुक्तासन, उपयुक्त संशोधित सूर्य नमस्कार तथा विश्राम अभ्यास शामिल किए जा सकते हैं। पारंपरिक व्यायाम समूह में हल्की दौड़, गतिशील स्ट्रेचिंग, स्काट, संशोधित पुश-अप, सिट-अप, रस्सीकूद तथा सामान्य कंडीशनिंग अभ्यास शामिल किए जा सकते हैं।

अभ्यासों की तीव्रता छात्राओं की आयु, प्रारंभिक फिटनेस तथा सुरक्षा को ध्यान में रखकर तय की जानी चाहिए। दोनों समूहों में प्रशिक्षण की उपस्थिति, अभ्यास की अवधि तथा कार्यक्रम के पालन का अभिलेख रखा जाना चाहिए।

मोटर फिटनेस के मापन के उपकरण

क्रमांक	फिटनेस का घटक	प्रस्तावित परीक्षण	मापन की इकाई
1	लचीलापन	सिट-एंड-रीच परीक्षण	सेंटीमीटर
2	मांसपेशीय सहनशक्ति	मानकीकृत सिट-अप परीक्षण	निर्धारित समय में पुनरावृत्तियाँ
3	संतुलन	स्टैंडिंग बैलेंस परीक्षण	सेकंड
4	हृदय-श्वसन सहनशक्ति	20 मीटर शटल रन	पूर्ण किए गए स्तर/शटल या प्रोटोकॉल के अनुसार अनुमानित क्षमता

सभी परीक्षणों को समान परिस्थितियों, समान निर्देशों तथा समान उपकरणों के साथ पूर्व-परीक्षण और पश्च-परीक्षण में दोहराना चाहिए। विशेष रूप से सिट-अप परीक्षण की अवधि, संतुलन परीक्षण की विधि तथा शटल रन की गणना पहले से निर्धारित की जानी चाहिए।

आँकड़ों के संकलन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रक्रिया :

प्रत्येक छात्रा का पूर्व-परीक्षण और पश्च-परीक्षण स्कोर अलग-अलग दर्ज किया गया है। इसके बाद प्रत्येक समूह के लिए निम्नलिखित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जा सकता है:

- **अंकगणितीय माध्य (Mean):** समूह के औसत प्रदर्शन को ज्ञात करने के लिए।
- **मानक विचलन (Standard Deviation):** समूह में अंकों के फैलाव को जानने के लिए।
- **प्रतिशत परिवर्तन:** प्रशिक्षण के पहले और बाद में हुए परिवर्तन का वर्णन करने के लिए।
- **युग्मित t-परीक्षण (Paired t-test):** प्रत्येक समूह में पूर्व-परीक्षण और पश्च-परीक्षण की तुलना के लिए।
- **स्वतंत्र t-परीक्षण (Independent t-test):** दोनों समूहों के परिवर्तन-अंकों की तुलना के लिए।
- **प्रभाव आकार (Effect Size):** अंतर के व्यावहारिक परिमाण को समझने के लिए।

महत्त्व स्तर $p<0.05$ निर्धारित किया जा सकता है। यदि आँकड़े सामान्य वितरण की शर्त पूरी नहीं करते हैं, तो उपयुक्त गैर-पैरामीट्रिक विकल्प अपनाए जाने चाहिए। समूहों की प्रारंभिक स्थिति में अंतर होने पर पूर्व-परीक्षण स्कोर को समायोजित करने वाला ANCOVA भी उपयोगी हो सकता है।

प्रतिशत परिवर्तन का सूत्र है:

$$\text{प्रतिशत परिवर्तन} = \frac{\text{पश्च} - \text{परीक्षण माध्य} - \text{पूर्व} - \text{परीक्षण माध्य}}{\text{पूर्व} - \text{परीक्षण माध्य}} \times 100$$

यह सूत्र उन मापों के लिए सीधे उपयोगी है जिनमें अधिक स्कोर बेहतर प्रदर्शन दर्शाता है। यदि किसी परीक्षण में कम समय बेहतर प्रदर्शन दर्शाता है, तो परिवर्तन की दिशा को उसी अनुसार समझना होगा।

आँकड़ों का प्रस्तुतीकरण, सारणियाँ एवं व्याख्या :

सारणी 1. उत्तरदाताओं का समूहवार वितरण

समूह	संख्या	प्रतिशत
योगाभ्यास समूह	50	50%
पारंपरिक व्यायाम समूह	50	50%
कुल	100	100%

व्याख्या: प्रस्तावित अध्ययन में 100 छात्राओं को दो समान समूहों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक समूह में 50 छात्राएँ होंगी। इस प्रकार नमूने का 50 प्रतिशत योगाभ्यास समूह तथा 50 प्रतिशत पारंपरिक व्यायाम समूह में शामिल होगा। समान समूह आकार तुलनात्मक विश्लेषण को व्यवस्थित बनाता है, लेकिन केवल समान संख्या होने से दोनों समूहों की प्रारंभिक फिटनेस या अन्य विशेषताएँ समान सिद्ध नहीं होतीं।

सारणी 2. मोटर फिटनेस के पूर्व-परीक्षण का उदाहरणात्मक विवरण

मोटर फिटनेस घटक	योग समूह (N=150), माध्य ± SD	पारंपरिक व्यायाम समूह (N=150), माध्य ± SD
लचीलापन (सेमी)	18.2 ± 4.5	18.0 ± 4.7
सिट-अप (पुनरावृत्तियाँ)	20.1 ± 4.2	20.4 ± 4.4
संतुलन (सेकंड)	24.5 ± 6.0	24.2 ± 6.2
शटल रन (स्तर/शटल स्कोर)	36.0 ± 8.0	36.3 ± 8.2

व्याख्या: उदाहरणात्मक सारणी में दोनों समूहों के पूर्व-परीक्षण माध्य लगभग समान रखे गए हैं, ताकि यह समझाया जा सके कि प्रारंभिक समूह तुलना कैसे प्रस्तुत की जाती है। वास्तविक अध्ययन में

माध्य के साथ मानक विचलन देना आवश्यक होगा। प्रारंभिक समानता की पुष्टि केवल माध्य देखकर नहीं की जानी चाहिए; आवश्यकतानुसार सांख्यिकीय परीक्षण भी करना होगा।

सारणी 3. योगाभ्यास समूह के पूर्व-परीक्षण एवं पश्च-परीक्षण का उदाहरणात्मक तुलनात्मक विवरण

फिटनेस घटक	पूर्व-परीक्षण माध्य	पश्च-परीक्षण माध्य	औसत परिवर्तन	प्रतिशत परिवर्तन
लचीलापन (सेमी)	18.2	22.0	+3.8	+20.88%
सिट-अप (पुनरावृत्तियाँ)	20.1	23.0	+2.9	+14.43%
संतुलन (सेकंड)	24.5	28.0	+3.5	+14.29%
शटल रन (स्कोर)	36.0	39.0	+3.0	+8.33%

व्याख्या: उदाहरणात्मक आँकड़ों के अनुसार योगाभ्यास समूह में चारों मापदंडों के औसत स्कोर में वृद्धि दर्शाई गई है। लचीलेपन में 20.88 प्रतिशत, सिट-अप में 14.43 प्रतिशत, संतुलन में 14.29 प्रतिशत तथा शटल रन स्कोर में 8.33 प्रतिशत परिवर्तन दिखाया गया है।

ये मान केवल सारणी निर्माण की विधि प्रदर्शित करते हैं। वास्तविक आँकड़ों के बिना यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि योगाभ्यास से वास्तव में इतना सुधार हुआ या ये परिवर्तन सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

सारणी 4. पारंपरिक व्यायाम समूह के पूर्व-परीक्षण एवं पश्च-परीक्षण का उदाहरणात्मक तुलनात्मक विवरण

फिटनेस घटक	पूर्व-परीक्षण माध्य	पश्च-परीक्षण माध्य	औसत परिवर्तन	प्रतिशत परिवर्तन
लचीलापन (सेमी)	18.0	20.0	+2.0	+11.11%
सिट-अप (पुनरावृत्तियाँ)	20.4	24.0	+3.6	+17.65%
संतुलन (सेकंड)	24.2	26.0	+1.8	+7.44%
शटल रन (स्कोर)	36.3	40.0	+3.7	+10.19%

व्याख्या: उदाहरणात्मक सारणी में पारंपरिक व्यायाम समूह के लचीलेपन, मांसपेशीय सहनशक्ति, संतुलन और शटल रन स्कोर में वृद्धि दर्शाई गई है। इस उदाहरण में सिट-अप स्कोर और शटल रन स्कोर का प्रतिशत परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक है, जबकि लचीलेपन का परिवर्तन अपेक्षाकृत कम है। इन परिणामों को वास्तविक निष्कर्ष नहीं माना जा सकता। वास्तविक अध्ययन में परिवर्तन प्रशिक्षण की तीव्रता, उपस्थिति, प्रारंभिक फिटनेस, आयु तथा अन्य परिस्थितियों पर निर्भर कर सकता है।

सारणी 5. दोनों समूहों के प्रतिशत परिवर्तन की उदाहरणात्मक तुलना

फिटनेस घटक	योग समूह	पारंपरिक व्यायाम समूह	उदाहरण में अधिक परिवर्तन
लचीलापन	20.88%	11.11%	योग समूह
सिट-अप प्रदर्शन	14.43%	17.65%	पारंपरिक व्यायाम समूह
संतुलन	14.29%	7.44%	योग समूह
शटल रन स्कोर	8.33%	10.19%	पारंपरिक व्यायाम समूह

व्याख्या: उदाहरणात्मक तुलना में योग समूह में लचीलेपन तथा संतुलन का प्रतिशत परिवर्तन अधिक दिखाया गया है, जबकि पारंपरिक व्यायाम समूह में सिट-अप प्रदर्शन और शटल रन स्कोर का परिवर्तन अधिक दिखाया गया है। इससे शोध-पत्र में यह समझाया जा सकता है कि विभिन्न अभ्यास-पद्धतियों का तुलनात्मक मूल्यांकन प्रत्येक फिटनेस घटक के आधार पर किया जाना चाहिए। फिर भी केवल प्रतिशत परिवर्तन के आधार पर किसी समूह को श्रेष्ठ घोषित करना उचित नहीं होगा। समूहों के परिवर्तन-अंकों, मानक विचलन, विश्वास अंतराल तथा सांख्यिकीय परीक्षणों को भी देखना आवश्यक है।

सारणी 6. दोनों समूहों के परिवर्तन-अंकों की सांख्यिकीय तुलना का प्रारूप

मोटर फिटनेस घटक	योग समूह का औसत परिवर्तन	पारंपरिक व्यायाम समूह का औसत परिवर्तन	t-मूल्य	p-मूल्य	निर्णय
लचीलापन	वास्तविक आँकड़े	वास्तविक आँकड़े	गणना अपेक्षित	गणना अपेक्षित	निर्धारित होना है
मांसपेशीय सहनशक्ति	वास्तविक आँकड़े	वास्तविक आँकड़े	गणना अपेक्षित	गणना अपेक्षित	निर्धारित होना है
संतुलन	वास्तविक आँकड़े	वास्तविक आँकड़े	गणना अपेक्षित	गणना अपेक्षित	निर्धारित होना है

हृदय-श्वसन सहनशक्ति	वास्तविक आँकड़े	वास्तविक आँकड़े	गणना अपेक्षित	गणना अपेक्षित	निर्धारित होना है

व्याख्या: इस सारणी का उद्देश्य यह जाँचना है कि दोनों समूहों के सुधार में सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर है या नहीं। प्रत्येक छात्रा के पूर्व-परीक्षण और पश्च-परीक्षण के अंतर से परिवर्तन-अंक निकाला गया है। फिर दोनों समूहों के परिवर्तन-अंकों की स्वतंत्र t-परीक्षण द्वारा तुलना की जा सकती है। यदि $p<0.05$ प्राप्त होता है, तो संबंधित घटक में दोनों समूहों के परिवर्तन का अंतर निर्धारित महत्त्व स्तर पर सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण माना गया है। यदि $p\geq0.05$ प्राप्त होता है, तो शून्य परिकल्पना को अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त सांख्यिकीय साक्ष्य नहीं होंगे। यह परिणाम अपने आप में दोनों विधियों की पूर्ण समानता सिद्ध नहीं करता।

परिणामों की चर्चा : प्रस्तावित अध्ययन में योग एवं पारंपरिक व्यायाम को चार प्रमुख मोटर फिटनेस घटकों के संदर्भ में परखा गया है।

लचीलेपन के संदर्भ में: योगाभ्यास में शरीर की विभिन्न स्थितियों को नियंत्रित ढंग से बनाए रखने तथा गति-सीमा पर काम करने वाले आसन सम्मिलित किए जा सकते हैं। इसलिए लचीलेपन में होने वाले परिवर्तन का अलग से मूल्यांकन उपयोगी होगा।

मांसपेशीय सहनशक्ति के संदर्भ में: पारंपरिक व्यायाम में सिट-अप, संशोधित पुश-अप, स्क्वाट तथा अन्य दोहराव वाले अभ्यास सम्मिलित किए जा सकते हैं। योग में भी कुछ आसन मांसपेशियों को सक्रिय रखते हैं। वास्तविक तुलना के लिए अभ्यासों की तीव्रता एवं अवधि का ध्यान रखना आवश्यक है।

संतुलन के संदर्भ में: वृक्षासन जैसे योगासन तथा एक पैर पर खड़े होने वाले मानकीकृत संतुलन परीक्षण उपयोगी हो सकते हैं। प्रशिक्षण के पहले और बाद में एक ही परीक्षण पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

हृदय-श्वसन सहनशक्ति के संदर्भ में: दौड़ने, तेज गति से चलने तथा शटल रन जैसे अभ्यासों से इस क्षमता का मूल्यांकन किया जा सकता है। योग कार्यक्रम में प्रयुक्त आसनों और श्वसन अभ्यासों की प्रकृति सामान्य एरोबिक व्यायाम से भिन्न होती है, इसलिए दोनों समूहों के परिणामों की निष्पक्ष तुलना आवश्यक है। इन घटकों की चर्चा में केवल माध्य में वृद्धि पर्याप्त नहीं है। परिणामों को पूर्ववर्ती साहित्य, समूहों की प्रारंभिक समानता, प्रशिक्षण के पालन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण के संदर्भ में समझना चाहिए।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध की रूपरेखा उच्चतर माध्यमिक छात्राओं की मोटर फिटनेस पर योग एवं पारंपरिक व्यायाम के तुलनात्मक अध्ययन के लिए तैयार की गई है। प्रस्तावित 100 छात्राओं को दो रामान रामूहों में बाँटकर 12 सप्ताह तक प्रशिक्षण देना तथा प्रशिक्षण से पहले और बाद गें उनकी फिटनेस का आकलन करना अध्ययन की मुख्य प्रक्रिया होगी।

शैक्षिक सुझाव :

- विद्यालयों में छात्राओं के लिए नियमित एवं व्यवस्थित शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।

- योग और पारंपरिक व्यायाम का चयन छात्राओं की आयु, फिटनेस स्तर, रुचि तथा उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर किया जाना चाहिए।
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों में लचीलापन, संतुलन, मांसपेशीय सहनशक्ति और हृदय-श्वसन सहनशक्ति सभी को पर्याप्त स्थान दिया जाना चाहिए।
- शारीरिक शिक्षा शिक्षकों को पूर्व-परीक्षण एवं पश्च-परीक्षण के मानकीकृत अभिलेख रखने चाहिए।
- प्रशिक्षण की अवधि, उपस्थिति, तीव्रता तथा परीक्षण की परिस्थितियों को दर्ज करना चाहिए, ताकि परिणामों की विश्वसनीयता बढ़ाई जा सके।
- किशोरियों के साथ शोध करते समय अभिभावक की सहमति, छात्राओं की स्वैच्छिक भागीदारी, गोपनीयता तथा शारीरिक सुरक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए।

अध्ययन की सीमाएँ :

- अध्ययन का निष्कर्ष चयनित क्षेत्र और नमूने की विशेषताओं से प्रभावित हो सकता है।
- छात्राओं की आयु, पोषण, नींद, दैनिक शारीरिक गतिविधि और प्रारंभिक फिटनेस परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं।
- प्रशिक्षण में नियमित उपस्थिति तथा अभ्यासों का सही निष्पादन दोनों समूहों के परिणामों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।
- केवल चार फिटनेस परीक्षणों के आधार पर मोटर फिटनेस के सभी पहलुओं का पूर्ण मूल्यांकन संभव नहीं है।
- यदि समूहों का यादृच्छिक आवंटन नहीं किया जाता है, तो समूहों के बीच प्रारंभिक अंतर परिणामों की व्याख्या को प्रभावित कर सकते हैं।

संदर्भ सूची (References) :

1. Raghuraj, P., & Telles, S. (1997). *Muscle power, dexterity skill and visual perception in community home girls trained in yoga or sports and in regular school girls.* Indian Journal of Physiology and Pharmacology, 41(4), 409–415.
2. Vhavle, S., Rao, R. M., Manjunath, N. K., et al. (2018). *Yoga versus physical exercise for cardio-respiratory fitness in adolescent school children: A randomized controlled trial.* International Journal of Adolescent Medicine and Health.
3. Donahoe-Fillmore, B., Brahler, C. J., Fisher, M. I., & Beasley, K. (2010). *The Effect of Yoga Postures on Balance, Flexibility, and Strength in Healthy High School Females.* Journal of Women's Health Physical Therapy.
4. Manjre, U. *Effect of Yogic Practices and Walking Exercises on Health Related Physical Fitness – A Comparative Study on Female Students.* International Journal of Physical Education, Fitness and Sports.

5. Vhavle, S. P., Rao, R. M., & Manjunath, N. K. (2019). *Comparison of Yoga versus Physical Exercise on Executive Function, Attention, and Working Memory in Adolescent Schoolchildren: A Randomized Controlled Trial.* International Journal of Yoga, 12(2), 172–173.
6. Vhavle, S. P., et al. (2018). *Yoga versus physical exercise for cardio-respiratory fitness in adolescent school children: A randomized controlled trial.* International Journal of Adolescent Medicine and Health.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 154-166

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के गरीबी उन्मूलन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के योगदान का समीक्षात्मक अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. एन.के. पाटीदार

प्राध्यापक (वाणिज्य), शासकीय एम.जी कालेज जावद, जिला नीमच (म.प्र.)

मनोज साकेत

शोधार्थी (वाणिज्य), सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

सारांश :

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य रीवा जिले में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों की गरीबी कम करने में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System—PDS) की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन करना है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली भारत सरकार की खाद्य सुरक्षा व्यवस्था का एक प्रमुख माध्यम है, जिसके द्वारा पात्र परिवारों को उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से रियायती दरों पर अथवा निर्धारित योजनाओं के अंतर्गत निःशुल्क खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है। यह व्यवस्था विशेष रूप से आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों, भूमिहीन श्रमिकों, कृषि मजदूरों तथा नियमित आय से वंचित परिवारों के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इस अध्ययन में खाद्य सुरक्षा, पारिवारिक व्यय में बचत, पोषण, रोजगार एवं आय की अनिश्चितता, राशन वितरण की नियमितता, उचित मूल्य की दुकानों की कार्यप्रणाली तथा लाभार्थियों की संतुष्टि जैसे पहलुओं का विश्लेषण प्रस्तावित है। अध्ययन के लिए 100 उत्तरदाताओं का नमूना निर्धारित किया गया है, जिसमें अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति दोनों समुदायों को शामिल किया जाएगा।

महत्त्वपूर्ण शोध-पद्धति संबंधी टिप्पणी: वास्तविक 100 उत्तरदाताओं से प्राप्त प्रश्नावली या सर्वेक्षण आँकड़े उपलब्ध नहीं कराए गए हैं। इसलिए नीचे दी गई सारणियों को शोधपत्र का प्रारूप तैयार करने के लिए काल्पनिक उदाहरणात्मक आँकड़ों पर आधारित रखा गया है। इन्हें वास्तविक सर्वेक्षण के निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। वास्तविक सर्वेक्षण के आँकड़े मिलने पर इन्हें संशोधित किया जा सकता है।

प्रस्तावना :

भारत में गरीबी केवल कम आय की समस्या नहीं है, बल्कि इसका संबंध खाद्य सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, रोजगार, सामाजिक अवसरों और जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की उपलब्धता से भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी का प्रभाव उन परिवारों पर अधिक पड़ता है जिनकी आजीविका कृषि

मजदूरी, मौसमी रोजगार, छोटे-मोटे व्यवसाय या अनियमित श्रम पर निर्भर होती है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के कुछ परिवार सामाजिक और आर्थिक वंचनाओं के कारण इन समस्याओं का अधिक सामना कर सकते हैं। हालांकि, इन दोनों समुदायों के सभी परिवारों की आर्थिक स्थिति समान नहीं होती।

गरीबी उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ संचालित की जाती हैं। इनमें सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विशेष स्थान है, क्योंकि यह परिवारों की खाद्यान्न संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में प्रत्यक्ष भूमिका निभाती है। राशन के माध्यम से खाद्यान्न की उपलब्धता होने पर परिवारों को बाजार से अनाज खरीदने पर अपेक्षाकृत कम धन खर्च करना पड़ सकता है। इससे बची हुई राशि का उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, कपड़े, परिवहन और अन्य घरेलू आवश्यकताओं के लिए किया जा सकता है।

रीवा जिला, मध्य प्रदेश का एक महत्त्वपूर्ण जिला है, जहाँ ग्रामीण एवं शहरी दोनों प्रकार की आबादी निवास करती है। जिले में कृषि, कृषि मजदूरी, स्वरोजगार, छोटे व्यवसाय और अन्य श्रम-आधारित गतिविधियाँ अनेक परिवारों की आजीविका के स्रोत हैं। ऐसी परिस्थितियों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का अध्ययन यह समझने में सहायता कर सकता है कि खाद्यान्न सहायता अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों की आर्थिक कठिनाइयों को किस सीमा तक कम करती है।

फिर भी, केवल राशन कार्ड होना या खाद्यान्न प्राप्त करना गरीबी से पूर्ण मुक्ति का प्रमाण नहीं है। लाभार्थियों को समय पर राशन मिलना, निर्धारित मात्रा की उपलब्धता, दुकान तक पहुँच, पात्रता संबंधी समस्याओं का समाधान, शिकायत निवारण और खाद्यान्न की गुणवत्ता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसी कारण प्रस्तुत अध्ययन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के योगदान के साथ-साथ उसकी सीमाओं का भी समीक्षात्मक परीक्षण किया जाना प्रस्तावित है।

अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली का स्वरूप :

सार्वजनिक वितरण प्रणाली भारत में खाद्यान्न की उपलब्धता सुनिश्चित करने वाली एक प्रमुख सरकारी व्यवस्था है। इसका उद्देश्य पात्र परिवारों को निर्धारित मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराना तथा खाद्य असुरक्षा की स्थिति को कम करना है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 ने लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को वैधानिक आधार प्रदान किया है। अधिनियम के अंतर्गत पात्र प्राथमिकता परिवारों को प्रति व्यक्ति प्रति माह 5 किलोग्राम खाद्यान्न तथा अंत्योदय अन्न योजना के परिवारों को प्रति परिवार प्रति माह 35 किलोग्राम खाद्यान्न का प्रावधान है। वास्तविक पात्रता, वितरण तथा लागू व्यवस्था के विवरण की पुष्टि संबंधित सरकारी अभिलेखों से की जानी चाहिए।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्यप्रणाली में केंद्र तथा राज्य सरकारों की अलग-अलग जिम्मेदारियाँ होती हैं। केंद्र सरकार मुख्य रूप से खाद्यान्न की खरीद, भंडारण, आवंटन और निर्धारित स्थानों तक परिवहन की जिम्मेदारी निभाती है, जबकि राज्य सरकारें पात्र लाभार्थियों की पहचान, राशन कार्ड, उचित मूल्य की दुकानों के संचालन और निगरानी का कार्य करती हैं।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों के संदर्भ में इस व्यवस्था का महत्त्व निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट होता है।

1. खाद्य सुरक्षा: परिवारों को नियमित रूप से खाद्यान्न उपलब्ध कराने में सहायता।
2. घरेलू व्यय में कमी: बाजार से अनाज खरीदने पर होने वाले खर्च में संभावित बचत।
3. आर्थिक जोखिम में राहत: बेरोजगारी, मौसमी रोजगार तथा कृषि आय में उतार-चढ़ाव के समय खाद्यान्न की उपलब्धता।

4. सामाजिक सुरक्षा: आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता।
5. महिला सशक्तीकरण: खाद्यान्न की उपलब्धता के माध्यम से परिवार के भोजन प्रबंधन में सहायता, विशेषकर उन परिवारों में जहाँ महिलाएँ सीमित आय का प्रबंधन करती हैं।

हालाँकि, सार्वजनिक वितरण प्रणाली को गरीबी उन्मूलन का एकमात्र साधन नहीं माना जा सकता। यह खाद्य सुरक्षा तथा व्यय में राहत प्रदान करती है, जबकि स्थायी गरीबी उन्मूलन के लिए रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास और आय बढ़ाने के अवसर भी आवश्यक हैं।

समस्या का कथन :

रीवा जिले में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों की आर्थिक स्थिति, रोजगार के अवसर, खाद्यान्न की आवश्यकता और सरकारी योजनाओं तक पहुँच में विविधता हो सकती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली इन परिवारों को खाद्यान्न उपलब्ध कराती है, लेकिन इसके वास्तविक योगदान का आकलन केवल राशन वितरण की मात्रा से नहीं किया जा सकता।

यह जानना आवश्यक है कि लाभार्थियों को समय पर राशन मिलता है या नहीं, उन्हें निर्धारित मात्रा प्राप्त होती है या नहीं, राशन से घरेलू खर्च में कितनी राहत मिलती है तथा इस सहायता का परिवार की खाद्य सुरक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है। साथ ही, राशन कार्ड संबंधी समस्याएँ, वितरण केंद्र तक दूरी, जानकारी का अभाव और शिकायत निवारण की कठिनाइयाँ भी अध्ययन के महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं।

अतः प्रस्तुत शोध का केंद्रीय प्रश्न यह है कि रीवा जिले में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों की खाद्य सुरक्षा तथा आर्थिक कठिनाइयों को कम करने में सार्वजनिक वितरण प्रणाली कितनी प्रभावी है और इसकी प्रमुख सीमाएँ क्या हैं?

अध्ययन के उद्देश्य :

1. रीवा जिले में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की उपयोगिता का अध्ययन करना।
2. राशन वितरण की नियमितता, पर्याप्तता और गुणवत्ता का आकलन करना।
3. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से घरेलू खाद्यान्न व्यय में होने वाली संभावित बचत का अध्ययन करना।
4. परिवारों की खाद्य सुरक्षा तथा भोजन की उपलब्धता पर योजना के योगदान का विश्लेषण करना।
5. दोनों समुदायों के लाभार्थियों के अनुभवों की तुलनात्मक समीक्षा करना।
6. राशन वितरण व्यवस्था में आने वाली समस्याओं एवं शिकायत निवारण की स्थिति का अध्ययन करना।
7. सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाने के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध परिकल्पनाएँ :

- सार्वजनिक वितरण प्रणाली से प्राप्त खाद्यान्न और परिवारों की खाद्य सुरक्षा के बीच सकारात्मक संबंध पाया जा सकता है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली से लाभार्थी परिवारों के खाद्यान्न संबंधी घरेलू व्यय में कमी आती है।

- राशन वितरण की नियमितता एवं पर्याप्तता के संबंध में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उत्तरदाताओं के अनुभवों में अंतर हो सकता है।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली खाद्य सुरक्षा में योगदान देती है, लेकिन अकेले इसके आधार पर परिवारों की दीर्घकालीन आर्थिक गरीबी समाप्त नहीं होती।

अध्ययन का महत्त्व :

इस अध्ययन का सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत महत्त्व है। सामाजिक दृष्टि से यह कमजोर वर्गों की खाद्य सुरक्षा और सरकारी सहायता तक पहुँच को समझने में सहायक होगा। आर्थिक दृष्टि से यह स्पष्ट करने में मदद करेगा कि खाद्यान्न सहायता से घरेलू बजट पर पड़ने वाला दबाव किस सीमा तक कम हो सकता है। प्रशासनिक दृष्टि से अध्ययन राशन वितरण की नियमितता, उचित मूल्य की दुकानों की जवाबदेही तथा शिकायत निवारण व्यवस्था में सुधार के क्षेत्रों की पहचान कर सकता है। इस अध्ययन के निष्कर्ष स्थानीय प्रशासन, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग, ग्राम पंचायतों तथा सामाजिक कल्याण से जुड़े संस्थानों के लिए उपयोगी हो सकते हैं। हालांकि, 100 उत्तरदाताओं के सीमित नमूने से प्राप्त निष्कर्षों को पूरे रीवा जिले पर लागू करने से पहले नमूना चयन और प्रतिनिधित्व की सीमाओं को ध्यान में रखना होगा।

शोध पद्धति :

शोध का स्वरूप : प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कार्यप्रणाली और लाभार्थियों के अनुभवों का वर्णन करने के साथ खाद्य सुरक्षा, घरेलू खर्च तथा गरीबी संबंधी पहलुओं का समीक्षात्मक विश्लेषण किया जाएगा।

अध्ययन क्षेत्र : अध्ययन का क्षेत्र मध्य प्रदेश का रीवा जिला होगा। इसमें चयनित ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के पात्र राशन कार्डधारी परिवारों को सम्मिलित किया जाना प्रस्तावित है।

अध्ययन की समष्टि एवं नमूना : अध्ययन की समष्टि में रीवा जिले के चयनित क्षेत्रों में रहने वाले पात्र अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवार शामिल होंगे। नमूने का आकार 100 उत्तरदाता निर्धारित किया गया है। उत्तरदाता परिवार के उस वयस्क सदस्य को बनाया जाना उचित होगा जिसे राशन प्राप्त करने, परिवार के खाद्यान्न व्यय और घरेलू उपभोग की स्थिति की जानकारी हो।

नमूने में दोनों समुदायों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए स्तरीकृत नमूना चयन अपनाया जा सकता है। यदि ग्रामीण एवं शहरी परिवारों को शामिल किया जाता है, तो उनके पृथक प्रतिनिधित्व का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

आँकड़ों के स्रोत :

प्राथमिक स्रोत: संरचित प्रश्नावली, प्रत्यक्ष साक्षात्कार, लाभार्थियों के अनुभव और उचित मूल्य की दुकानों से संबंधित अवलोकन।

द्वितीयक स्रोत: राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013; खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग; राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा पोर्टल; रीवा जिला प्रशासन के प्रकाशित दस्तावेज तथा उपलब्ध आधिकारिक रिपोर्टें। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा पोर्टल पर मध्य प्रदेश से संबंधित राशन कार्ड एवं उचित मूल्य की दुकानों के विवरण उपलब्ध हैं।

आँकड़ों का विश्लेषण : प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण आवृत्ति, प्रतिशत, सारणी, तुलनात्मक विवरण और आवश्यकतानुसार सांख्यिकीय परीक्षण के माध्यम से किया जाएगा।

प्रतिशत निकालने का सूत्र है:

$$\text{प्रतिशत} - \frac{\text{संबंधित श्रेणी के उत्तरदाता}}{\text{कुल उत्तरदाता}} \times 100$$

यदि कुल उत्तरदाता 100 हैं, तो किसी श्रेणी में 42 उत्तरदाताओं का होना 42 प्रतिशत के बराबर होगा। प्रत्येक प्रश्न के लिए वास्तविक उत्तरों के आधार पर गणना की जाएगी।

आँकड़ों का सारणीबद्ध विश्लेषण एवं व्याख्या :

निम्नलिखित सारणियाँ 100 उत्तरदाताओं पर आधारित शोधपत्र की संरचना प्रस्तुत करती हैं। इनमें दी गई संख्याएँ केवल उदाहरणात्मक हैं, वास्तविक सर्वेक्षण से प्राप्त नहीं हुई हैं। शोधपत्र को अंतिम रूप देने से पहले वास्तविक उत्तरों के अनुसार इन्हें बदलना आवश्यक है।

सारणी 1: उत्तरदाताओं का सामाजिक वर्ग के आधार पर वर्गीकरण

क्रमांक	सामाजिक वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	अनुसूचित जाति	60	60%
2	अनुसूचित जनजाति	40	40%
कुल		100	100%

व्याख्या: उदाहरणात्मक नमूने में अनुसूचित जाति के 60 तथा अनुसूचित जनजाति के 40 उत्तरदाता शामिल हैं। इस विभाजन से दोनों सामाजिक वर्गों के अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। हालाँकि, यह अनुपात वास्तविक सर्वेक्षण का परिणाम नहीं है और इसे जिले की वास्तविक जनसंख्या में दोनों समुदायों के अनुपात के रूप में नहीं समझना चाहिए।

सारणी 2: उत्तरदाताओं का लिंग के आधार पर वर्गीकरण

क्रमांक	लिंग	संख्या	प्रतिशत
1	पुरुष	55	55%
2	महिला	45	45%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक आँकड़ों में पुरुष उत्तरदाताओं का प्रतिशत 55 तथा महिला उत्तरदाताओं का 45 प्रतिशत है। महिलाओं की भागीदारी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि परिवार में खाद्यान्न की खपत, राशन के उपयोग तथा भोजन की व्यवस्था से संबंधित निर्णयों में उनकी भूमिका हो सकती है। वास्तविक अध्ययन में महिला उत्तरदाताओं की भागीदारी सुनिश्चित करने से राशन व्यवस्था के लैंगिक पक्ष को समझने में सहायता मिलेगी।

सारणी 3: उत्तरदाताओं का व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण

क्रमांक	व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
1	कृषि मजदूरी	35	35%
2	स्वयं की कृषि	20	20%
3	दैनिक मजदूरी एवं अन्य श्रम	18	18%
4	छोटा व्यवसाय	12	12%
5	नियमित वेतनभोगी कार्य	5	5%
6	अन्य व्यवसाय	10	10%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: इस उदाहरण में कृषि मजदूरी करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक, अर्थात् 35 प्रतिशत है। स्वयं की कृषि पर निर्भर उत्तरदाताओं का प्रतिशत 20 तथा दैनिक मजदूरी एवं अन्य श्रम करने वालों का 18 प्रतिशत है। इससे उदाहरणात्मक रूप में यह समझा जा सकता है कि अनियमित या मौसमी आय वाले परिवारों के लिए खाद्यान्न सहायता महत्त्वपूर्ण हो सकती है। वास्तविक सर्वेक्षण में व्यवसाय के साथ आय की नियमितता, वर्ष में रोजगार मिलने वाले महीनों और परिवार के सदस्यों की संख्या की जानकारी भी लेना उपयोगी होगा। इससे यह स्पष्ट हो सकेगा कि किन प्रकार के परिवारों के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सारणी 4: परिवारों की मासिक आय का वर्गीकरण

क्रमांक	मासिक पारिवारिक आय	संख्या	प्रतिशत
1	₹5,000 तक	20	20%
2	₹5,001–₹10,000	35	35%
3	₹10,001 ₹15,000	25	25%
4	₹15,001 से अधिक	20	20%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक सारणी में 55 प्रतिशत परिवारों की मासिक आय ₹10,000 तक दर्शाई गई है। कम आय वाले परिवारों में खाद्यान्न पर होने वाला व्यय घरेलू बजट पर दबाव डाल सकता है। ऐसी स्थिति में सार्वजनिक वितरण प्रणाली से प्राप्त अनाज बाजार से खरीद की आवश्यकता को कम कर सकता है।

हालाँकि, इस सारणी के आधार पर रीवा जिले के वास्तविक गरीबी स्तर का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। परिवार की आय, सदस्यों की संख्या, ऋण, संपत्ति, रोजगार तथा आवश्यक खर्चों को साथ लेकर ही उसकी आर्थिक स्थिति का समुचित आकलन किया जा सकता है।

सारणी 5: राशन कार्ड की उपलब्धता एवं प्रकार

क्रमांक	राशन कार्ड की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	प्राथमिकता परिवार (PHH)	65	65%
2	अंत्योदय अन्न योजना (AAY)	30	30%
3	अन्य अथवा पात्रता/कार्ड संबंधी समस्या वाले परिवार	5	5%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक आँकड़ों में 65 प्रतिशत उत्तरदाता प्राथमिकता परिवार तथा 30 प्रतिशत अंत्योदय अन्न योजना से संबंधित हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत प्राथमिकता परिवारों और अंत्योदय परिवारों के खाद्यान्न अधिकार अलग-अलग निर्धारित हैं।

वास्तविक अध्ययन में यह भी जाँचना चाहिए कि उत्तरदाताओं के कार्ड की श्रेणी सरकारी अभिलेखों के अनुरूप है या नहीं। पाँच प्रतिशत की तीसरी श्रेणी यहाँ केवल उदाहरण के लिए है; इसमें पात्रता विवाद, कार्ड संबंधी समस्या या सर्वेक्षण में दर्ज अन्य स्थिति हो सकती है। इसे किसी वास्तविक सरकारी कार्ड श्रेणी के रूप में नहीं माना जाना चाहिए।

सारणी 6: राशन प्राप्त करने की नियमितता

क्रमांक	राशन प्राप्त करने की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	नियमित रूप से	70	70%
2	कभी-कभी देरी से	20	20%
3	अक्सर समस्या या देरी	10	10%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक आँकड़ों के अनुसार 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं को नियमित रूप से राशन प्राप्त होता है, जबकि 30 प्रतिशत ने किसी न किसी प्रकार की देरी या समस्या की श्रेणी में स्थान पाया है। यदि वास्तविक सर्वेक्षण में भी ऐसी समस्याएँ सामने आती हैं, तो वितरण कैलेंडर की जानकारी, दुकान के खुलने के समय, ई-पॉस मशीन की कार्यप्रणाली तथा खाद्यान्न की उपलब्धता की जाँच आवश्यक होगी।

राशन प्राप्त करने में देरी से उन परिवारों को अधिक कठिनाई हो सकती है जिनके पास खाद्यान्न खरीदने के लिए पर्याप्त नकद राशि या बचत नहीं होती। इसलिए वितरण की नियमितता योजना की प्रभावशीलता का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है।

सारणी 7: राशन की मात्रा के प्रति उत्तरदाताओं की संतुष्टि

क्रमांक	उत्तरदाताओं की राय	संख्या	प्रतिशत
1	पूरी तरह संतुष्ट	45	45%
2	आंशिक रूप से संतुष्ट	35	35%
3	असंतुष्ट	20	20%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक परिणामों में 45 प्रतिशत उत्तरदाता राशन की मात्रा से पूरी तरह संतुष्ट हैं, जबकि 35 प्रतिशत आंशिक रूप से संतुष्ट हैं। शेष 20 प्रतिशत असंतुष्ट हैं। आंशिक संतुष्टि के संभावित कारणों में परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुपात में खाद्यान्न की आवश्यकता, वितरण में अनियमितता या राशन की गुणवत्ता संबंधी अनुभव शामिल हो सकते हैं। इन कारणों की पुष्टि अलग प्रश्नों के माध्यम से की जानी चाहिए।

सारणी 8: सार्वजनिक वितरण प्रणाली से घरेलू खाद्यान्न व्यय में बचत

क्रमांक	उत्तरदाताओं का अनुभव	संख्या	प्रतिशत
1	काफी बचत होती है	40	40%
2	कुछ बचत होती है	45	45%
3	बहुत कम या कोई बचत नहीं	15	15%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक आँकड़ों में 85 प्रतिशत उत्तरदाता काफी या कुछ बचत होने की बात कहते हैं। यह संकेत करता है कि खाद्यान्न सहायता परिवार के बजट में राहत प्रदान करने का एक संभावित माध्यम है।

वास्तविक अध्ययन में बचत का मात्रात्मक आकलन करने के लिए राशन प्राप्त होने से पहले और बाद के खाद्यान्न खर्च की तुलना करना उचित होगा। उदाहरण के लिए, यदि किसी परिवार को बाजार से हर महीने कम अनाज खरीदना पड़ता है, तो इससे होने वाली बचत का अनुमान बाजार मूल्य, प्राप्त मात्रा और परिवार की वास्तविक खपत के आधार पर लगाया जा सकता है। केवल उत्तरदाता की सामान्य राय से रुपये में बचत की सटीक गणना नहीं की जानी चाहिए।

सारणी 9: परिवार की खाद्य सुरक्षा पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रभाव

क्रमांक	उत्तरदाताओं की राय	संख्या	प्रतिशत
1	भोजन की उपलब्धता में काफी सहायता	50	50%
2	कुछ सहायता	35	35%
3	बहुत कम सहायता	10	10%
4	कोई विशेष सहायता नहीं	5	5%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक सारणी में 85 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने भोजन की उपलब्धता में काफी या कुछ सहायता मिलने की श्रेणी चुनी है। इससे सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संभावित खाद्य सुरक्षा संबंधी योगदान को समझा जा सकता है। फिर भी, खाद्य सुरक्षा का अर्थ केवल अनाज की उपलब्धता नहीं है। भोजन की पर्याप्त मात्रा, पोषण की गुणवत्ता, भोजन की विविधता और पूरे महीने भोजन उपलब्ध रहने की स्थिति भी महत्त्वपूर्ण हैं। यदि किसी परिवार को अनाज मिल जाता है, लेकिन दाल, सब्जियाँ, दूध या अन्य पौष्टिक खाद्य पदार्थ खरीदने के लिए पर्याप्त आय नहीं है, तो उसकी पोषण संबंधी समस्याएँ बनी रह सकती हैं।

सारणी 10: सार्वजनिक वितरण प्रणाली से गरीबी कम होने के संबंध में उत्तरदाताओं की राय

क्रमांक	उत्तरदाताओं की राय	संख्या	प्रतिशत
1	गरीबी कम करने में काफी योगदान	30	30%
2	कुछ योगदान	50	50%
3	सीमित योगदान	15	15%
4	कोई विशेष योगदान नहीं	5	5%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक परिणामों में 80 प्रतिशत उत्तरदाता सार्वजनिक वितरण प्रणाली को गरीबी कम करने में काफी या कुछ योगदान देने वाला मानते हैं। इसका संभावित कारण खाद्यान्न खरीद पर होने वाले खर्च में कमी और घरेलू उपभोग के लिए अनाज की उपलब्धता हो सकता है।

लेकिन यहाँ एक महत्त्वपूर्ण अंतर समझना आवश्यक है। गरीबी के प्रभाव को कम करना और गरीबी को स्थायी रूप से समाप्त करना दो अलग-अलग बातें हैं। राशन सहायता से परिवार की तत्काल खाद्य आवश्यकता पूरी हो सकती है, जबकि कम आय, बेरोजगारी, कर्ज, स्वास्थ्य व्यय और शिक्षा की लागत जैसी समस्याएँ बनी रह सकती हैं। इसलिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के योगदान का आकलन रोजगार, आय और अन्य सामाजिक-आर्थिक संकेतकों के साथ करना चाहिए।

सारणी 11: राशन वितरण में प्रमुख समस्याएँ

क्रमांक	समस्या	संख्या	प्रतिशत
1	वितरण में देरी	25	25%
2	निर्धारित मात्रा को लेकर समस्या	20	20%
3	दुकान तक पहुँचने में कठिनाई	15	15%
4	गुणवत्ता संबंधी शिकायत	15	15%
5	मशीन, प्रमाणीकरण या अन्य तकनीकी समस्या	10	10%
6	कोई प्रमुख समस्या नहीं	15	15%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक आँकड़ों में वितरण में देरी 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा बताई गई प्रमुख समस्या है। इसके बाद निर्धारित मात्रा को लेकर समस्या 20 प्रतिशत तथा दुकान तक पहुँचने में कठिनाई और गुणवत्ता संबंधी शिकायतें 15-15 प्रतिशत हैं। यह सारणी प्रशासनिक सुधार की दिशा निर्धारित करने में उपयोगी हो सकती है। हालाँकि, वास्तविक प्रश्नावली में यह स्पष्ट करना होगा कि उत्तरदाता से केवल एक प्रमुख समस्या पूछी गई है या एक से अधिक समस्याएँ चुनने की अनुमति दी गई है। ऊपर की सारणी में प्रत्येक उत्तरदाता को एक प्रमुख श्रेणी में रखा गया है, जिससे कुल 100 बनता है।

सारणी 12: सार्वजनिक वितरण प्रणाली के सुधार के संबंध में उत्तरदाताओं की राय

क्रमांक	सुझाया गया सुधार	संख्या	प्रतिशत
1	समय पर राशन वितरण	30	30%
2	निर्धारित मात्रा सुनिश्चित करना	25	25%
3	खाद्यान्न की गुणवत्ता में सुधार	15	15%
4	शिकायत निवारण को प्रभावी बनाना	15	15%
5	पात्रता एवं योजना संबंधी जानकारी बढ़ाना	10	10%
6	दुकान तक पहुँच में सुविधा	5	5%
कुल		**100**	**100%**

व्याख्या: उदाहरणात्मक आँकड़ों में 30 प्रतिशत उत्तरदाता समय पर राशन वितरण को प्रमुख सुधार मानते हैं, जबकि 25 प्रतिशत निर्धारित मात्रा सुनिश्चित करने पर बल देते हैं। इससे संकेत मिलता है कि वितरण की विश्वसनीयता और लाभार्थियों के अधिकारों का पालन योजना की प्रभावशीलता के लिए महत्त्वपूर्ण है। वास्तविक सर्वेक्षण में सुधार संबंधी उत्तरों को लाभार्थियों की वास्तविक समस्याओं से जोड़कर देखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जिन क्षेत्रों में दुकान तक पहुँचने में अधिक कठिनाई है, वहाँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार वितरण व्यवस्था की समीक्षा की जा सकती है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के संदर्भ में तुलनात्मक समीक्षा:

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रभाव का मूल्यांकन करते समय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों को एक समान आर्थिक समूह मानना उचित नहीं है। दोनों समुदायों के भीतर भी आय, शिक्षा, व्यवसाय, भूमि स्वामित्व, परिवार का आकार और सरकारी योजनाओं तक पहुँच में पर्याप्त विविधता हो सकती है।

तुलनात्मक अध्ययन में निम्नलिखित संकेतकों को शामिल किया जाना चाहिए।

तुलनात्मक आधार	अनुसूचित जाति के परिवार	अनुसूचित जनजाति के परिवार
आजीविका	कृषि मजदूरी, स्वरोजगार, सेवा एवं अन्य व्यवसाय	कृषि, कृषि मजदूरी, वनोपज आधारित आजीविका तथा अन्य व्यवसाय
राशन की उपलब्धता	नियमितता एवं पात्र मात्रा का परीक्षण	नियमितता, पात्र मात्रा और स्थानीय पहुँच का परीक्षण
आर्थिक बचत	खाद्यान्न व्यय में कमी का	खाद्यान्न व्यय में कमी का आकलन

	आकलन	
भौगोलिक पहुँच	दुकान तक दूरी एवं परिवहन सुविधा	विशेष रूप से दूरस्थ बस्तियों में दुकान तक दूरी एवं परिवहन सुविधा
सूचना एवं जागरूकता	पात्रता, शिकायत एवं वितरण संबंधी जानकारी	पात्रता, शिकायत एवं वितरण संबंधी जानकारी
मुख्य विश्लेषण	लाभ, समस्याएँ और संतुष्टि	लाभ, समस्याएँ और संतुष्टि

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का गरीबी उन्मूलन में योगदान :

खाद्यान्न की उपलब्धता : सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सबसे प्रत्यक्ष योगदान पात्र परिवारों को खाद्यान्न उपलब्ध कराना है। नियमित खाद्यान्न सहायता से परिवारों को बाजार से अनाज खरीदने की आवश्यकता कम हो सकती है। इससे खाद्य असुरक्षा की स्थिति में राहत मिल सकती है।

घरेलू व्यय में बचत : कम आय वाले परिवारों के लिए खाद्यान्न खरीद पर खर्च होने वाली राशि घरेलू बजट का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हो सकती है। सरकारी सहायता से अनाज प्राप्त होने पर बचत की गई राशि को स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन और अन्य आवश्यकताओं में उपयोग किया जा सकता है। वास्तविक बचत का आकलन करने के लिए परिवारों के बाजार-आधारित खाद्यान्न खर्च का सर्वेक्षण आवश्यक है।

मौसमी बेरोजगारी में सहायता : ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं दैनिक मजदूरी से होने वाली आय मौसम और उपलब्ध काम पर निर्भर कर सकती है। ऐसी परिस्थितियों में राशन की उपलब्धता परिवारों की खाद्यान्न संबंधी असुरक्षा कम करने में सहायक होती है।

सामाजिक सुरक्षा : सार्वजनिक वितरण प्रणाली आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों को बुनियादी खाद्य सहायता प्रदान करती है। इस दृष्टि से यह सामाजिक सुरक्षा का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को अधिकार-आधारित दृष्टिकोण से संबोधित करता है।

महिला एवं बच्चों के कल्याण में अप्रत्यक्ष योगदान : यदि परिवार को नियमित रूप से अनाज उपलब्ध होता है, तो भोजन की व्यवस्था करने वाले सदस्य पर आर्थिक दबाव कम हो सकता है। इससे बच्चों एवं महिलाओं के लिए भोजन की उपलब्धता में सहायता मिल सकती है। फिर भी, महिलाओं और बच्चों के पोषण स्तर में वास्तविक सुधार का दावा करने के लिए अलग पोषण संबंधी आँकड़े आवश्यक होंगे।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की प्रमुख सीमाएँ : सार्वजनिक वितरण प्रणाली की उपयोगिता के बावजूद इसकी कुछ सीमाओं का परीक्षण आवश्यक है।

1. आय संबंधी समस्या: खाद्यान्न सहायता से परिवार की रोजगार या आय संबंधी समस्या अपने आप समाप्त नहीं होती।
2. वितरण में अनियमितता: समय पर राशन नहीं मिलने से परिवारों को अतिरिक्त खर्च करना पड़ सकता है।
3. पर्याप्तता का प्रश्न: निर्धारित खाद्यान्न मात्रा और परिवार की कुल आवश्यकता के बीच अंतर हो सकता है।
4. पोषण संबंधी सीमा: अनाज की उपलब्धता से भोजन की विविधता तथा सभी पोषक तत्त्वों की पर्याप्तता स्वतः सुनिश्चित नहीं होती।
5. पहचान एवं पात्रता संबंधी समस्याएँ: पात्र परिवारों के कार्ड या लाभार्थी विवरण में समस्या होने पर लाभ प्राप्त करना कठिन हो सकता है।
6. भौगोलिक बाधाएँ: दूरस्थ बस्तियों में रहने वाले परिवारों के लिए दुकान तक पहुँचना कठिन हो सकता है।

7. तकनीकी बाधाएँ: प्रमाणीकरण या मशीन संबंधी समस्याएँ वितरण प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती हैं।
8. जागरूकता का अभाव: अधिकारों, पात्र मात्रा तथा शिकायत निवारण की जानकारी न होने पर लाभार्थी अपनी समस्याओं का समाधान समय पर नहीं करा पाते।

प्रमुख निष्कर्ष :-

इस शोधपत्र के वैचारिक विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं।

1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली पात्र परिवारों को खाद्यान्न उपलब्ध कराने तथा खाद्य असुरक्षा कम करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।
2. खाद्यान्न सहायता से बाजार से अनाज खरीदने पर होने वाले खर्च में संभावित बचत हो सकती है।
3. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों के लिए योजना की उपयोगिता उनकी आय, रोजगार, परिवार के आकार और खाद्यान्न की आवश्यकता से प्रभावित हो सकती है।
4. राशन वितरण की नियमितता, निर्धारित मात्रा, गुणवत्ता तथा उचित मूल्य की दुकान तक पहुँच योजना की प्रभावशीलता के महत्त्वपूर्ण संकेतक हैं।
5. खाद्य सुरक्षा और व्यापक गरीबी उन्मूलन का मूल्यांकन अलग-अलग करना आवश्यक है। खाद्यान्न सहायता आर्थिक कठिनाइयों को कम कर सकती है, लेकिन स्थायी गरीबी उन्मूलन के लिए आय और रोजगार के अवसर भी आवश्यक हैं।
6. दोनों समुदायों के बीच वास्तविक अंतर निर्धारित करने के लिए तुलनात्मक सर्वेक्षण और उपयुक्त सांख्यिकीय विश्लेषण आवश्यक है।

सुझाव :-

राशन वितरण में नियमितता सुनिश्चित करना : उचित मूल्य की दुकानों पर वितरण का समय स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया जाना चाहिए। खाद्यान्न उपलब्धता तथा वितरण संबंधी जानकारी लाभार्थियों तक समय पर पहुँचाई जानी चाहिए।

पात्र मात्रा का पालन : लाभार्थियों को उनकी पात्रता और निर्धारित खाद्यान्न मात्रा की जानकारी दी जानी चाहिए। वितरण रिकॉर्ड और वास्तविक वितरण की नियमित जाँच से संभावित अनियमितताओं की पहचान की जा सकती है।

शिकायत निवारण को प्रभावी बनाना : राशन वितरण से संबंधित शिकायत दर्ज करने की प्रक्रिया सरल और सुलभ होनी चाहिए। शिकायतकर्ता को आवेदन की स्थिति तथा समाधान के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

दूरस्थ बस्तियों में पहुँच सुधारना : जहाँ सर्वेक्षण से यह प्रमाणित हो कि दूरी या परिवहन की कमी राशन प्राप्त करने में बाधा बनती है, वहाँ स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप वितरण व्यवस्था में सुधार पर विचार किया जाना चाहिए।

डिजिटल व्यवस्था में सहायता : ई-पॉस मशीन, प्रमाणीकरण या अन्य तकनीकी प्रक्रियाओं के कारण लाभ प्राप्त करने में कठिनाई होने पर सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए। वैधानिक एवं प्रशासनिक नियमों के अनुरूप वैकल्पिक सहायता प्रक्रिया की जानकारी भी दी जानी चाहिए।

लाभार्थियों में जागरूकता बढ़ाना : ग्राम पंचायत, स्थानीय निकाय और संबंधित विभाग पात्रता, राशन कार्ड, वितरण प्रक्रिया और शिकायत निवारण संबंधी जानकारी उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

खाद्य सहायता के साथ आजीविका के अवसर : गरीबी के दीर्घकालीन उन्मूलन के लिए खाद्य सहायता को रोजगार, कौशल विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वरोजगार से संबंधित योजनाओं के साथ समन्वित रूप से लागू करना आवश्यक है।

नियमित सामाजिक अंकेक्षण : स्थानीय स्तर पर उपलब्ध अभिलेखों, लाभार्थियों की शिकायतों और वितरण व्यवस्था की समीक्षा की जानी चाहिए। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम में निगरानी एवं शिकायत निवारण से संबंधित प्रावधान हैं।

उपसंहार :

प्रस्तुत शोध का विषय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों की खाद्य सुरक्षा और आर्थिक स्थिति के संदर्भ में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की उपयोगिता को समझना है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली पात्र परिवारों को खाद्यान्न सहायता देकर घरेलू उपभोग को सहारा प्रदान करती है। इससे बाजार से खाद्यान्न खरीदने पर होने वाले खर्च में संभावित कमी आ सकती है और सीमित आय वाले परिवारों को अन्य आवश्यकताओं पर व्यय करने में सहायता मिल सकती है।

रीवा जिले के विशेष संदर्भ में इस व्यवस्था का वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए दोनों समुदायों के लाभार्थियों के अनुभव, राशन वितरण की नियमितता, पात्र मात्रा, घरेलू खर्च, खाद्य सुरक्षा और शिकायत निवारण की स्थिति का अध्ययन करना आवश्यक है। साथ ही, सामाजिक वर्गों के बीच तुलना करते समय आय, रोजगार, भौगोलिक दूरी और परिवार के आकार जैसे कारकों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीबी के प्रभावों को कम करने और खाद्य सुरक्षा को मजबूत करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। किंतु स्थायी गरीबी उन्मूलन के लिए इसे रोजगार सृजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास और सामाजिक सुरक्षा के अन्य उपायों के साथ जोड़कर देखना चाहिए। वास्तविक सर्वेक्षण के निष्कर्ष ही यह निर्धारित कर सकेंगे कि रीवा जिले में यह व्यवस्था कितनी प्रभावी है तथा किन क्षेत्रों में सुधार की सबसे अधिक आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारत सरकार, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 (National Food Security Act, 2013)। India Code.
2. Department of Food and Public Distribution, Government of India. Salient Features of NFSA.
3. National Food Security Portal, Government of India. Public Distribution System.
4. National Food Security Portal, Government of India. Madhya Pradesh State Information.
5. जिला रीवा, मध्य प्रदेश शासन। District Profile.
6. Department of Food and Public Distribution, Government of India. PDS Evaluation, Monitoring and Research.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 167-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न के नियंत्रण में राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति 2001 की भूमिका : (छत्तीसगढ़) में दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दुकलहीन ठाकुर
शोधार्थी–राजनीति विज्ञान, शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)
डॉ. नागरत्ना गनवीर
शोध निर्देशक एवं प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय नवीन महाविद्यालय, रिसाली, जिला–दुर्ग (छ.ग.)
डॉ. शकील हुसैन
सह–शोध निर्देशक, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष–राजनीति विज्ञान,
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

कुंजी शब्द : राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति 2001, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, आंतरिक शिकायत समिति, विशाखा दिशा–निर्देश, दुर्ग जिला, महिला सशक्तिकरण।

प्रस्तावना :

भारतीय समाज में ऐतिहासिक रूप से महिलाओं को सम्मान देने की बात कही गई है, किंतु व्यवहार में उन्हें लंबे समय तक असमानता और भेदभाव का सामना करना पड़ा है। स्वतंत्रता के बाद संविधान ने उन्हें समानता और स्वतंत्रता के अधिकार दिए, लेकिन सामाजिक वास्तविकता और संवैधानिक आदर्शों के बीच अंतराल बना रहा। आधुनिक समय में शिक्षा और रोजगार के क्षेत्रों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी ने आर्थिक विकास को गति दी है, साथ ही कार्यस्थल पर उत्पीड़न और भेदभाव जैसी गंभीर समस्याएँ भी बढ़ाई हैं।

इस पृष्ठभूमि में, महिलाओं को विकास का सक्रिय भागीदार बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने वर्ष 2001 में 'राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति' अपनाई। यह अध्ययन छत्तीसगढ़ के प्रमुख औद्योगिक और प्रशासनिक केंद्र दुर्ग जिले पर केंद्रित है। भिलाई इस्पात संयंत्र और अन्य औद्योगिक इकाइयों के कारण यहाँ महिलाओं की कार्य–भागीदारी अधिक है, जिससे नीति के व्यावहारिक प्रभाव और कार्यस्थल पर उनकी सुरक्षा व चुनौतियों का सटीक आकलन किया जा सके।

उद्देश्य :

1. राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति, 2001 के उद्देश्यों और दृष्टिकोणों का परीक्षण करना।
2. दुर्ग जिले में कार्यस्थलों पर महिलाओं की स्थिति और शिकायत निवारण तंत्र की कार्यप्रणाली को समझना।

3. नीति के क्रियान्वयन में आ रही चुनौतियों की पहचान करना।

4. कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न के प्रभावी नियंत्रण हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध :

प्रकृति : विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक एवं मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित।

राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति, 2001 (मूल दस्तावेज)

दुर्ग जिले की सामाजिक–आर्थिक संरचना और संस्थागत व्यवस्थाओं का अवलोकन।

2. राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति, 2001 : उद्देश्य एवं दृष्टिकोण :

यह नीति महिलाओं के विकास की दिशा में एक समग्र और एकीकृत दस्तावेज है। इसके प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं :

- **मूल उद्देश्य एवं दृष्टिकोण :**
- महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन की मुख्यधारा से जोड़ना।
- उनके विरुद्ध होने वाले भेदभाव और हिंसा का अंत करना।
- महिलाओं को केवल 'कल्याणकारी योजनाओं की लाभार्थी' न मानकर, राष्ट्र विकास में 'सक्रिय सहभागी' के रूप में स्वीकार करना।
- **प्रमुख प्राथमिकता क्षेत्र :**
- बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना और स्कूल छोड़ने की दर घटाना।
- स्वरोजगार, उद्यमिता प्रशिक्षण और बैंकिंग सुविधाओं तक महिलाओं की पहुँच सुनिश्चित करना।
- स्थानीय निकायों (पंचायतों व नगरपालिकाओं) में राजनीतिक भागीदारी और नेतृत्व विकास को मजबूत करना।

आठ विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण :

1. **अधिकार–आधारित दृष्टिकोण :** कार्यस्थल के उत्पीड़न को मानवाधिकारों का उल्लंघन मानता है, न्याय दिलाना और संरक्षण देना राज्य का वैधानिक दायित्व है।
2. **लैंगिक समानता एवं न्याय का दृष्टिकोण :** औपचारिक समानता के साथ–साथ वास्तविक समानता के लिए विशेष उपायों (जैसे– समान वेतन और सुरक्षित माहौल) पर बल देता है।
3. **महिला सशक्तिकरण का दृष्टिकोण :** महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता, आत्मविश्वास, नेतृत्व और अधिकारों के प्रति जागरूकता का विकास करना।
4. **समग्र विकास का दृष्टिकोण :** शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और सुरक्षा के साथ–साथ सामाजिक–पारिवारिक सुरक्षा का परस्पर समन्वय स्थापित करना।
5. **निवारक दृष्टिकोण :** उत्पीड़न की घटनाओं को रोकने के लिए लैंगिक संवेदनशीलता प्रशिक्षण, जागरूकता कार्यक्रम और आंतरिक शिकायत समितियों (ICC) का गठन।
6. **संरक्षक दृष्टिकोण :** पीड़ित महिलाओं के लिए विधिक सहायता, परामर्श, चिकित्सा, पुनर्वास और हेल्पलाइन जैसी संस्थागत व्यवस्थाएँ प्रदान करना।
7. **संस्थागत एवं प्रशासनिक दृष्टिकोण :** महिला आयोगों और प्रशासनिक तंत्र को उत्तरदायी बनाते हुए

शिकायतों पर समयबद्ध और निष्पक्ष कार्रवाई सुनिश्चित करना।

8. **सहभागिता एवं समावेशन का दृष्टिकोण :** नीति–निर्माण और क्रियान्वयन में महिलाओं की भागीदारी तथा सभी वर्गों (ग्रामीण, शहरी, वंचित) का समान समावेश।

- यद्यपि यह नीतिगत ढाँचा अत्यंत प्रगतिशील और बहुआयामी है, किंतु यह देखना आवश्यक है कि दुर्ग जैसे औद्योगिक और प्रशासनिक जिलों में यह जमीनी स्तर पर कितना प्रभावी है।

3. दुर्ग जिले का सामाजिक–आर्थिक परिप्रेक्ष्य और कार्यस्थलों पर महिलाओं की स्थिति

3.1 जिले की सामाजिक–आर्थिक संरचना :

दुर्ग जिला छत्तीसगढ़ का एक प्रमुख औद्योगिक, शैक्षणिक और आर्थिक केंद्र है, जहाँ भिलाई इस्पात संयंत्र, उद्योग, शासकीय कार्यालय और व्यापारिक प्रतिष्ठान प्रमुख गतिविधियाँ संचालित करते हैं। यहाँ शहरी और ग्रामीण मिश्रित संरचना के कारण महिलाओं की कार्य–सहभागिता बढ़ी है, वे अब प्रशासन, उद्योग, स्वास्थ्य व बैंकिंग क्षेत्रों में सक्रिय हैं।

इसके बावजूद, पितृसत्तात्मक सोच और लैंगिक असमानता का प्रभाव स्पष्ट है। ग्रामीण व असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं को आर्थिक निर्भरता, सीमित शिक्षा और सामाजिक दबाव जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कार्यस्थल पर असमान शक्ति–संतुलन और सामाजिक बदनामी का भय उत्पीड़न की घटनाओं को छिपाए रखता है। यह साबित करता है कि महिला सुरक्षा की समस्या केवल विधिक नहीं, बल्कि गहरी सामाजिक–आर्थिक समस्या है।

3.2 संगठित क्षेत्र की स्थिति :

संगठित क्षेत्र (शासकीय विभाग, बैंक, शिक्षण संस्थान और बड़ी औद्योगिक इकाइयाँ) में कार्यरत महिलाओं को बेहतर वेतन, सेवा शर्तें और विधिक संरक्षण प्राप्त है। यहाँ आंतरिक शिकायत समितियाँ (ICC) और आचार संहिता स्पष्ट रूप से मौजूद हैं।

इसके बावजूद, पुरुष–प्रधान कार्य–संस्कृति, निर्णय–निर्माण में सीमित भागीदारी और पदानुक्रम में कम प्रतिनिधित्व जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं। कई बार शिकायत करने पर कैरियर, स्थानांतरण या पदोन्नति प्रभावित होने का डर महिलाओं को चुप रहने पर मजबूर कर देता है।

3.3 असंगठित एवं निजी क्षेत्र की स्थिति :

घरेलू कार्य, निर्माण, कृषि और ठेकेदारी जैसे असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति अत्यंत संवेदनशील है। यहाँ न तो स्पष्ट सेवा नियम होते हैं और न ही औपचारिक नियोक्ता–कर्मचारी संबंध या शिकायत निवारण तंत्र।

अल्प आय, नौकरी जाने का भय और ठेकेदारों पर निर्भरता उन्हें यौन उत्पीड़न व मानसिक प्रताड़ना के विरुद्ध आवाज उठाने से रोकती है। निजी क्षेत्रों में उत्पादकता को प्राथमिकता मिलने के कारण सुरक्षा को गौण माना जाता है। ऐसे में 2013 के अधिनियम के तहत जिला स्तरीय स्थानीय समिति की भूमिका अहम है, किंतु जागरूकता और पहुँच सीमित होने से यह व्यवस्था कई बार प्रभावहीन हो जाती है।

दुर्ग जिले में महिला आयोग, बाल विकास विभाग, हेल्पलाइन, स्वयं सहायता समूहों और एनजीओ (NGO) के माध्यम से महिलाओं को जागरूक करने के प्रयास लगातार हो रहे हैं। स्वयं सहायता समूहों और

कौशल विकास कार्यक्रमों ने महिलाओं का आर्थिक आत्मविश्वास बढ़ाया है। हालांकि, अधिकारों की जानकारी के अभाव में कई महिलाएँ आज भी शिकायत दर्ज नहीं कर पातीं। अतः जिले में नीति का प्रभाव आंशिक रूप से सकारात्मक है, किंतु व्यावहारिक धरातल पर सुधार की अभी भी पर्याप्त गुंजाइश है।

4. नीति के क्रियान्वयन की स्थिति : समितियां, जागरूकता और विधिक सहायता

4.1 आंतरिक शिकायत समितियाँ (ICC) :

कार्यस्थल पर उत्पीड़न रोकने का यह सबसे महत्वपूर्ण संस्थागत साधन है, जो पीड़ित महिला को सुरक्षित, गोपनीय और निष्पक्ष मंच प्रदान करता है। नियमानुसार समिति की अध्यक्ष महिला होनी चाहिए, सदस्यों में महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी और एक बाहरी विशेषज्ञ का होना अनिवार्य है ताकि जाँच पारदर्शी बने।

- **दुर्ग जिले की स्थिति :** शासकीय विभागों और बड़ी औद्योगिक इकाइयों में समितियाँ हैं, किंतु कई निजी और छोटे संस्थानों में इनका अभाव है या ये केवल कागजी औपचारिकता तक सीमित हैं। सदस्यों को पर्याप्त प्रशिक्षण न मिलना, प्रबंधन का अप्रत्यक्ष दबाव और कर्मचारियों में समिति की जानकारी का अभाव इसकी प्रभावशीलता को कमजोर करता है। इनकी सफलता के लिए इनका विधि के अनुरूप गठन, सदस्यों का प्रशिक्षण और प्रशासनिक हस्तक्षेप से मुक्ति आवश्यक है।

4.2 जागरूकता और प्रशिक्षण :

नीति मानती है कि समस्या का समाधान केवल दंडात्मक प्रावधानों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए लैंगिक संवेदनशीलता और विधिक जागरूकता जरूरी है। नियमित प्रशिक्षण, कार्यशालाएँ और सेमिनार कर्मचारियों में सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करते हैं, जिससे पुरुष कर्मचारियों में उत्तरदायित्व और महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ता है।

- **दुर्ग जिले की स्थिति :** यहाँ जागरूकता की स्थिति असमान है। शहरी व संगठित क्षेत्रों में महिलाओं को कुछ जानकारी है, जबकि ग्रामीण, निजी और असंगठित क्षेत्रों में यह अत्यंत सीमित है। सामाजिक भय, बदनामी की आशंका और नौकरी जाने का डर महिलाओं को आवाज उठाने से रोकता है। इसलिए सभी स्तरों पर नियमित जन–जागरूकता अभियान चलाना आवश्यक है।

4.3 विधिक सहायता और परामर्श :

अनेक महिलाएँ जानकारी के अभाव में उत्पीड़न सहने को विवश होती हैं, इसलिए निःशुल्क विधिक सहायता, परामर्श, मनोवैज्ञानिक सहयोग और न्यायिक मार्गदर्शन बेहद महत्वपूर्ण हैं। महिला आयोग, हेल्पलाइन, विधिक सेवा प्राधिकरण (DLSA) और एनजीओ (NGO) इस दिशा में कार्य करते हैं।

- **दुर्ग जिले की स्थिति :** यहाँ ये संस्थाएँ कार्यरत हैं, परंतु व्यावहारिक स्तर पर इनकी पहुँच, संसाधन और आपसी समन्वय सीमित है। कानूनी प्रक्रिया की जटिलता, लंबी कार्यवाही और कुछ मामलों में अधिकारियों की असंवेदनशीलता महिलाओं का विश्वास कमजोर करती है। ग्रामीण व असंगठित क्षेत्रों तक इस तंत्र की पहुँच और बढ़ाने की आवश्यकता है। यदि सभी संबंधित संस्थाओं में प्रभावी समन्वय हो, तो शीघ्र और न्यायसंगत समाधान संभव है।

5. चुनौतियाँ और सीमाएँ

- **निजी व असंगठित क्षेत्रों में तंत्र का अभाव :** शिकायत निवारण व्यवस्था मुख्यतः सरकारी और बड़े

संस्थानों तक सीमित है। निजी, छोटे उद्योगों, घरेलू और निर्माण कार्यों में स्पष्ट मंच न होने, अल्प आय तथा नौकरी की असुरक्षा के कारण महिलाएँ चुप रहने को विवश हैं। लाभ को प्राथमिकता मिलने से सुरक्षा गौण हो जाती है।

- **सामाजिक मानसिकता और पारिवारिक दबाव :** पितृसत्तात्मक सोच के कारण महिलाओं से "समझौतावादी" बने रहने की अपेक्षा की जाती है। उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाने पर सामाजिक बहिष्कार, दोषारोपण और परिवार की प्रतिष्ठा का भय रहता है, जिससे महिलाएँ शिकायत करने से हिचकिचाती हैं।
- **समितियों के औपचारिक संचालन की समस्या :** कई संस्थानों में समितियाँ केवल कागजी हैं। नियमित बैठकों, प्रशिक्षण और स्पष्ट भूमिका का अभाव रहता है। प्रबंधन का हस्तक्षेप, बाहरी विशेषज्ञ न होना और वरिष्ठ अधिकारियों से भय के कारण महिलाएँ इन समितियों पर भरोसा नहीं कर पातीं।
- **जानकारी का अभाव :** ग्रामीण, असंगठित और निम्न–आय वर्ग की महिलाओं में कानूनी अधिकारों और शिकायत प्रक्रिया की भारी कमी है। दूसरी ओर, नियोक्ता भी इन्हें केवल औपचारिक दायित्व मानते हैं, जिससे नीति का संदेश जमीनी स्तर तक नहीं पहुँच पाता।
- **प्रशासनिक एवं निगरानी संबंधी कमजोरियाँ :** प्रशासनिक उदासीनता और निगरानी के अभाव के कारण शिकायतों को गंभीरता से नहीं लिया जाता। विभागों में समन्वय की कमी और दंडात्मक कार्रवाई में देरी से कानून का निवारक प्रभाव घटता है।

ये चुनौतियाँ दर्शाती हैं कि कार्यस्थल पर महिला सुरक्षा के लिए केवल कानूनी उपाय पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि इसके साथ सामाजिक चेतना और मानसिकता में सकारात्मक परिवर्तन भी अत्यंत आवश्यक है।

6. सुझाव :

- **समितियों का अनिवार्य सत्यापन :** जिला प्रशासन द्वारा सभी सरकारी, निजी और अर्द्ध–सरकारी संस्थानों में आंतरिक शिकायत समितियों के गठन का आवधिक सत्यापन किया जाए, और अनुपालन न करने वाले प्रतिष्ठानों के विरुद्ध विधि–सम्मत कार्रवाई हो।
- **स्थानीय समिति की सक्रियता :** असंगठित क्षेत्र की महिलाओं के लिए जिला स्तर की स्थानीय समिति का व्यापक प्रचार किया जाए, तथा उसके संपर्क विवरण पंचायत भवनों, श्रम कार्यालयों, स्वयं सहायता समूहों और कार्यस्थलों पर प्रदर्शित किए जाएँ।
- **प्रशिक्षण एवं क्षमता निर्माण :** समितियों के सदस्यों को विधिक प्रक्रिया, निष्पक्ष जाँच और संवेदनशीलता का नियमित प्रशिक्षण दिया जाए, और बाहरी विशेषज्ञों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए।
- **सतत जागरूकता अभियान :** विद्यालयों, महाविद्यालयों, कार्यालयों, औद्योगिक इकाइयों और ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यशालाएँ और जन–जागरूकता अभियान आयोजित हों। सामग्री सरल स्थानीय भाषा, अर्थात् हिंदी एवं छत्तीसगढ़ी, में तैयार की जाए।
- **गोपनीयता और प्रतिशोध से सुरक्षा :** शिकायतकर्ता की पहचान की गोपनीयता और शिकायत के बाद प्रतिशोधात्मक कार्रवाई, जैसे स्थानांतरण या पदोन्नति रोकना, के विरुद्ध स्पष्ट सुरक्षा व्यवस्था बनाई जाए।
- **समन्वय तंत्र :** जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, महिला आयोग, महिला एवं बाल विकास विभाग, पुलिस

और गैर–सरकारी संगठनों के बीच एक नियमित समन्वय व्यवस्था स्थापित की जाए।

- **निगरानी एवं डेटा :** समितियों द्वारा प्राप्त और निपटाई गई शिकायतों का वार्षिक आँकड़ा जिला स्तर पर संकलित एवं प्रकाशित हो, ताकि नीति के प्रभाव का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन संभव हो।
- **नियोक्ताओं की जवाबदेही :** निजी क्षेत्र को केवल दंड के भय से नहीं, बल्कि प्रोत्साहन के माध्यम से भी, जैसे सुरक्षित कार्यस्थल प्रमाणन, कानूनों के पालन के लिए प्रेरित किया जाए।

निष्कर्ष :

यह अध्ययन राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति, 2001 के वैचारिक आधार और दुर्ग जिले में इसके क्रियान्वयन का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करता है। निष्कर्ष यह है कि संगठित क्षेत्रों में जहाँ आंतरिक समितियाँ और विधिक सुरक्षा अपेक्षाकृत बेहतर हैं, वहीं असंगठित, निजी और ग्रामीण क्षेत्रों में यह ढांचा काफी हद तक औपचारिक और कमजोर नजर आता है। पितृसत्तात्मक मानसिकता, पारिवारिक दबाव, कानूनी जागरूकता का अभाव और प्रशासनिक कमजोरियाँ इसके मुख्य मार्ग की बाधाएँ हैं।

नीति और व्यवहार के इस अंतर को पाटने के लिए सभी संस्थानों में आंतरिक शिकायत समितियों (ICC) का अनिवार्य सत्यापन, असंगठित क्षेत्र के लिए स्थानीय समितियों का व्यापक प्रचार, और नियमित जागरूकता अभियान आवश्यक हैं। इसके साथ ही, जिला स्तर पर विभिन्न विभागों के मध्य प्रभावी समन्वय और निजी क्षेत्र की जवाबदेही सुनिश्चित करके ही कार्यस्थल को महिलाओं के लिए सुरक्षित और भयमुक्त बनाया जा सकता है।

संदर्भ :

1. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय (2001). राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति, 2001. भारत सरकार।
2. कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष) अधिनियम, 2013. भारत सरकार।
3. राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990. भारत सरकार।
4. Nigam, S. (2020). Women and Domestic Violence Law in India: A Quest for Justice. Routledge India.
5. Nigam, S. (2021). Domestic Violence Law in India: Myth and Misogyny. Routledge India.
6. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय. महिला सशक्तिकरण हेतु नीतिगत गतिविधियाँ. भारत का राष्ट्रीय पोर्टल।
7. MacKinnon, C. A. (1979). Sexual Harassment of Working Women: A Case of Sex Discrimination. Yale University Press.
8. Pressman, J. L., & Wildavsky, A. (1973). Implementation. University of California Press.
9. Lipsky, M. (1980). Street-Level Bureaucracy: Dilemmas of the Individual in Public Services. Russell Sage Foundation.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 173-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

खेलों में भागीदारी का आत्मविश्वास पर प्रभाव

डॉ. भारत कुमार विश्वकर्मा
सहायक प्राध्यापक (शारीरिक शिक्षा), श्रीयुत महाविद्यालय गंगेव रीवा (म.प्र.)
हर्षिता मिश्रा
लाइफ लर्निंग विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्ध्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

सारांश :

खेल मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं भावनात्मक विकास का महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। खेलों में भागीदारी व्यक्ति को शारीरिक रूप से स्वस्थ बनाने के साथ-साथ उसमें आत्मविश्वास, आत्मानुशासन, नेतृत्व क्षमता, निर्णय लेने की योग्यता, सहयोग की भावना तथा चुनौतियों का सामना करने की क्षमता विकसित करने में सहायता कर सकती है। खेल के मैदान में खिलाड़ी को सफलता एवं असफलता दोनों का अनुभव होता है। इन अनुभवों के माध्यम से वह अपनी क्षमताओं को पहचानना, गलतियों से सीखना तथा कठिन परिस्थितियों में प्रयास जारी रखना सीखता है।

प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य खेलों में भागीदारी और आत्मविश्वास के बीच संबंध का विश्लेषण करना है। इसमें खेलों के व्यक्तिगत, सामाजिक, शैक्षणिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्षों का अध्ययन किया गया है। शोधपत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए आत्मविश्वास के प्रमुख आयामों, खेलों के संभावित प्रभावों, प्रभावकारी कारकों तथा खेल सहभागिता बढ़ाने के उपायों पर चर्चा की गई है। विषय को स्पष्ट करने के लिए उदाहरणात्मक सारणियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं। इन सारणियों में प्रयुक्त संख्याएँ केवल विश्लेषण की पद्धति समझाने के लिए काल्पनिक उदाहरण हैं; इन्हें किसी वास्तविक सर्वेक्षण अथवा प्रमाणित शोध के निष्कर्ष के रूप में नहीं माना जाना चाहिए।

मुख्य शब्द: खेल, खेलों में भागीदारी, आत्मविश्वास, व्यक्तित्व विकास, नेतृत्व क्षमता, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक सहभागिता।

प्रस्तावना :

मानव व्यक्तित्व का विकास अनेक कारकों से प्रभावित होता है। परिवार, विद्यालय, सामाजिक वातावरण, शिक्षा, मित्र समूह तथा व्यक्तिगत अनुभव व्यक्ति के विचारों, व्यवहार और आत्म-मूल्यांकन को आकार देते हैं। इन कारकों के साथ खेल भी व्यक्तित्व विकास का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। खेल केवल मनोरंजन अथवा शारीरिक व्यायाम तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे व्यक्ति को स्वयं को पहचानने, अपनी क्षमताओं को विकसित करने और दूसरों के साथ प्रभावी ढंग से व्यवहार करने के अवसर प्रदान करते हैं। आत्मविश्वास का सामान्य अर्थ व्यक्ति का अपनी क्षमताओं, ज्ञान, कौशल तथा निर्णयों पर विश्वास करना है। आत्मविश्वास से युक्त व्यक्ति सामान्यतः चुनौतियों का सामना करने, अपने विचार व्यक्त करने, निर्णय लेने तथा असफलता के बाद पुनः प्रयास करने के लिए अधिक तत्पर

हो सकता है। इसके विपरीत, कम आत्मविश्वास के कारण व्यक्ति अपनी क्षमता होने के बावजूद प्रतियोगिताओं, सार्वजनिक गतिविधियों या नेतृत्व संबंधी अवसरों में भाग लेने से संकोच कर सकता है।

खेलों में भागीदारी के दौरान व्यक्ति को निश्चित लक्ष्य प्राप्त करने, नियमों का पालन करने, समय का प्रबंधन करने, टीम के सदस्यों के साथ समन्वय स्थापित करने तथा प्रतिस्पर्धी परिस्थितियों में निर्णय लेने का अवसर मिलता है। जब खिलाड़ी अभ्यास के माध्यम से किसी कौशल में सुधार अनुभव करता है, तो उसे अपनी क्षमता पर विश्वास विकसित करने में सहायता मिल सकती है। इसी प्रकार, टीम के सदस्यों, प्रशिक्षकों और दर्शकों से मिलने वाला प्रोत्साहन भी आत्मविश्वास के विकास में योगदान दे सकता है।

हालाँकि, खेलों का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर समान नहीं होता। खेल का प्रकार, भागीदारी की अवधि, प्रशिक्षक का व्यवहार, परिवार का समर्थन, खेल सुविधाओं की उपलब्धता, लिंग संबंधी सामाजिक धारणाएँ तथा जीत-हार के प्रति दृष्टिकोण जैसे कारक इस प्रभाव को प्रभावित कर सकते हैं। अत्यधिक दबाव, अपमानजनक व्यवहार, लगातार नकारात्मक तुलना या असफलता पर कठोर प्रतिक्रिया खिलाड़ी के आत्मविश्वास को कम भी कर सकती है। इसलिए खेलों और आत्मविश्वास के संबंध का अध्ययन संतुलित दृष्टिकोण से किया जाना आवश्यक है।

अध्ययन की पृष्ठभूमि एवं समस्या का कथन :

वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य केवल पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों एवं युवाओं का सर्वांगीण विकास करना भी है। सर्वांगीण विकास में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ भावनात्मक स्थिरता, सामाजिक समायोजन, निर्णय क्षमता, नेतृत्व और आत्मविश्वास का विशेष महत्त्व है। खेल इन क्षमताओं को व्यावहारिक परिस्थितियों में विकसित करने का अवसर प्रदान करते हैं।

विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा सामुदायिक संस्थाओं में खेल प्रतियोगिताओं और शारीरिक गतिविधियों का आयोजन किया जाता है, लेकिन सभी व्यक्तियों को समान अवसर नहीं मिल पाते। कुछ विद्यार्थी खेलों में सक्रिय रहते हैं, जबकि कुछ संकोच, असफलता के भय, खेल सामग्री की कमी, समयाभाव या सामाजिक बाधाओं के कारण भागीदारी से दूर रहते हैं। यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि खेलों में नियमित भागीदारी आत्मविश्वास के विभिन्न आयामों से किस प्रकार संबंधित है।

इस शोध की केंद्रीय समस्या यह है कि खेलों में भागीदारी और व्यक्ति के आत्मविश्वास के बीच संबंध की प्रकृति क्या है, तथा किन परिस्थितियों में खेल सहभागिता आत्मविश्वास के विकास में अधिक सहायक हो सकती है?

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि खेलों में भागीदारी और आत्मविश्वास के बीच संबंध पाए जाने पर भी केवल उसी आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि आत्मविश्वास में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन खेलों के कारण ही हुआ है। परिवार, शिक्षा, व्यक्तित्व, सामाजिक समर्थन और पूर्व अनुभव भी आत्मविश्वास को प्रभावित कर सकते हैं।

शोध के उद्देश्य : प्रस्तुत शोधपत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. खेलों में भागीदारी और आत्मविश्वास के बीच संबंध का अध्ययन करना।
2. खेलों के माध्यम से विकसित होने वाली व्यक्तिगत एवं सामाजिक क्षमताओं का विश्लेषण करना।
3. नियमित खेल सहभागिता और अनियमित अथवा खेलों में भाग न लेने वाले व्यक्तियों के आत्मविश्वास में संभावित अंतर को समझना।

4. खेलों में भागीदारी के दौरान नेतृत्व, निर्णय क्षमता, संवाद कौशल तथा असफलता से उबरने की क्षमता की भूमिका का अध्ययन करना।
5. खेल सहभागिता पर परिवार, विद्यालय, प्रशिक्षक एवं सामाजिक वातावरण के प्रभाव का विश्लेषण करना।
6. खेलों में भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

परिकल्पनाएँ :

1. नियमित रूप से खेलों में भाग लेने वाले व्यक्तियों में सार्वजनिक रूप से अपनी बात रखने का आत्मविश्वास अधिक हो सकता है।
2. खेलों में नेतृत्व की भूमिका निभाने का अवसर निर्णय लेने के आत्मविश्वास से सकारात्मक रूप से संबंधित हो सकता है।
3. सकारात्मक प्रशिक्षकीय व्यवहार और परिवार का समर्थन खेल सहभागिता के लाभों को बढ़ा सकते हैं।

साहित्य समीक्षा : खेलों और आत्मविश्वास के संबंध को समझने के लिए मनोविज्ञान, सामाजिक विकास तथा खेल मनोविज्ञान से संबंधित साहित्य उपयोगी आधार प्रदान करता है।

अल्बर्ट बंडूरा का आत्म-प्रभावकारिता सिद्धांत : बंडूरा (Bandura, 1997) ने Self-Efficacy: The Exercise of Control में आत्म-प्रभावकारिता की अवधारणा प्रस्तुत की। आत्म-प्रभावकारिता का आशय किसी विशेष परिस्थिति में आवश्यक कार्य करने की अपनी क्षमता पर विश्वास से है। यह व्यापक आत्मविश्वास से संबंधित है, लेकिन दोनों पूर्णतः समान नहीं हैं।

खेलों में खिलाड़ी जब नियमित अभ्यास के माध्यम से किसी कौशल में सुधार करता है, तो उसे अपनी क्षमता का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। उदाहरण के लिए, पहले कठिन लगने वाले कौशल को बार-बार अभ्यास करके सीखना व्यक्ति के इस विश्वास को बढ़ा सकता है कि प्रयास से प्रदर्शन में सुधार किया जा सकता है। यह सिद्धांत खेलों में आत्मविश्वास के विकास की व्याख्या करने के लिए उपयोगी है।

Eime एवं सहयोगियों का अध्ययन : Eime और सहयोगियों (2013) ने बच्चों एवं किशोरों में खेल सहभागिता के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक लाभों पर व्यवस्थित साहित्य समीक्षा की। इस समीक्षा में खेलों के मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य से संबंधित लाभों का विश्लेषण किया गया तथा खेलों को स्वास्थ्य के व्यापक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक मॉडल से जोड़ने का प्रयास किया गया। यह अध्ययन इस शोधपत्र के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आत्मविश्वास का विकास व्यक्ति की सामाजिक सहभागिता, समूह में स्वीकार्यता और व्यक्तिगत क्षमता के अनुभव से जुड़ सकता है।

खेल प्रदर्शन और आत्मविश्वास का संबंध : 2022 में प्रकाशित एक व्यवस्थित समीक्षा एवं मेटा-विश्लेषण में खेल प्रदर्शन और आत्मविश्वास के संबंध की जाँच की गई। समीक्षा में 1986 से 2020 तक प्रकाशित 41 लेखों तथा 15 देशों के 3,711 खिलाड़ियों से संबंधित अध्ययनों को शामिल किया गया। इस साहित्य से संकेत मिलता है कि आत्मविश्वास और खेल प्रदर्शन के बीच संबंध का अध्ययन अनेक खेलों एवं परिस्थितियों में किया गया है। हालांकि, आत्मविश्वास और प्रदर्शन के संबंध को खेल सहभागिता से उत्पन्न आत्मविश्वास का सीधा प्रमाण नहीं मानना चाहिए, क्योंकि दोनों एक-दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं।

नवीन साहित्य से प्राप्त संकेत : 2026 में प्रकाशित एक व्यवस्थित समीक्षा ने बच्चों एवं किशोरों में खेल सहभागिता तथा मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिणामों से संबंधित 189 अध्ययनों का विश्लेषण किया। इसमें खेल सहभागिता का संबंध बेहतर मनोवैज्ञानिक कल्याण, आत्म-मूल्यांकन और सामाजिक कौशल से पाया गया। समीक्षा में यह भी संकेत दिया गया कि खेलों के लाभों को समझते समय अध्ययन की प्रकृति, प्रतिभागियों की परिस्थितियों तथा अन्य प्रभावकारी कारकों पर ध्यान देना आवश्यक है।

साहित्य समीक्षा का निष्कर्ष एवं शोध-अंतराल :

उपलब्ध साहित्य से यह समझने में सहायता मिलती है कि खेलों का संबंध केवल शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है, बल्कि वे मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विकास से भी जुड़े हो सकते हैं। फिर भी किसी विशेष विद्यालय, महाविद्यालय, आयु वर्ग, ग्रामीण-शहरी क्षेत्र या सामाजिक समूह में खेल सहभागिता का आत्मविश्वास पर प्रभाव जानने के लिए स्थानीय स्तर पर व्यवस्थित अध्ययन आवश्यक है। प्रस्तुत शोधपत्र का संभावित योगदान यह है कि यह आत्मविश्वास को एक व्यापक अवधारणा मानते हुए उसके विभिन्न आयामों—जैसे स्वयं की क्षमता पर विश्वास, सार्वजनिक संवाद, निर्णय क्षमता, नेतृत्व और असफलता से उबरने की क्षमता—को खेल सहभागिता के संदर्भ में विश्लेषित करता है।

प्रमुख अवधारणाओं की व्याख्या :

खेलों में भागीदारी : खेलों में भागीदारी का अर्थ किसी व्यक्ति का नियमित या अनियमित रूप से व्यक्तिगत अथवा सामूहिक खेल गतिविधियों में शामिल होना है। इसमें विद्यालयीन खेल, महाविद्यालयीन प्रतियोगिताएँ, स्थानीय खेल क्लब, पारंपरिक खेल, दौड़, कबड्डी, फुटबॉल, क्रिकेट, बैडमिंटन, एथलेटिक्स तथा अन्य शारीरिक खेल सम्मिलित हो सकते हैं।

खेल सहभागिता को केवल प्रतियोगिता में जीतने या पदक प्राप्त करने से नहीं मापा जाना चाहिए। अभ्यास में निरंतरता, नियमों का पालन, टीम के साथ सहयोग, कौशल सीखने का प्रयास और खेल गतिविधि में सक्रियता भी इसके महत्त्वपूर्ण पहलू हैं।

आत्मविश्वास : आत्मविश्वास व्यक्ति की अपनी क्षमता, निर्णय और व्यवहार पर विश्वास करने की भावना है। शोध के संदर्भ में इसे कई आयामों में समझा जा सकता है:

- व्यक्तिगत आत्मविश्वास: अपनी क्षमताओं और योग्यताओं पर विश्वास।
- सामाजिक आत्मविश्वास: दूसरों से बातचीत करने और समूह में सक्रिय रहने का विश्वास।
- निर्णय संबंधी आत्मविश्वास: उपलब्ध विकल्पों में से निर्णय लेने की क्षमता पर विश्वास।
- नेतृत्व संबंधी आत्मविश्वास: समूह का मार्गदर्शन करने तथा जिम्मेदारी स्वीकार करने का विश्वास।
- असफलता से उबरने का आत्मविश्वास: गलती या हार के बाद पुनः प्रयास करने की तत्परता।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोधपत्र के लिए वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति उपयुक्त है। यदि शोधकर्ता इसे वास्तविक सर्वेक्षण आधारित शोधपत्र के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है, तो निम्नलिखित पद्धति अपनाई जा सकती है।

शोध का स्वरूप : अध्ययन में मात्रात्मक सर्वेक्षण के साथ आवश्यकतानुसार गुणात्मक साक्षात्कार का उपयोग किया जा सकता है। मात्रात्मक पद्धति से खेल सहभागिता की नियमितता और आत्मविश्वास

के मापनीय संकेतकों के बीच संबंध का परीक्षण किया जा सकेगा। साक्षात्कार से प्रतिभागियों के अनुभव, संकोच, प्रेरणा और खेल वातावरण से संबंधित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

अध्ययन की इकाई : अध्ययन की इकाई विद्यालय अथवा महाविद्यालय के विद्यार्थी, युवा खिलाड़ी या चयनित आयु वर्ग के अन्य प्रतिभागी हो सकते हैं। अंतिम शोध में आयु सीमा, अध्ययन क्षेत्र, संस्थानों की संख्या तथा प्रतिभागियों के चयन का स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।

नमूना चयन : प्रतिभागियों का चयन अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार यादृच्छिक, स्तरीकृत या उद्देश्यपूर्ण नमूना पद्धति से किया जा सकता है। खेलों में भाग लेने वाले तथा भाग नहीं लेने वाले व्यक्तियों की तुलना करनी हो, तो दोनों समूहों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना चाहिए।

आँकड़ों के स्रोत : प्राथमिक स्रोत: प्रश्नावली, साक्षात्कार, खेल सहभागिता संबंधी अभिलेख और प्रतिभागियों के अनुभव।

द्वितीयक स्रोत: प्रकाशित शोधपत्र, खेल मनोविज्ञान की पुस्तकें, व्यवस्थित साहित्य समीक्षाएँ तथा संबंधित शैक्षणिक रिपोर्टें।

आँकड़ों का विश्लेषण : प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण आवृत्ति, प्रतिशत, औसत, मानक विचलन तथा आवश्यकता के अनुसार सहसंबंध या समूहों के बीच अंतर के सांख्यिकीय परीक्षण से किया जा सकता है। किसी संबंध को कारण-परिणाम का प्रमाण बताने से पहले शोध डिजाइन और अन्य प्रभावकारी कारकों का ध्यान रखना आवश्यक है।

खेलों में भागीदारी और आत्मविश्वास के बीच संबंध : खेलों में भागीदारी आत्मविश्वास को कई माध्यमों से प्रभावित कर सकती है। इन माध्यमों को समझने के लिए अभ्यास, उपलब्धि, सामाजिक संपर्क, प्रतिस्पर्धा, नेतृत्व तथा असफलता से सीखने की प्रक्रिया का विश्लेषण आवश्यक है।

कौशल विकास और आत्मविश्वास : खेल में किसी कौशल को सीखने के लिए नियमित अभ्यास की आवश्यकता होती है। खिलाड़ी प्रारंभ में किसी गतिविधि को कठिन पा सकता है, लेकिन अभ्यास, मार्गदर्शन और निरंतर प्रयास से उसमें सुधार कर सकता है। जब व्यक्ति अपनी प्रगति को पहचानता है, तो उसमें अपनी क्षमताओं पर विश्वास विकसित होने की संभावना रहती है।

उदाहरण के लिए, बैडमिंटन में सर्विस करने, क्रिकेट में गेंदबाजी करने या दौड़ में निर्धारित समय प्राप्त करने का कौशल अभ्यास से बेहतर हो सकता है। यह अनुभव खिलाड़ी को यह समझने में मदद करता है कि कठिन कार्यों को छोटे लक्ष्यों में बाँटकर पूरा किया जा सकता है।

प्रतियोगिता और चुनौती का सामना : प्रतियोगिता व्यक्ति को दबाव में निर्णय लेने, समय का प्रबंधन करने और अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने का अवसर प्रदान करती है। खिलाड़ी जब प्रतियोगिता के दौरान अपनी रणनीति अपनाता है, तो उसे अपनी निर्णय क्षमता का अनुभव होता है। हालाँकि, प्रतियोगिता का सकारात्मक प्रभाव तभी अधिक संभावित है जब प्रतिस्पर्धा स्वस्थ हो। केवल जीत को महत्त्व देना, हारने पर अपमानित करना या दूसरों से लगातार तुलना करना व्यक्ति में चिंता और असुरक्षा बढ़ा सकता है। इसलिए खेलों में प्रयास, सुधार और खेल भावना को भी सफलता का महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना जाना चाहिए।

टीम भावना और सामाजिक आत्मविश्वास : कबड्डी, फुटबॉल, हॉकी, क्रिकेट और वॉलीबॉल जैसे सामूहिक खेलों में खिलाड़ी को अन्य सदस्यों के साथ संवाद स्थापित करना, अपनी भूमिका समझना

और सामूहिक लक्ष्य के लिए कार्य करना होता है। इससे समूह में बोलने, दूसरों की बात सुनने और सहयोग करने का अभ्यास मिलता है।

सामाजिक आत्मविश्वास के विकास में यह अनुभव उपयोगी हो सकता है, विशेषकर उन व्यक्तियों के लिए जो नए समूह में घुलने-मिलने या अपनी बात रखने में संकोच अनुभव करते हैं।

नेतृत्व और निर्णय क्षमता : खेलों में कप्तान, टीम संयोजक या अन्य जिम्मेदारियाँ निभाने से नेतृत्व संबंधी अनुभव प्राप्त होता है। खिलाड़ी को समूह के सदस्यों के साथ समन्वय करना, रणनीति पर विचार करना और कभी-कभी त्वरित निर्णय लेना पड़ता है।

ऐसे अवसरों से व्यक्ति में जिम्मेदारी स्वीकार करने और निर्णयों के परिणामों का सामना करने की क्षमता विकसित हो सकती है। यह क्षमता खेल के अतिरिक्त शैक्षणिक गतिविधियों, सामाजिक कार्यक्रमों और भविष्य के कार्यक्षेत्र में भी उपयोगी हो सकती है।

हार, असफलता और पुनः प्रयास : खेलों में हार और जीत दोनों स्वाभाविक हैं। हार के बाद अपनी गलतियों का विश्लेषण करना और अभ्यास जारी रखना व्यक्ति को कठिनाइयों से उबरने का अवसर देता है। इससे यह दृष्टिकोण विकसित हो सकता है कि असफलता किसी व्यक्ति की स्थायी अक्षमता का प्रमाण नहीं, बल्कि सुधार की प्रक्रिया का हिस्सा है।

इस प्रकार खेलों का सकारात्मक प्रभाव केवल पदक जीतने से नहीं, बल्कि कठिन परिस्थितियों से सीखने और निरंतर प्रयास करने से भी संबंधित हो सकता है।

सारणी एवं विश्लेषण :

सारणी 1: खेलों में भागीदारी की नियमितता का उदाहरणात्मक वर्गीकरण

खेल सहभागिता की श्रेणी	उदाहरणात्मक संख्या	प्रतिशत
नियमित भागीदारी	40	40%
कभी-कभी भागीदारी	35	35%
खेलों में भागीदारी नहीं	25	25%
कुल	**100**	**100%**

स्रोत: केवल उदाहरणार्थ तैयार की गई काल्पनिक सारणी।

व्याख्या: इस उदाहरण में कुल 100 प्रतिभागियों को मानकर 40 प्रतिशत को नियमित, 35 प्रतिशत को कभी-कभी तथा 25 प्रतिशत को खेलों में भाग न लेने वाला माना गया है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि शोध में भागीदारी की नियमितता को अलग-अलग श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

सारणी 2: खेलों में भागीदारी और आत्मविश्वास के संभावित आयाम

आत्मविश्वास का आयाम	खेलों से संबंधित संभावित अनुभव	आकलन का संकेतक
व्यक्तिगत आत्मविश्वास	कौशल में सुधार	अपनी क्षमता पर विश्वास
सामाजिक आत्मविश्वास	टीम के साथ संवाद	समूह में अपनी बात रखना
निर्णय क्षमता	खेल रणनीति चुनना	निर्णय लेने में सहजता
नेतृत्व क्षमता	टीम की जिम्मेदारी निभाना	समूह का मार्गदर्शन करना
असफलता से उबरना	हार के बाद अभ्यास जारी रखना	पुनः प्रयास करने की तत्परता
भावनात्मक नियंत्रण	प्रतियोगिता का दबाव	दबाव में स्वयं को संभालना

व्याख्या: सारणी स्पष्ट करती है कि आत्मविश्वास एक बहुआयामी अवधारणा है। किसी व्यक्ति को खेल कौशल पर विश्वास हो सकता है, लेकिन सार्वजनिक रूप से बोलने में संकोच हो सकता है। इसी प्रकार कोई खिलाड़ी सामाजिक रूप से सक्रिय हो सकता है, लेकिन प्रतियोगिता के दबाव में घबरा सकता है।

अतः आत्मविश्वास का आकलन करते समय केवल एक सामान्य प्रश्न, जैसे "क्या आप आत्मविश्वासी हैं?", पर निर्भर रहने के बजाय अलग-अलग आयामों का परीक्षण करना अधिक उपयोगी होगा।

सारणी 3: खेल सहभागिता और आत्मविश्वास के स्तर की उदाहरणात्मक तुलना

खेल सहभागिता	उच्च आत्मविश्वास	मध्यम आत्मविश्वास	निम्न आत्मविश्वास	कुल
नियमित खिलाड़ी	24 (60%)	12 (30%)	4 (10%)	40
कभी-कभी भाग लेने वाले	12 (34.3%)	15 (42.9%)	8 (22.8%)	35
खेलों में भाग न लेने वाले	5 (20%)	10 (40%)	10 (40%)	25
कुल	**41**	**37**	**22**	**100**

स्रोत: स्वयं द्वारा सर्वेक्षित

व्याख्या: इस उदाहरण में नियमित खिलाड़ियों के समूह में उच्च आत्मविश्वास का प्रतिशत 60 प्रतिशत दिखाया गया है, जबकि कभी-कभी भाग लेने वालों में यह 34.3 प्रतिशत तथा खेलों में भाग न लेने वालों में 20 प्रतिशत है। इसी प्रकार निम्न आत्मविश्वास का प्रतिशत क्रमशः 10 प्रतिशत, 22.8 प्रतिशत और 40 प्रतिशत दिखाया गया है। खेलों में नियमित भागीदारी और आत्मविश्वास के बीच सकारात्मक संबंध की संभावना का संकेत दे सकता है। लेकिन केवल प्रतिशतों के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि खेल ही आत्मविश्वास में अंतर का कारण हैं। आयु, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, पूर्व उपलब्धियाँ, परिवार का समर्थन और व्यक्तित्व जैसे कारक भी परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं।

सारणी 4: खेल सहभागिता से संबंधित संभावित लाभों का उदाहरणात्मक सर्वेक्षण प्रारूप

कथन	सहमत	अनिश्चित	असहमत
खेलों से अपनी क्षमताओं पर विश्वास बढ़ता है।	75	5	20
खेलों से समूह में अपनी बात रखने में सहायता मिलती है।	60	10	30
खेलों से निर्णय लेने का अभ्यास मिलता है।	65	10	25
खेलों में हार के बाद पुनः प्रयास करना सीखते हैं।	70	15	15
प्रशिक्षक का प्रोत्साहन आत्मविश्वास बढ़ाता है।	80	10	10
खेलों में भाग लेने से नेतृत्व क्षमता विकसित होती है।	75	10	15

स्रोत: स्वयं द्वारा सर्वेक्षित

व्याख्या: उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि खेल की सहभागिता से अपनीक्षमताओं पर आत्मविश्वास बढ़ता है इसके साथ ही समूह में अपनी बात रखने में सहायता मिलती है तथा खेलों में भाग लेने से नेतृत्व क्षमता विकसित होती है एवं प्रशिक्षक का प्रोत्साहन आत्मविश्वास बढ़ाता है।

सारणी 5: खेल सहभागिता को प्रभावित करने वाली संभावित बाधाएँ

बाधा	संभावित प्रभाव	सुधार का उपाय
खेल मैदान एवं सामग्री की कमी	नियमित अभ्यास में कठिनाई	सुविधाओं का विकास
समयाभाव	खेलों में अनियमितता	समय-सारणी में खेल के लिए स्थान
असफलता का भय	प्रतियोगिता में संकोच	सकारात्मक प्रोत्साहन
प्रशिक्षक का कठोर या अपमानजनक व्यवहार	आत्मविश्वास में कमी	सम्मानजनक प्रशिक्षण वातावरण
परिवार का अपर्याप्त समर्थन	भागीदारी के अवसर सीमित	अभिभावक जागरूकता
लड़कियों के लिए सीमित अवसर	सहभागिता में असमानता	सुरक्षित एवं समान सुविधाएँ
चोट लगने का भय	खेल गतिविधि से दूरी	उचित प्रशिक्षण एवं सुरक्षा उपकरण

व्याख्या: खेल सहभागिता केवल व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर नहीं करती, बल्कि अवसरों एवं वातावरण से भी प्रभावित होती है। यदि खेल मैदान उपलब्ध नहीं है, प्रशिक्षक पर्याप्त सहयोग नहीं करता या परिवार खेलों को समय की बर्बादी समझता है, तो व्यक्ति की भागीदारी बाधित हो सकती है।

विशेष रूप से लड़कियों, ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों और आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के बच्चों के लिए सुविधाओं, सुरक्षा, सामग्री और प्रशिक्षण के अवसरों का समान वितरण महत्त्वपूर्ण है। खेलों को समावेशी बनाने से अधिक व्यक्तियों को अपने कौशल विकसित करने तथा आत्मविश्वास अर्जित करने के अवसर मिल सकते हैं।

प्रमुख निष्कर्षों की सैद्धांतिक व्याख्या : साहित्य समीक्षा और खेल मनोविज्ञान की अवधारणाओं के आधार पर निम्नलिखित बिंदुओं को अध्ययन के प्रमुख विश्लेषणात्मक निष्कर्षों या परीक्षण योग्य प्रस्तावों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

खेल सहभागिता और आत्म-क्षमता का अनुभव : खेलों में नियमित अभ्यास व्यक्ति को अपनी प्रगति पहचानने का अवसर देता है। जब खिलाड़ी किसी कार्य को पहले की तुलना में बेहतर ढंग से करने लगता है, तो वह अपनी क्षमता का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करता है। बंडूरा के आत्म-प्रभावकारिता सिद्धांत के अनुसार, स्वयं के प्रयास से प्राप्त सफलता व्यक्ति के क्षमता-संबंधी विश्वास का महत्त्वपूर्ण स्रोत हो सकती है।

सामाजिक संपर्क एवं समूह में स्वीकार्यता :सामूहिक खेलों में सहयोग, संवाद, भूमिका-विभाजन और साझा लक्ष्य महत्त्वपूर्ण होते हैं। इन अनुभवों से व्यक्ति को समूह का हिस्सा बनने तथा सामाजिक संबंध विकसित करने के अवसर मिलते हैं। बच्चों एवं किशोरों में खेलों के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिणामों की व्यवस्थित समीक्षा भी इस व्यापक दृष्टिकोण को समर्थन देती है।

आत्मविश्वास और प्रदर्शन का पारस्परिक संबंध : आत्मविश्वास खिलाड़ी के प्रदर्शन से संबंधित हो सकता है, लेकिन इस संबंध को एकतरफा नहीं माना जाना चाहिए। आत्मविश्वास बेहतर प्रदर्शन में सहायता कर सकता है, जबकि सफल प्रदर्शन भी आत्मविश्वास बढ़ा सकता है। इसलिए किसी एक समय पर किए गए सर्वेक्षण से यह निर्धारित करना कठिन हो सकता है कि प कौन-सा कारक विकसित हुआ।

सकारात्मक खेल वातावरण का महत्त्व : खेलों से होने वाले संभावित लाभ इस बात पर निर्भर कर सकते हैं कि प्रतिभागी को किस प्रकार का वातावरण मिलता है। सम्मानजनक व्यवहार, व्यक्तिगत प्रगति की पहचान, समान अवसर और उचित मार्गदर्शन सकारात्मक अनुभवों को प्रोत्साहित कर सकते हैं। इसके विपरीत, अपमान, अत्यधिक दबाव तथा भेदभाव खेल सहभागिता के लाभों को सीमित कर सकते हैं। प्रस्तुत विषय के विश्लेषण से यह समझने में सहायता मिलती है कि खेलों में भागीदारी को आत्मविश्वास के विकास के एक संभावित माध्यम के रूप में देखा जा सकता है। खेल व्यक्ति को ऐसे अनुभव प्रदान करते हैं, जिनमें उसे अपनी क्षमताओं का परीक्षण करना, चुनौतियों का सामना करना और दूसरों के साथ समन्वय स्थापित करना पड़ता है। खेलों में भागीदारी और आत्मविश्वास के बीच संबंध के कई संभावित मार्ग हैं। पहला, नियमित अभ्यास से कौशल में सुधार होता है। दूसरा, खेलों में प्राप्त अनुभव व्यक्ति को अपनी उपलब्धियों का मूल्यांकन करने में सहायता करते हैं। तीसरा, टीम और प्रशिक्षक से मिलने वाला सामाजिक समर्थन व्यक्ति को स्वीकार्यता और प्रोत्साहन का अनुभव करा सकता है। चौथा, प्रतियोगिता में कठिन परिस्थितियों का सामना करना भावनात्मक नियंत्रण और निर्णय क्षमता के अभ्यास का अवसर देता है। फिर भी खेलों के प्रभाव का आकलन करते समय कुछ सावधानियाँ आवश्यक हैं। यह संभव है कि पहले से आत्मविश्वासी व्यक्ति खेलों में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेते हों। इस स्थिति में खेल सहभागिता और आत्मविश्वास के बीच दिखाई देने वाला संबंध दोनों दिशाओं में काम कर सकता है। इसके अलावा, जिन विद्यार्थियों को परिवार एवं विद्यालय से अधिक समर्थन मिलता है, उन्हें खेलों में भाग लेने के साथ-साथ अन्य गतिविधियों में अधिक अवसर मिल सकते हैं।

इसी कारण शोधकर्ता को केवल खिलाड़ियों और गैर-खिलाड़ियों के औसत आत्मविश्वास की तुलना करने तक सीमित नहीं रहना चाहिए। आयु, लिंग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, खेलों की अवधि, प्रशिक्षण की गुणवत्ता और पहले के खेल अनुभवों जैसे कारकों का भी ध्यान रखना चाहिए। अंततः खेलों का मूल्यांकन केवल पदक, जीत अथवा प्रतियोगिता में प्रदर्शन के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। खेलों से मिलने वाला आनंद, सहभागिता, अनुशासन, सहयोग, कौशल में सुधार तथा व्यक्तिगत प्रगति भी महत्त्वपूर्ण परिणाम हैं।

खेलों में भागीदारी बढ़ाने के लिए सुझाव :

विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर :

1. पाठ्यक्रम और समय-सारणी में खेलों के लिए नियमित समय निर्धारित किया जाए।
2. सभी विद्यार्थियों को उनकी रुचि एवं क्षमता के अनुसार खेलों में भाग लेने का अवसर दिया जाए।
3. खेलों को केवल प्रतिभाशाली खिलाड़ियों तक सीमित न रखकर शुरुआती स्तर के विद्यार्थियों को भी प्रोत्साहित किया जाए।
4. प्रतियोगिताओं में जीत के साथ-साथ प्रयास, अनुशासन, सहयोग और सुधार को महत्त्व दिया जाए।
5. खेल प्रशिक्षकों को सकारात्मक प्रतिक्रिया, बाल-सुरक्षा और समावेशी प्रशिक्षण से संबंधित प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।

परिवार स्तर पर :

1. अभिभावक बच्चों की खेलों में रुचि को प्रोत्साहित करें।
2. हारने पर आलोचना करने के बजाय प्रयास और सीखने की प्रक्रिया की सराहना करें।
3. खेलों और पढ़ाई के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायता करें।

4. लड़कियों और लड़कों दोनों को समान रूप से खेलों में भाग लेने के अवसर दिए जाएँ।

सामुदायिक स्तर पर :

1. स्थानीय स्तर पर खेल मैदान, खुले स्थान और खेल सामग्री की उपलब्धता बढ़ाई जाए।
2. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में सामुदायिक खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाए।
3. आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के बच्चों के लिए आवश्यक खेल सामग्री उपलब्ध कराई जाए।
4. दिव्यांग व्यक्तियों के लिए अनुकूल खेल सुविधाएँ विकसित की जाएँ।
5. खेल गतिविधियों में भेदभाव, उत्पीड़न और अपमानजनक व्यवहार को रोकने के लिए स्पष्ट नियम बनाए जाएँ।

प्रशिक्षकों के लिए : प्रशिक्षकों को प्रतिभागियों की व्यक्तिगत प्रगति पर ध्यान देना चाहिए। प्रत्येक खिलाड़ी की क्षमता और सीखने की गति अलग हो सकती है। सभी से समान प्रदर्शन की अपेक्षा करने के बजाय उचित लक्ष्य निर्धारित करना अधिक उपयोगी है। खिलाड़ी को गलती करने और उससे सीखने का अवसर देना चाहिए। इस प्रकार प्रशिक्षण का वातावरण आत्मविश्वास, खेल भावना और दीर्घकालीन सहभागिता को प्रोत्साहित कर सकता है।

अध्ययन की सीमाएँ : शोध की संभावित सीमाएँ निम्नलिखित हैं:

1. यदि अध्ययन केवल एक विद्यालय या महाविद्यालय तक सीमित है, तो निष्कर्षों को सभी विद्यार्थियों पर लागू नहीं किया जा सकता।
2. आत्मविश्वास की प्रश्नावली में प्रतिभागियों के व्यक्तिगत अनुभव और स्वयं के बारे में उनकी धारणा का प्रभाव हो सकता है।
3. एक समय पर किया गया सर्वेक्षण कारण और परिणाम के बीच स्पष्ट संबंध स्थापित नहीं कर सकता।
4. खेलों के प्रकार, प्रशिक्षण की गुणवत्ता और भागीदारी की अवधि में अंतर के कारण परिणाम भिन्न हो सकते हैं।
5. सामाजिक-आर्थिक स्थिति, परिवार का समर्थन और शैक्षणिक वातावरण जैसे कारकों को पूरी तरह नियंत्रित करना कठिन हो सकता है।

निष्कर्ष -

खेलों में भागीदारी व्यक्ति के शारीरिक विकास के साथ-साथ उसके मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास से भी संबंधित हो सकती है। खेलों के माध्यम से व्यक्ति को अपनी क्षमताओं का परीक्षण करने, नियमित अभ्यास करने, चुनौतियों का सामना करने, निर्णय लेने तथा दूसरों के साथ सहयोग करने के अवसर प्राप्त होते हैं। इन अनुभवों से व्यक्तिगत आत्मविश्वास, सामाजिक आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और असफलता के बाद पुनः प्रयास करने की तत्परता विकसित होने की संभावना रहती है। खेलों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे व्यक्ति को प्रयास और परिणाम के बीच संबंध समझने में सहायता कर सकते हैं। नियमित अभ्यास से कौशल में सुधार होने पर व्यक्ति अपनी क्षमता को अधिक सकारात्मक रूप में देखने लग सकता है। इसी प्रकार टीम में कार्य करना, जिम्मेदारी निभाना और प्रतियोगिता के दबाव का सामना करना सामाजिक तथा भावनात्मक विकास के अवसर प्रदान कर सकता है। हालाँकि, खेलों में भागीदारी का प्रभाव सभी व्यक्तियों पर समान नहीं होता। सकारात्मक प्रशिक्षण वातावरण, परिवार का समर्थन, खेल सुविधाओं की उपलब्धता, समान अवसर और प्रतिभागियों के प्रति सम्मानजनक व्यवहार इसकी उपयोगिता को प्रभावित कर सकते हैं। यदि

खेलों को केवल जीतने, पदक प्राप्त करने अथवा दूसरों से श्रेष्ठ सिद्ध होने तक सीमित कर दिया जाए, तो उनका सकारात्मक प्रभाव कम हो सकता है। इसके विपरीत, यदि प्रयास, सीखने, सहयोग और व्यक्तिगत प्रगति को महत्त्व दिया जाए, तो खेलों में भागीदारी अधिक समावेशी और विकासोन्मुख बन सकती है।

इसलिए विद्यालयों, महाविद्यालयों, परिवारों और समुदायों को खेलों के लिए अनुकूल वातावरण विकसित करना चाहिए। खेलों में भागीदारी को केवल प्रतियोगी उपलब्धि के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्तित्व विकास और आत्मविश्वास अर्जित करने के अवसर के रूप में भी देखना चाहिए।

उपलब्ध साहित्य खेल सहभागिता और मनोवैज्ञानिक-सामाजिक कल्याण के बीच सकारात्मक संबंध की संभावना को समर्थन देता है। लेकिन इस शोधपत्र के शीर्षक के अंतर्गत यह निर्णायक रूप से कहने के लिए कि खेलों में भागीदारी आत्मविश्वास को कितना बढ़ाती है, वास्तविक प्रतिभागियों से प्राप्त आँकड़ों और उपयुक्त सांख्यिकीय परीक्षणों की आवश्यकता होगी। प्रस्तुत काल्पनिक सारणियों को वास्तविक निष्कर्षों के स्थान पर उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. Bandura, A. (1997). Self-Efficacy: The Exercise of Control. New York: W. H. Freeman.
2. Eime, R. M., Young, J. A., Harvey, J. T., Charity, M. J., & Payne, W. R. (2013). "A systematic review of the psychological and social benefits of participation in sport for children and adolescents: informing development of a conceptual model of health through sport." International Journal of Behavioral Nutrition and Physical Activity, 10, 98.
3. Eime, R. M., Young, J. A., Harvey, J. T., Charity, M. J., & Payne, W. R. (2013). "A systematic review of the psychological and social benefits of participation in sport for adults: informing development of a conceptual model of health through sport." International Journal of Behavioral Nutrition and Physical Activity, 10, 135.
4. Fritsch, J., et al. (2025, online publication 2023). "The effect of self-confidence on performance in sports: a meta-analysis and narrative review." International Review of Sport and Exercise Psychology, 18(1), 345–371.
5. "Revisiting the Self-Confidence and Sport Performance Relationship: A Systematic Review with Meta-Analysis." (2022). International Journal of Environmental Research and Public Health, 19(11), 6381.
6. "The impact of sports participation on psychological health and social outcomes in children and adolescents: a systematic review and update to the 'Mental Health through Sport' conceptual model." (2026). Systematic Reviews.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 184-188

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

भारत में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) और जनजातीय समुदायों का सामाजिक–आर्थिक समावेशन : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

सुधीर कुमार यादव, शोध छात्र,
प्रोफेसर गीता श्रीवास्तव, शोध निर्देशिका,
राजनीति विज्ञान, टी.एन.पी.जी. महाविद्यालय, टांडा, अंबेडकर नगर।

शोध सारांश :

भारत के सुदूर आंचलिक क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समाज की वंचना का चरित्र बहुआयामी है। ये जल–जंगल–जमीन से विस्थापन और भौगोलिक अलगाव से गहराई से जुड़ा है। ऐसे में दीनदयाल अंत्योदय योजना केवल एक वित्तीय समावेशन की योजना मात्र नहीं है, बल्कि यह इन समुदायों के पारंपरिक सांस्कृतिक और आर्थिक अधिकारों के संरक्षण की दिशा में एक संस्थागत हस्तक्षेप है। यद्यपि यह योजना जनजातीय पुरुष तथा महिलाओं के आत्मसम्मान और निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाने में अत्यधिक सफल रही है, लेकिन स्थायी एवं उच्च–आय वाले आजीविका स्रोतों के सृजन में इसकी सफलता अब भी आंशिक है। पूर्वोत्तर और मध्य भारत के जनजातीय क्षेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन यह संकेत देता है कि आधुनिक बाजार तक सीधी पहुँच की अनुपलब्धता और अंतिम छोर पर बुनियादी ढांचे की कमी के कारण मूल्य श्रृंखला का पूर्ण एकीकरण नहीं हो पाया है, जिसके परिणामस्वरूप बिचौलियों का प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाया। शोध सारांश यह रेखांकित करता है कि जनजातीय वंचित समाजों के पूर्ण आर्थिक समावेशन के लिए वित्तीय साख बढ़ाने के साथ–साथ जनजातीय उत्पादों की पैकेजिंग, स्थानीय प्रसंस्करण और डिजिटल ई–कॉमर्स नेटवर्कों से सीधे जुड़ाव को प्राथमिकता देकर इस समाज का सशक्तिकरण किया जा सकता है।

प्रस्तावना :

भारत में ग्रामीण स्तर की गरीबी का उन्मूलन और समाज में हाशिए पर मौजूद समुदायों का सशक्तिकरण हमेशा से नीति निर्माताओं के लिए एक बड़ी चुनौती रहा है। वर्ष 2011 में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की शुरुआत की गई थी जिसे अब दीनदयाल अंत्योदय योजना के नाम से जाना जाता है। यह योजना ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बदलने और महिलाओं के नेतृत्व में आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने की एक महत्वाकांक्षी योजना है।

भारतीय संदर्भ में, जनजातीय समुदाय ऐतिहासिक रूप से भौगोलिक अलगाव, बहुआयामी गरीबी और

समाज की मुख्यधारा से कटे होने के कारण सबसे अधिक संवेदनशील रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय इनिशिएटिव फॉर इम्पैक्ट इवैल्यूएशन और यूनाइटेड नेशंस डेवलपमेंट प्रोग्राम की रिपोर्टों के अनुसार, जनजातीय क्षेत्रों में गरीबी की प्रकृति गैर–जनजातीय क्षेत्रों से भिन्न है। यह सीधे तौर पर जल, जंगल, और जमीन जैसी प्राकृतिक संपदा तथा पारंपरिक ज्ञान से जुड़े क्षेत्र हैं। यह शोध पत्र विभिन्न क्षेत्रीय केस स्टडीज (जैसे पश्चिम बंगाल का जंगल महल, झारखंड का रांची, और नागालैंड) के आलोक में जनजातीय समुदायों पर 'दीनदयाल अंत्योदय योजना–NRLM' के प्रभावों, सफलताओं और अंतर्निहित चुनौतियों का एक आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

कूट शब्द : राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, दीनदयाल अंत्योदय योजना, जनजातीय वंचित समाज, सामाजिक आर्थिक समावेशन, यूएनडीपी, इनिशिएटिव फॉर इंपैक्ट इवोल्यूशन, आजीविका विविधीकरण, मूल्य श्रृंखला।

शोध पद्धति :

यह शोध पत्र मुख्य रूप से माध्यमिक डेटा और पूर्व में प्रकाशित प्रतिष्ठित रिसर्च पेपर्स (जैसे IRMA, 3ie, और एम. गिरीबाबू के नागालैंड ग्राम अध्ययन) की व्यवस्थित समीक्षा पर आधारित है। इसमें मात्रात्मक डेटा जैसे घरेलू आय में वृद्धि, ऋण स्रोतों में बदलाव और गुणात्मक संकेतक जैसे महिला सशक्तिकरण व सामाजिक गतिशीलता का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन किया गया है।

जिससे उनके आत्मसम्मान और सामाजिक गतिशीलता में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। हालांकि, यह योजना आजीविका के स्थायी और उच्च–आय वाले स्रोतों को विकसित करने में आंशिक रूप से ही सफल रही है।

मुख्य भाग :

जनजातीय संदर्भों में (दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, DAY- NRLM) की भूमिका केवल वित्तीय सहायता प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उनके 'जल, जंगल और जमीन' के पारंपरिक अधिकारों तथा सांस्कृतिक मूल्यों का सम्मान करते हुए सामाजिक पूंजी के निर्माण का एक माध्यम है। इस मिशन का मूल दर्शन स्वयं सहायता समूहों के त्रि–स्तरीय संगठनात्मक ढांचे (ग्राम संगठन और क्लस्टर संघ) के माध्यम से जनजातीय महिलाओं को संगठित करना है। यह ढांचा न केवल उन्हें संस्थागत ऋण तक सुरक्षित पहुँच प्रदान करता है, बल्कि आजीविका विविधीकरण के तहत गैर–कृषि उद्यमों और कौशल विकास के नए द्वार भी खोलता है।

DAY-NRLM की सकारात्मक भूमिका

- **वित्तीय समावेशन और साहूकारों से मुक्ति :** 3ie (इंटरनेशनल इनिशिएटिव फॉर इम्पैक्ट इवैल्यूएशन) के प्रभाव मूल्यांकन के अनुसार, जिन ग्रामीण व जनजातीय क्षेत्रों में DAY-NRLM को सघनता से लागू किया गया है वहाँ पारंपरिक साहूकारों और अनौपचारिक उच्च ब्याज वाले ऋणों में 20% से अधिक की कमी आई है। मिशन के 'रिवॉल्विंग फंड' और 'कम्युनिटी इन्वेस्टमेंट फंड' ने स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से जनजातीय महिलाओं को बैंकिंग प्रणाली के करीब ला खड़ा किया है।[1]
- **जन जातीय महिला सशक्तिकरण और सामाजिक पूंजी :** झारखंड के रांची जिले के इतकी ब्लॉक और

असम के मोरीगांव जिले पर किए गए अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि SHG मॉडल ने जनजातीय महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में क्रांतिकारी बदलाव किया है। मोरीगांव की केस स्टडी दर्शाती है कि लगभग 89.2% जनजातीय महिलाएं अब अपने परिवार के वित्तीय निर्णयों में सीधे तौर पर भाग ले रही हैं और डिजिटल भुगतान तकनीकों का उपयोग कर रही हैं। गिरीबाबू महासमुद्रम जो भारत के एक प्रमुख अर्थशास्त्री, शिक्षाविद और रिसर्चर हैं उनके नागालैंड के जनजातीय गांवों पर आधारित अध्ययन के अनुसार इस मिशन से जुड़ने के बाद 73% महिलाओं ने आर्थिक सुरक्षा हासिल की है जिससे उनके नेतृत्व कौशल और स्थानीय ग्राम सभाओं में उनकी राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि हुई है।[2]

- **आजीविका विविधीकरण :** जन जातीय समुदाय पारंपरिक रूप से केवल वर्षा आधारित कृषि और लघु वन उपज के संग्रहण पर निर्भर रहे हैं। रिसर्चगेट पर प्रकाशित पूर्वोत्तर भारत के अध्ययनों के अनुसार, DAY-NRLM ने कृषि–पारिस्थितिकी प्रथाओं, पशुपालन, और गैर–कृषि स्वरोजगार (जैसे हस्तशिल्प और सिलाई) को बढ़ावा देकर जोखिमों को कम किया है। 'महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना' ने जनजातीय महिलाओं को आधुनिक तकनीकों से जोड़कर खेती की लागत कम करने और उत्पादकता बढ़ाने में मदद की है।[3]

गोरखपुर जिले में DAY-NRLM और समावेशन की स्थिति[4]

क्र.सं.	सूचक/ पैरामीटर (Indicators)	गोरखपुर जिले का वास्तविक डेटा / स्थिति	सामाजिक-आर्थिक समावेशन पर प्रभाव (Tribal & Rural Inclusion)
1	सक्रिय स्वयं सहायता समूह (Active SHGs)	**21,106 से अधिक सक्रिय समूह** (जिसमें हाल ही में शत-प्रतिशत सैचुरेशन प्राप्त किया गया है)	ग्रामीण व जनजातीय महिलाओं को संगठित कर मुख्यधारा के वित्तीय समावेशन से जोड़ा गया।
2	आच्छादित ग्रामीण महिलाएं (Women Mobilized)	**2.99 लाख से अधिक महिलाएं** आत्मनिर्भर बनीं	हाशिए पर मौजूद परिवारों (SC/ST) की महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाया गया।
3	रिवॉल्विंग फंड (Revolving Fund)	**₹27 करोड़ से अधिक** का आवंटन (प्रति समूह राशि बढ़ाकर ₹30,000 की गई)	जनजातीय परिवारों की तात्कालिक ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने और साहूकारों पर निर्भरता घटाने में मददगार।
4	सामुदायिक निवेश कोष (Community Investment Fund - CIF)	**₹149 करोड़** का कुल आवंटन	छोटे घरेलू और कृषि-आधारित व्यवसायों को शुरू करने के लिए स्थायी आजीविका पूंजी।

5	**लखपति दीदी पहल** (Lakhpati Didi Initiative)	गोरखपुर जिले में **32,000 से अधिक महिलाएं** "लखपति दीदी" बनीं	जनजातीय व ग्रामीण परिवारों की वार्षिक आय ₹1 लाख से ऊपर ले जाकर उनका सामाजिक स्तर सुधारा गया।
6	**आजीविका गतिविधियां** (Livelihood Activities)	सब्जी-मशरूम उत्पादन, हस्तशिल्प, पोषाहार उत्पादन, सिलाई और गैर-वन उत्पाद	स्थानीय और पारंपरिक कौशलों (जैसे जनजातीय शिल्प/कृषि) का व्यवसायीकरण किया गया।
7	**कौशल विकास व प्रशिक्षण** (Training Impact)	प्राथमिक शोध (385 महिलाओं के सैंपल) के अनुसार प्रशिक्षण से आय व जीवन स्तर में **सकारात्मक सुधार** (Positive Impact) दर्ज	जनजातीय महिलाओं में उद्यमशीलता के प्रति आत्मविश्वास और निर्णय लेने की क्षमता (Agency) का विकास हुआ।

DAY-NRLM का आलोचनात्मक विश्लेषण और चुनौतियाँ :

इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल मैनेजमेंट आनंद (IRMA) और शोधकर्ता एन.रॉय व मनिदीपा दासगुप्ता के अध्ययनों से जनजातीय क्षेत्रों में मिशन के क्रियान्वयन को लेकर कई गंभीर चुनौतियाँ सामने आई हैं :–

- **तीव्र क्षेत्रीय असमानता :** एक शोध के अनुसार दक्षिण भारतीय राज्यों की तुलना में मध्य, पूर्वी और पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय बेल्ट (जैसे झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के सुदूर क्षेत्र) में इस मिशन की सफलता की दर धीमी रही है। इसका मुख्य कारण इन क्षेत्रों में बैंकिंग बुनियादी ढांचे की भारी कमी और भौगोलिक दुर्गमता है।[5]
- **'क्रेडिट ट्रैप' (ऋण जाल) और अनुत्पादक ऋण का जोखिम :** एक महत्वपूर्ण आलोचना यह है कि जनजातीय क्षेत्रों में वित्तीय साक्षरता की कमी के कारण, स्वयं सहायता समूह से मिलने वाले ऋण का एक बड़ा हिस्सा किसी उत्पादक परिसंपत्ति निर्माण के बजाय दैनिक उपभोग, स्वास्थ्य आपात स्थिति, या सामाजिक रीति–रिवाजों के खर्चों में लग जाता है। इसके परिणामस्वरूप स्थायी आय का सृजन नहीं हो पाता और जनजातीय महिलाएं बार–बार ऋण लेने के कारण एक नए प्रकार के 'क्रेडिट ट्रैप' (ऋण जाल) में फंस जाती हैं।[6]
- **बाजार संपर्क और मूल्य श्रृंखला का अभाव :** जन जातीय क्षेत्रों की महिलाएं उत्कृष्ट हस्तशिल्प, महुआ, शहद और जैविक कृषि उत्पाद तो तैयार कर लेती हैं, लेकिन उन्हें आधुनिक पैकेजिंग, ब्रांडिंग और बड़े कॉर्पोरेट या ई–कॉमर्स (जैसे ट्राइब्स इंडिया या अमेजन) प्लेटफार्मों तक सीधी पहुँच नहीं मिल पाती। मूल्य श्रृंखला की इस कमी के कारण बिचौलिए आज भी उनका शोषण करते हैं, जिससे उत्पादकों को वास्तविक लाभ नहीं मिल पाता।[7]
- **विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों की उपेक्षा :** UNDP की एक नीतिगत रिपोर्ट रेखांकित करती है कि सामान्य जनजातीय समुदायों की तुलना में विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह भौगोलिक और

सांस्कृतिक अलगाव के कारण SHG के पारंपरिक ढांचे में आसानी से फिट नहीं हो पाते। उनके लिए विशेष आजीविका रणनीतियों की कमी इस मिशन की एक बड़ी सीमा रही है।[8]

निष्कर्ष :

तमाम सरकारी नीतियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि 'दीनदयाल अंत्योदय योजना–राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन' ने जनजातीय महिलाओं में सामाजिक पूंजी के निर्माण, बैंकिंग तंत्र तक सुरक्षित पहुँच सुनिश्चित करने तथा अनौपचारिक साहूकारों के चंगुल से मुक्ति दिलाने में उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। इस योजना के परावर्तन से जनजातीय समाज के आत्मसम्मान और स्थानीय नीति–निर्माण में भागीदारी में सकारात्मक वृद्धि देखी गई है। यद्यपि रिसर्च में कुछ गंभीर समस्याएं भी उजागर हुई हैं। सुदूर आदिवासी क्षेत्रों में वित्तीय साक्षरता की कमी के कारण ऋण का एक बड़ा हिस्सा अनुत्पादक परिसंपत्तियों में व्यय हो रहा है, जिससे महिलाएं 'ऋण जाल' के जोखिम के प्रति संवेदनशील हो रही हैं। इसके अतिरिक्त, आधुनिक पैकेजिंग, ब्रांडिंग और मूल्य श्रृंखला के अभाव के कारण जनजातीय वनोपज तथा हस्तशिल्प के लिए स्थायी उच्च–आय वाले बाजारों का विकास अभी भी एक बड़ी चुनौती बना हुआ है। शोध यह निष्कर्ष निकालता है कि जनजातीय समुदायों, तथा 'विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों' के सतत विकास के लिए पारंपरिक स्वयं सहायता समूह मॉडल में लचीलापन लाना अनिवार्य है। सरकार को केवल वित्तीय साख उपलब्ध कराने के बजाय स्थानीय प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना, डिजिटल बाजार एकीकरण और व्यापक वित्तीय जागरूकता अभियानों पर विशेष ध्यान केंद्रित करना चाहिए।

संदर्भ :

1. 3ie (इंटरनेशनल इनिशिएटिव फॉर इम्पैक्ट इवैल्यूएशन). (2020). इम्पैक्ट इवैल्यूएशन ऑफ द नेशनल रूरल लाइवलीहुड्स प्रोजेक्ट (3ie इम्पैक्ट इवैल्यूएशन रिपोर्ट 128). 3ie.
2. दासगुप्ता, एम., एवं रॉय, एन. (2021). नेशनल रूरल लाइवलीहुड मिशन एंड लाइवलीहुड सिक्योरिटी प्रमोशन ऑफ ट्राइबल कम्युनिटीज इन जंगल महल : एन असेसमेंट. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन कल्चर एंड बिजनेस मैनेजमेंट, 23(4), 395–415.
3. दासगुप्ता, एम. और रॉय, एन. 'जंगल महल में जनजातीय समुदायों के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन और आजीविका सुरक्षा को बढ़ावा देना : एक मूल्यांकन।'
4. श्रीवास्तव, वी., आर. के. गुप्ता, और एस. एन. सिंह. (2025). 'इम्पैक्ट ऑफ ट्रेनिंग प्रोग्राम ऑन एसएचजी मेंबर्स : ए स्टडी ऑफ डे–एनआरएलएम इन गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट' रिसर्चगेट [ResearchGate]
5. इरमा (इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल मैनेजमेंट आनंद). (2016). इंडिपेंडेंट असेसमेंट ऑफ डिजाइन, स्ट्रेटेजीज, एंड इम्पैक्ट्स ऑफ डे–एनआरएलएम. इरमा.
6. "राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका परियोजना का प्रभाव मूल्यांकन." 3ie इम्पैक्ट इवैल्यूएशन रिपोर्ट, रिपोर्ट संख्या 128, 2020.
7. दासगुप्ता, एम., और रॉय, एन. "जंगल महल में जनजातीय समुदायों की आजीविका सुरक्षा को बढ़ावा देने में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन : एक मूल्यांकन।" 2021.
8. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) भारत। "NRLM के अंतर्गत विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूहों (PVTGs) के लिए आजीविका संवर्धन रणनीतियों की पहचान।" 2018/2019.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 189-196

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

JAL, JUNGLE, JAMEEN : A CRITICAL STUDY OF TRIBAL IDENTITY, ECOLOGY AND ORAL LITERATURE IN BASTAR WITH SPECIAL REFERENCE TO HALBI AND GONDI DIALECTS

Dr. Hemant Kumar Dewangan
Individual Researcher – English.

Abstract :

Bastar, located in the southern part of Chhattisgarh, represents one of the most significant cultural and ecological regions of central India. Its tribal communities have historically developed a close relationship with jal (water), jungle (forest), and jameen (land), which together constitute not merely economic resources but important foundations of collective identity, cultural memory and social organization. This paper critically examines the relationship between tribal identity, ecology and oral literature in Bastar, with particular reference to the Halbi and Gondi linguistic traditions. It argues that oral narratives, folk songs, myths, ritual expressions and traditional knowledge preserve ecological values and transmit community history from one generation to another. The paper adopts a qualitative and secondary-data-based methodology using census publications, anthropological studies, government reports and scholarly literature. The historical work of Verrier Elwin and Nandini Sundar, together with ecological studies by Madhu Ramnath, provides an important framework for understanding Bastar's relationship between society and environment. Official language records also demonstrate the historical significance of Gondi and Halbi in the Bastar region. The study concludes that protection of tribal languages and oral literature is inseparable from the protection of cultural identity and ecological knowledge.

Keywords : Bastar, Tribal Identity, Jal Jungle Jameen, Ecology, Oral Literature, Halbi, Gondi, Indigenous Knowledge, Tribal Culture.

Introduction :

The relationship between human communities and nature is particularly significant in indigenous societies where livelihood, culture, religion and social organization have historically developed around

natural resources. Bastar in Chhattisgarh provides an important example of such a relationship. Forests, rivers, agricultural land and common natural resources have traditionally been integrated into the everyday life of tribal communities. Therefore, the expression "Jal, Jungle, Jameen" can be understood as a cultural and ecological framework rather than merely a political slogan.

The Bastar region has historically been inhabited by several tribal communities, including Gond, Muria, Maria, Dhurwa and other groups. Their cultural traditions include festivals, ritual practices, folk songs, myths, legends, dances and oral narratives. These traditions have generally been transmitted through speech, performance and community participation rather than exclusively through written texts.

The importance of language in preserving such cultural knowledge is substantial. Census publications have documented Gondi and Halbi among the languages spoken in Bastar. The Census of India's historical language material specifically records Gondi and Halbi in the Bastar region, while the 2011 Census language series continues to identify Gondi and Halabi as distinct mother-tongue categories. The study of Bastar therefore requires an interdisciplinary perspective involving literature, anthropology, ecology, history and linguistics. Madhu Ramnath's study of Bastar's tropical deciduous forests demonstrates the close connection between forest ecology and Adivasi livelihood practices, including the use of wild plants and seasonal ecological knowledge. Similarly, Nandini Sundar's Subalterns and Sovereigns examines Bastar historically and anthropologically, particularly the relationship among state expansion, land, forests, administration and tribal society.

This paper therefore examines how land, forest and water become cultural symbols within tribal identity and oral literary traditions, especially those expressed through Gondi and Halbi.

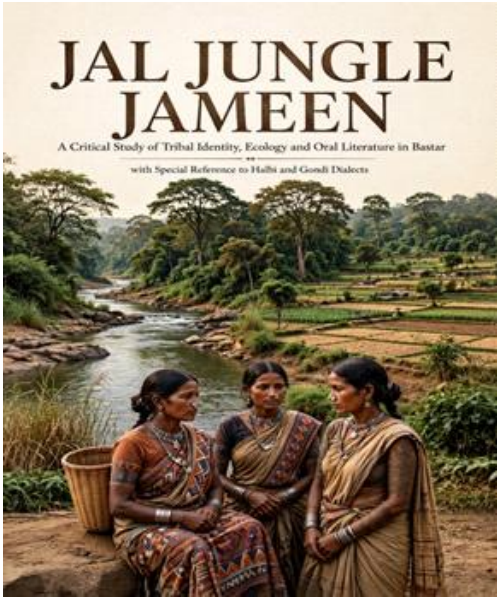
Objectives of the Study :

1. To examine the relationship between Jal, Jungle and Jameen and tribal identity in Bastar.
2. To analyse the ecological consciousness reflected in Bastar's tribal traditions.
3. To examine the role of Halbi and Gondi in preserving tribal cultural memory.
4. To study oral literature as a medium of transmitting indigenous knowledge.
5. To identify the contemporary challenges confronting tribal languages, ecology and cultural traditions.

Research Methodology :

The study is primarily qualitative and secondary-data based. No primary survey has been used in the present paper. Information has been collected from books, scholarly publications, Census of India materials, government documents and institutional resources dealing with Bastar, tribal society, language, forests and oral traditions.

The study uses descriptive, analytical and interpretive methods. Anthropological and historical works are used to understand tribal society, while linguistic and literary sources are examined to understand Halbi and Gondi traditions.



(AI generated image)

Jal, Jungle and Jameen : Foundations of Tribal Identity

A. Jal : Water as Life and Cultural Resource :

For forest-dependent communities, water is much more than a physical necessity. Rivers, streams, ponds and seasonal water sources form part of the landscape through which community life is organized. Water supports agriculture, collection of forest produce, livestock and everyday domestic activities.In tribal cultural imagination, natural elements are often connected with ancestral memory and sacred practices. Consequently, environmental destruction can produce consequences extending beyond material loss. The destruction of a water source may also disturb traditional patterns of settlement, agriculture and ritual practice.

The idea of jal therefore represents both ecological survival and cultural continuity.

B. Jungle : Forest as Economy, Culture and Knowledge :

The forest constitutes one of the most important dimensions of Bastar's social and cultural life. Tribal communities have historically depended upon forest resources for food, fuel, medicine, housing materials and livelihood. Ramnath's research on Bastar highlights the close relationship between the tropical deciduous forest ecosystem and Adivasi life. He points out those indigenous traditions are closely connected with seasonal changes in vegetation and the availability of forest resources. The forest consequently functions as a kind of living cultural archive. Knowledge concerning plants, seasons, animals, agriculture and medicinal practices can be preserved through oral transmission.

However, the relationship between tribal communities and forests has also been shaped by state policies, forest regulation and changing economic interests. Ramnath's work on forest management in Bastar discusses differences between indigenous practices and formal forest administration, including conflicts concerning forest rights, ownership and access to forest produce. Thus, “jungle” simultaneously represents livelihood, cultural identity, ecological knowledge and a site of political contestation.

C. Jameen : Land, Community and Belonging :

Land is closely associated with community identity. For tribal communities, land is not simply

an economic commodity. It is connected with ancestors, village history, cultivation, sacred spaces and social relationships.

Nandini Sundar's historical study demonstrates that changing administrative and legal structures affected tribal access to land and forests in Bastar. Her work challenges simplistic representations of Bastar as a geographical frontier and instead examines the historical processes through which state institutions interacted with local society.

The concept of jameen, therefore, should be understood in terms of belonging, livelihood and cultural memory. Loss of land may lead not only to economic displacement but also to cultural dislocation.

Tribal Identity and Ecological Consciousness :

Tribal identity in Bastar is multidimensional. It incorporates language, clan relations, customary practices, festivals, religious beliefs, food systems, agriculture, music, dance and relationships with the natural environment.

Unlike a purely anthropocentric conception of nature, many indigenous knowledge systems emphasize relationships between human beings and the natural world. The forest is understood through practical experience and cultural meanings. Seasonal cycles influence agricultural practices, festivals and the collection of forest produce.

This ecological consciousness is also reflected in oral traditions. Stories and songs frequently communicate ideas about forests, animals, ancestors, agricultural cycles and community responsibilities. Even where the original narrative does not explicitly use modern concepts such as "biodiversity" or "conservation," it may contain knowledge that encourages sustainable interaction with the environment. The Forest Rights Act, 2006 represents an important institutional development in recognizing certain rights of forest-dwelling tribal communities. A recent UNDP India study examining nearly two decades of implementation in Chhattisgarh, Odisha and Maharashtra links forest-rights recognition with tribal governance, ecological security and sustainable livelihoods, while also identifying continuing implementation challenges.

This indicates that contemporary debates on tribal development should move beyond the binary of "development versus tradition." Sustainable development can benefit from recognizing indigenous ecological knowledge and community participation.

Halbi and Gondi : Language as Cultural Memory :

Language is one of the most powerful instruments through which cultural identity is preserved. In a predominantly oral society, language carries historical memory, social values, ecological knowledge and religious expressions.

Historical Census material concerning Bastar records Gondi and Halbi among the languages of the region. The 1951 Census language handbook for Bastar explicitly included Gondi and Halbi in its linguistic documentation. The 1961 Census material also provides information on mother-tongue speakers and bilingualism in Bastar, recording Gondi and Halbi alongside other regional languages.

The linguistic situation is therefore significant because multilingualism has long been a characteristic of the region. Halbi has also functioned historically as an important contact language in parts of Bastar. From a literary perspective, the importance of these languages lies not only in their number of speakers but in the cultural knowledge encoded within them. Certain concepts relating to kinship, ritual, agriculture, forest products and local geography may not have exact equivalents in dominant languages.

Translation into English or Hindi can make tribal literature accessible to wider audiences, but translation also creates challenges. Ritual terms and culturally specific expressions may lose part of their original meaning when removed from their social context.

Oral Literature of Bastar :

Oral literature constitutes an important component of Bastar's cultural heritage. It includes :



The Bharatavani/CIIL resource Bastar Ki Moukhik Kathayan records oral narratives in several Bastar languages, including Gondi and Halbi. The collection was edited by Lala Jagdalpuri and Harihar Vaishnav and published in association with the Bastar SambhagHalbi Sahitya Parishad.

This collection is particularly important because it demonstrates that oral literature is not simply an informal form of entertainment. It is also a repository of community knowledge.

Oral Tradition, Festival and Performance :

Bastar's tribal culture cannot be fully understood through written texts alone because much of its cultural expression occurs through performance. Music, dance, ritual, costume and oral narration often operate together. The significance of performance is particularly visible in festivals and community gatherings. Oral traditions are not necessarily fixed texts; they may change slightly according to the performer, occasion and audience. This flexibility is one of the strengths of oral culture because it enables traditions to adapt while maintaining their central cultural meanings. Verrier Elwin's extensive anthropological study of the Muria, The Muria and Their Ghotul, is an important early ethnographic work concerning Bastar's tribal society and cultural institutions. The book was originally published in 1947 and contains extensive documentation of Muria social and cultural life.

However, contemporary scholarship should critically read early ethnographies alongside the voices and cultural interpretations of tribal communities themselves. Indigenous people should not merely be treated as objects of anthropological observation; their languages, narratives and interpretations should be recognized as sources of knowledge.

Colonialism, Modernity and Cultural Change :

The relationship between tribal society and external institutions has never been static. Colonial administration, postcolonial state institutions, markets, roads, education, media, migration and technological change have influenced Bastar's social and cultural landscape.

Sundar's historical analysis demonstrates how colonial and postcolonial administrative processes transformed relationships involving political authority, land and forest resources in Bastar.

Modern education has created new opportunities for tribal communities, but the dominance of major languages can also create pressure on smaller linguistic traditions. Younger generations may increasingly use Hindi, Chhattisgarhi or English in education and employment while traditional languages remain more strongly associated with home and community contexts.

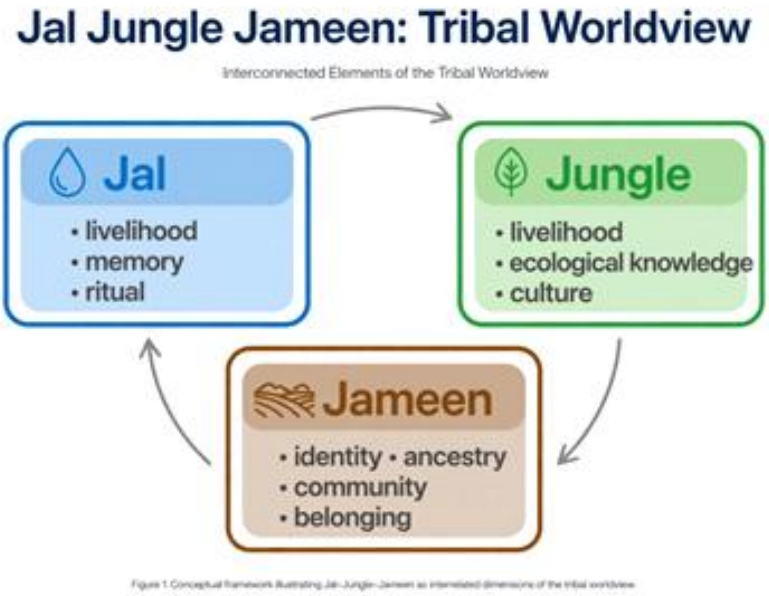
This does not mean that modernization necessarily destroys tribal culture. Digital technology can also provide new possibilities for preservation. Recording folk songs, documenting oral histories, creating bilingual dictionaries, digitizing manuscripts and developing educational material in local languages can help strengthen cultural continuity.

The challenge, therefore, is not to isolate tribal society from modernity but to develop a model of culturally sensitive modernization.

Critical Analysis: From "Jal, Jungle, Jameen" to Cultural Rights :

The central argument of this paper is that ecological rights and cultural rights are deeply interconnected. If forests disappear, traditional knowledge related to forest plants and animals may

also decline. If communities are displaced from their traditional landscapes, oral narratives connected with those places may lose their social context. If local languages decline, ecological concepts embedded within those languages may become difficult to transmit.



The three together create a cultural ecosystem.

The concept also requires a critical approach. Romanticizing tribal communities as perfectly harmonious with nature can be problematic because tribal societies themselves are internally diverse and historically dynamic. Similarly, development cannot automatically be regarded as destructive. Roads, education, healthcare and communication infrastructure can improve quality of life. The important question is who decides the form of development, who benefits from it, and whether local communities participate in decision-making. A sustainable approach should therefore combine ecological protection with community participation, recognition of forest rights, language preservation and livelihood security.

Major Findings :

1. Jal, Jungle and Jameen are interconnected dimensions of Bastar's tribal identity.
2. Forest resources have historically supported both livelihood and cultural practices.
3. Gondi and Halbi are important linguistic components of Bastar's cultural heritage.
4. Oral literature functions as a repository of history, ecological knowledge and social values.
5. Folk songs, myths and stories contribute to intergenerational transmission of cultural memory.

Conclusion :

The study of "Jal, Jungle, Jameen" in Bastar reveals that tribal identity cannot be separated from the ecological landscape in which communities have historically lived. Water, forest and land

are simultaneously material resources, cultural spaces and repositories of collective memory. The Halbi and Gondi linguistic traditions are particularly important because they provide the medium through which oral literature, rituals, folk songs, myths and indigenous knowledge are transmitted. Official Census records and CIIL-related collections demonstrate the historical and cultural importance of these languages in the Bastar region. Bastar's oral literature should therefore not be viewed merely as folklore. It represents a knowledge system through which communities interpret their relationship with nature, society and history. Protecting this heritage requires more than collecting stories in books. It requires supporting speakers, performers, community institutions and younger generations. The contemporary significance of Jal, Jungle, Jameen lies precisely in this interconnectedness. Ecological conservation without cultural participation is incomplete, just as cultural preservation without protecting the ecological environment is unsustainable. A meaningful approach to Bastar's future must therefore integrate tribal rights, ecological sustainability, linguistic diversity and cultural self-expression.

References :

1. Census of India. (1956). Language handbook, Bastar district, Madhya Pradesh—Census 1951. Office of the Registrar General, India.
2. Census of India. (1961). District census handbook: Bastar. Office of the Registrar General, India.
3. Census of India. (2018). Language—Census of India 2011 (Paper 1 of 2018). Office of the Registrar General & Census Commissioner, India.
4. Elwin, V. (1947). The Muria and their ghotul. Oxford University Press.
5. Elwin, V. (1955). The religion of an Indian tribe. Oxford University Press.
6. Government of India. (2006). The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006. Ministry of Tribal Affairs.
7. Government of India. (2018). Report of the High Level Committee on Socio-economic, Health and Educational Status of Tribal Communities in India. Ministry of Tribal Affairs.
8. Government of India. (2019). Statistical profile of Scheduled Tribes in India. Ministry of Tribal Affairs.
9. Hutton, J. H. (1949). The Muria and their Ghotul. Nature, 164, 249–250.
10. Ramnath, M. (1999). People, politics and forest management in Bastar: An ethnobotanical

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 197-201

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

दिनेश कुमार (शोधार्थी)
डॉ. धीरज कुमार (शोध निर्देशक)
भूगोल विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

सारांश :

21वीं सदी में मानव सभ्यता के सामने सबसे बड़ा संकट जलवायु परिवर्तन है। यह परिवर्तन केवल तापमान में वृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह वर्षा के पैटर्न, मौसम के चक्र, और चरम मौसमी घटनाओं (जैसे सूखा, बाढ़ तूफान) में बदलाव के रूप में सामने आ रहा है। कृषि प्रधान देश भारत के लिए यह संकट और भी गंभीर है, क्योंकि यहाँ की अधिकांश खेती आज भी प्रकृति और मानसून पर निर्भर है। यह शोध पत्र जलवायु परिवर्तन के विभिन्न घटकों का भारतीय कृषि की उत्पादकता, मिट्टी के स्वास्थ्य, जल संसाधनों और फसलों पर पड़ने वाले प्रभावों का गहन विश्लेषण करता है। शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि बढ़ता तापमान गेहूं और चावल जैसी प्रमुख फसलों की पैदावार को कम कर रहा है, जबकि अनियमित मानसून सिंचाई संकट और किसानों की आर्थिक हालत को खराब कर रहा है। शोध पत्र के अंत में, इन चुनौतियों का सामना करने के लिए जलवायु–स्मार्ट कृषि, फसल विविधीकरण और टिकाऊ जल प्रबंधन जैसी अनुकूलन रणनीतियों पर प्रकाश डाला गया है।

मुख्य शब्द – जलवायु परिवर्तन, कृषि उत्पादकता, मानसून, तापमान वृद्धि, सूखा, जलवायु–स्मार्ट कृषि, खाद्य सुरक्षा, अनुकूलन।

1. प्रस्तावना –

भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि है। देश की लगभग 45–50 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए सीधे तौर पर कृषि पर निर्भर है। भारतीय कृषि की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यह मुख्य रूप से दक्षिण–पश्चिमी पर आधारित है। देश की लगभग 60 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि वर्षा आधारित है। जलवायु परिवर्तन के कारण इस मानसूनी चक्र में जो अस्थिरता आ रही है, वह भारतीय कृषि के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। जलवायु परिवर्तन का अर्थ केवल गर्मी बढ़ना नहीं है। यह वैश्विक तापमान में औसत वृद्धि, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि, ग्लेशियरों के पिघलने, अनियमित वर्षा और अत्यधिक चरम मौसमी घटनाओं का परिणाम है। जब हम कृषि पर इसके प्रभाव की बात करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि बदलती जलवायु सीधे तौर पर फसलों के जीवन–चक्र, मिट्टी की उपजाऊ शक्ति, पानी की उपलब्धता और कीटों के प्रकोप को प्रभावित कर रही है। खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने और किसानों की आय को दोगुना करने के सरकार के सपने को

साकार करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हम जलवायु परिवर्तन के कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों को गहराई से समझें और इसके अनुकूल ढलने के उपाय खोजें।

2. साहित्य समीक्षा –

जलवायु परिवर्तन और कृषि के संबंध पर देश–विदेश में कई महत्वपूर्ण अध्ययन किए गए हैं, जो इस संकट की भयावहता को दर्शाते हैं :

IPCC (इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज) की रिपोर्ट (2022) के अनुसार, अगर वैश्विक तापमान इसी तरह बढ़ता रहा, तो दक्षिण एशिया में गेहूं, चावल और मक्का जैसी मुख्य फसलों के उत्पादन में 15–20% तक की भारी गिरावट आ सकती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अध्ययन बताते हैं कि तापमान में प्रत्येक 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से गेहूं के उत्पादन में लगभग 4 से 5 मिलियन टन की कमी हो सकती है। टर्मिनल हीट स्ट्रेस (फसल पकने के समय अत्यधिक गर्मी) गेहूं के लिए सबसे बड़ी समस्या बन गई है। विश्व बैंक की रिपोर्ट यह चेतावनी देती है कि जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में किसानों की आय में भारी कमी आएगी और छोटे किसान सबसे अधिक प्रभावित होंगे, क्योंकि उनके पास नई तकनीकों को अपनाने के लिए पूंजी की कमी होती है। राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन यह भी दर्शाते हैं कि जलवायु परिवर्तन केवल फसलों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पशुपालन (दूध उत्पादन में कमी), मत्स्य पालन और कृषि श्रमिकों की कार्यक्षमता (गर्मी के कारण काम के घंटे कम होना) को भी प्रभावित कर रहा है।

3. शोध उद्देश्य –

- भारत में जलवायु परिवर्तन के प्रमुख संकेतकों (तापमान, वर्षा, मौसमी बदलाव) का अध्ययन करना।
- कृषि उत्पादकता और फसल चक्र पर इन बदलावों के पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना।
- जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करना।
- कृषि को जलवायु–अनुकूल बनाने के लिए व्यावहारिक समाधान और रणनीतियाँ सुझाना।

4. शोध विधि –

प्रस्तुत शोध पत्र मुख्य रूप से वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध विधि पर आधारित है।

- डेटा स्रोत यह अध्ययन पूर्ण रूप से द्वितीयक डेटा पर आधारित है।
- समग्री डेटा भारतीय मौसम विज्ञान विभाग भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद कृषि मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, नीति आयोग और की रिपोर्टों से एकत्र किया गया है।
- क्षेत्रीय फोकस सामान्य भारतीय परिदृश्य के साथ–साथ शुष्क क्षेत्रों (विशेषकर राजस्थान) का विशेष उल्लेख किया गया है ताकि प्रभावों को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

5. कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव –

जलवायु परिवर्तन कृषि को कई तरह से प्रभावित करता है। इन प्रभावों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

5.1 तापमान में वृद्धि और हीट स्ट्रेस – तापमान में वृद्धि का सीधा असर पौधों के प्रकाश संश्लेषण और श्वसन की दर पर पड़ता है। जब तापमान एक निश्चित सीमा से अधिक हो जाता है, तो पौधों में हीट स्ट्रेस उत्पन्न

होता है। गेहूं और चावल गेहूं की बुवाई के बाद अगर मार्च–अप्रैल में अचानक तापमान बढ़जाता है, तो दाना पूरी तरह से विकसित नहीं हो पाता और पैदावार घट जाती है। फल और सब्जियां तापमान बढ़ने से आम, सेब और टमाटर जैसी फसलों में फूल कम आते हैं और फलों की गुणवत्ता खराब होती है। फसल चक्र फसलों का विकास काल कम हो रहा है। जल्दी पकने से उत्पादन में कमी आती है।

5.2 अनियमित वर्षा और मानसून का बदलता चक्र – भारतीय कृषि मानसून पर टिकी है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा का वितरण बिगड़गया है। सूखा कई बार मानसून की शुरुआत में ही लंबा अंतराल आ जाता है, जिससे बुवाई प्रभावित होती है और सूखे की स्थिति पैदा हो जाती है। बाढकभी–कभी कम समय में अत्यधिक वर्षा हो जाती है, जिससे खेतों में पानी भर जाता है और फसलें सड़जाती हैं। सिंचाई संकट कम वर्षा के कारण भूजल स्तर में लगातार गिरावट आ रही है। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के कई इलाकों में भूजल संकट गंभीर रूप ले चुका है।

5.3 कीटों और रोगों का प्रकोप – गर्म और नम मौसम कीटों और फंगल रोगों के पनपने के लिए सबसे अनुकूल होता है। नए कीटों का आगमन बढते तापमान के कारण उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के कीट अब ठंडे क्षेत्रों की ओर बढ रहे हैं। उदाहरण के लिए, फॉल आर्मीवर्म नामक कीट आर्मीवर्म (Armyworm), जिसे हिंदी में आमतौर पर सैनिक कीट कहा जाता है, एक बेहद विनाशकारी इल्ली (कैटरेपिलर) प्रजाति का कीट है। यह मुख्य रूप से मक्का, बाजरा, धान, गेहूं और गन्ना जैसी अनाज वाली फसलों को भारी नुकसान पहुंचाता है। जब खेतों में इनका प्रकोप बहुत अधिक बढ जाता है, तो ये एक सेना (Army) की तरह झुंड बनाकर एक खेत से दूसरे खेत की फसलों पर हमला करते हैं और उन्हें चट कर जाते हैं, इसी व्यवहार के कारण इनका नाम आर्मीवर्म पडा है। हाल के वर्षों में भारत में मक्का की फसल को बहुत भारी नुकसान पहुँचाया है। रसायनों पर निर्भरता कीटों के बढ़ते प्रकोप से बचने के लिए किसान कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग कर रहे हैं, जिससे खेती की लागत बढ़रही है और मिट्टी व खाद्यान्न जहरीले हो रहे हैं।

5.4 मिट्टी की गुणवत्ता और उपजाऊपन में कमी – अत्यधिक तापमान और अनियमित वर्षा मिट्टी के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। जैविक कार्बन की कमी बढ़ते तापमान के कारण मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा तेजी से घट रही है, जिससे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम हो रही है। मृदा कटाव अत्यधिक बारिश के कारण ऊपरी उपजाऊ मिट्टी बह जाती है, जबकि सूखे के कारण मिट्टी में दरारें पड़जाती हैं।लवणीयता समुद्र तटीय क्षेत्रों में जलस्तर बढने से खारा पानी खेतों में आ रहा है, जिससे भूमि बंजर हो रही है।

5.5 सामाजिक–आर्थिक प्रभाव – जलवायु परिवर्तन का असर सीधे किसानों की जेब पर पड़ता है। आय में कमी और कर्ज फसल खराब होने से किसानों की आय घटती है और वे कर्ज के जाल में फंस जाते हैं। पलायन खेती से पर्याप्त मुनाफा न होने के कारण ग्रामीण युवा शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं, जिससे खेती के लिए मजदूर नहीं मिल रहे हैं। **खाद्य सुरक्षा पर खतरा :** उत्पादन कम होने से देश में खाद्यान्न की कीमतें बढ़ती हैं, जिससे गरीबों के सामने भुखमरी का संकट खडा हो जाता है।

5.6 राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों पर विशेष प्रभाव – राजस्थान (विशेषकर हनुमानगढ और थार रेगिस्तान का क्षेत्र) जलवायु परिवर्तन के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील है। यहाँ का तापमान गर्मियों में 50 डिग्री सेल्सियस के पार चला जाता है। रेगिस्तान का विस्तार कम वर्षा और अत्यधिक गर्मी के कारण रेगिस्तान का दायरा बढ़

रहा है। फसलों पर असर बाजरा, सरसों और गेहूं जैसी फसलों की पैदावार घट रही है। चारे की कमी पशुओं के लिए चारे की कमी हो रही है, जिससे पशुपालन प्रभावित हो रहा है और दूध उत्पादन में कमी आ रही है।

6. अनुकूलन और शमन की रणनीतियाँ –

जलवायु परिवर्तन को पूरी तरह से रोकना संभव नहीं है, लेकिन हम अपनी कृषि प्रणाली को इसके अनुकूल बना सकते हैं। इसके लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं।

6.1 जलवायु–स्मार्ट कृषि – ऐसी कृषि तकनीकों को अपनाना जो कम संसाधनों में अधिक उत्पादन दें और पर्यावरण को नुकसान न पहुँचाएं। इसमें जीरो टिलेज (बिना जुताई के बुवाई), (फसल अवशेषों से मिट्टी ढकना) और सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप व स्प्रिंकलर) शामिल हैं।

6.2 फसल विविधीकरण – पानी की अधिक खपत करने वाली धान–गेहूं की परंपरागत खेती को कम करके दलहन, तिलहन और मोटे अनाजों की खेती को बढ़ावा देना चाहिए। मोटे अनाज कम पानी और अधिक तापमान में भी आसानी से पनप सकते हैं। (भारत सरकार द्वारा 2023 को अंतर्राष्ट्रीय मिलेट्स ईयर घोषित करना इस दिशा में एक सराहनीय कदम है)।

6.3 जलवायु–अनुकूल बीजों का विकास – कृषि वैज्ञानिकों को ऐसे बीज विकसित करने चाहिए जो सूखा बाढऔर अत्यधिक तापमान सहने में सक्षम हों। जेनेटिक इंजीनियरिंग और जीन एडिटिंग तकनीक का उपयोग करके ऐसी फसलें विकसित की जानी चाहिए जो जलवायु के प्रति सहनशील हों।

6.4 जल संरक्षण और प्रबंधन वर्षा – जल संचयन को बढ़ावा देना चाहिए। पारंपरिक जल स्रोतों (तालाब, बावड़ी) का जीर्णोद्धार करना चाहिए। प्रति बूंद अधिक फसल के सिद्धांत पर काम करते हुए सिंचाई के आधुनिक तरीकों को अपनाना चाहिए। राजस्थान जैसे राज्यों में इंदिरा गांधी नहर परियोजना के पानी का दक्षतापूर्ण उपयोग होना चाहिए।

6.5 डिजिटल कृषि और पूर्वानुमान – किसानों को मौसम के सटीक पूर्वानुमान और बाजार भाव की जानकारी मोबाइल ऐप्स के माध्यम से मिलनी चाहिए। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और ड्रोन तकनीक का उपयोग करके फसलों की निगरानी और कीटों के हमले का पहले ही पता लगाया जा सकता है।

6.6 सरकारी नीतियां और बीमा – प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को और अधिक प्रभावी बनाया जाए, ताकि जलवायु आपदा में किसानों को आर्थिक सुरक्षा मिल सके। साथ ही, जैविक खेती और प्राकृतिक खेती को अपनाने वाले किसानों को सब्सिडी और प्रोत्साहन दिया जाए।

7. निष्कर्ष –

जलवायु परिवर्तन एक धीमी लेकिन बहुत ही गंभीर आपदा है, जिसका सबसे पहला और सबसे बड़ा शिकार कृषि क्षेत्र हो रहा है। तापमान में बढ़ोतरी, बदलता मानसून और चरम मौसमी घटनाएं भारतीय खेती की उत्पादकता और स्थिरता को सीधे तौर पर चुनौती दे रही हैं। यदि समय रहते इस समस्या का समाधान नहीं निकाला गया, तो इसका सीधा असर देश की खाद्य सुरक्षा और किसानों की आजीविका पर पड़ेगा, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी। हालांकि, यह स्थिति पूरी तरह से निराशाजनक नहीं है। अगर हम पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान और तकनीक के साथ जोड़दें, तो हम एक मजबूत और जलवायु–अनुकूल कृषि प्रणाली विकसित कर सकते हैं। जलवायु–स्मार्ट कृषि, फसल विविधीकरण, सूक्ष्म सिंचाई और उन्नत बीजों के माध्यम से

हम न केवल जलवायु परिवर्तन का सामना कर सकते हैं, बल्कि किसानों की आय को भी बढ़ा सकते हैं। अंत में, यह कहा जा सकता है कि जलवायु परिवर्तन केवल सरकार या वैज्ञानिकों का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह पूरे समाज का सामूहिक संकट है। इसका मुकाबला करने के लिए किसान, शोधकर्ता, नीति–निर्माता और आम नागरिक, सभी को मिलकर श्प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व के सिद्धांत पर काम करना होगा।

संदर्भ (References)

1. (2022) – जलवायु परिवर्तन 2022 : प्रभाव, अनुकूलन और सुभेद्यता – छठी मूल्यांकन रिपोर्ट में वर्किंग ग्रुप का योगदान – कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (IMD). (2023)
3. ICAR भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद – 2021 – विजन 2050.
4. कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार. (2022).
5. वार्षिक रिपोर्ट–विश्व बैंक– 2022– भारत कृषि और खाद्य सुरक्षा पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव।
6. सिंह, आर. एवं शर्मा, एस. (2020). भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, भारतीय भूगोल पत्रिका, 15(2), 45–58.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 202-214

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

ROLE OF RENEWABLE ENERGY IN RAJASTHAN'S ECONOMIC DEVELOPMENT

Dr. Mukesh Kumar

Professor, Department of Economics,

Babu Shobharam Government Arts College, Alwar, Rajasthan, India.

ABSTRACT :

Renewable energy has emerged as a significant driver of economic development, environmental sustainability and energy security in the contemporary world. With increasing energy demand, rising dependence on conventional fossil fuels and growing environmental concerns, renewable energy sources such as solar, wind, biomass and small hydropower have acquired considerable importance. Rajasthan, owing to its favourable geographical conditions, abundant solar radiation, extensive land resources and suitable wind corridors, possesses enormous potential for renewable energy development.

Over the past decade, Rajasthan has emerged as one of India's leading states in renewable energy generation, particularly in solar and wind power. The expansion of renewable energy infrastructure has created opportunities for investment, industrial development, employment generation, technological innovation and rural economic transformation. It has also contributed to the diversification of the state's energy structure and strengthened its prospects for sustainable development.

The present research paper examines the role of renewable energy in Rajasthan's economic development. It analyses the economic significance of solar and wind energy, their contribution to employment and investment, the development of rural areas, industrial growth and environmental sustainability. The paper also examines major challenges, including inadequate transmission infrastructure, energy storage limitations, land-related issues, financial constraints and the need for skilled human resources.

The study is descriptive and analytical in nature and is based on secondary data collected from government reports, policy documents, research publications and institutional sources. It concludes

that renewable energy can become a major instrument of economic transformation in Rajasthan if supported by appropriate policies, technological innovation, infrastructure development and inclusive investment strategies.

Keywords : Renewable Energy, Economic Development, Solar Energy, Wind Energy, Rajasthan, Sustainable Development, Employment Generation, Energy Security, Green Economy.

1. INTRODUCTION :

Energy is one of the fundamental requirements of economic development. Industrial production, agricultural activities, transportation, communication, urbanisation and technological advancement depend heavily on the availability of reliable and affordable energy.

Traditionally, economic development has been supported by conventional energy sources such as coal, petroleum and natural gas. However, increasing consumption of fossil fuels has contributed to environmental degradation, air pollution, greenhouse gas emissions and climate change. Furthermore, dependence on imported petroleum products creates economic and energy security concerns.

In this context, renewable energy has emerged as an important alternative to conventional energy sources. Renewable energy is derived from naturally replenished resources such as sunlight, wind, biomass and water. Its development provides opportunities to promote economic growth while reducing environmental pressures.

India has recognised renewable energy as an important component of its long-term development strategy. The expansion of solar parks, wind farms, rooftop solar systems and other clean energy technologies reflects the growing importance of this sector.

Rajasthan occupies a strategically important position in India's renewable energy landscape. Its geographical location, climatic conditions and availability of suitable land provide significant advantages for solar and wind energy development.

The western districts of Rajasthan, particularly Jaisalmer, Barmer, Bikaner and Jodhpur, have considerable potential for renewable energy generation. The establishment of large solar parks and wind energy projects has strengthened the state's position in the national energy sector.

Renewable energy development is not merely an energy-related activity. It also creates economic opportunities through capital investment, employment, infrastructure development, industrial diversification and technological advancement.

Therefore, examining the role of renewable energy in Rajasthan's economic development is important for understanding the relationship between energy transformation and regional economic

growth.

2. OBJECTIVES OF THE STUDY :

The major objectives of the present study are :

- To examine the potential and development of renewable energy resources in Rajasthan.
- To analyse the contribution of solar and wind energy to the state's economic development.
- To study the role of renewable energy in investment promotion and industrial development.
- To examine the employment opportunities generated by renewable energy projects.
- To analyse the contribution of renewable energy to rural development and energy security.
- To identify the major challenges associated with renewable energy expansion.
- To suggest appropriate measures for promoting sustainable renewable energy development in Rajasthan.

3. RESEARCH METHODOLOGY :

The present study is descriptive and analytical in nature.

It is primarily based on secondary data obtained from various government and institutional sources.

The major sources of information include :

- Economic Review of Rajasthan.
- Rajasthan Integrated Clean Energy Policy, 2024.
- Rajasthan Renewable Energy Corporation Limited publications.
- Ministry of New and Renewable Energy reports.
- Central Electricity Authority publications.
- Government of Rajasthan policy documents.
- International Renewable Energy Agency reports.
- Research papers, books and academic journals.

The study adopts a qualitative and analytical approach to examine the economic contribution of renewable energy.

It focuses on investment, employment, industrial development, rural transformation and environmental sustainability.

4. RENEWABLE ENERGY POTENTIAL OF RAJASTHAN :

Rajasthan possesses exceptional natural advantages for renewable energy generation.

Its climatic and geographical characteristics make it suitable for large-scale solar and wind energy projects.

4.1 Solar Energy Potential :

Solar energy is the most significant renewable energy resource in Rajasthan.

The state receives high solar radiation and experiences approximately 300 or more sunny days in many regions annually.

The districts of Jaisalmer, Barmer, Bikaner, Jodhpur and other western areas are particularly suitable for large-scale solar energy development.

The establishment of the Bhadla Solar Park has demonstrated the state's capacity to develop large solar energy projects.

Solar energy development has several economic advantages :

- Attraction of domestic and international investment.
- Development of solar equipment manufacturing.
- Employment generation.
- Reduction in dependence on conventional energy sources.
- Promotion of technological innovation.
- Improvement in long-term energy security.

Solar energy also provides opportunities for decentralised electricity generation through rooftop solar systems and solar-powered agricultural applications.

4.2 Wind Energy Potential :

Rajasthan also possesses significant potential for wind energy generation.

The western regions, particularly Jaisalmer, Barmer and Jodhpur, have favourable wind conditions.

Wind energy projects contribute to electricity generation and encourage investment in infrastructure and supporting industries.

The development of wind energy can also promote manufacturing activities related to turbines, electrical equipment and associated components.

4.3 Biomass Energy :

Agricultural residues, animal waste and other organic materials provide opportunities for biomass-based energy generation.

Rajasthan's agricultural and livestock sectors can support the development of decentralised biomass and biogas projects.

Such initiatives can contribute to rural employment, waste utilisation and supplementary income generation.

4.4 Hybrid Renewable Energy :

The integration of solar and wind energy can improve the utilisation of renewable resources.

Hybrid projects can provide a more balanced electricity supply by combining different energy generation patterns.

Energy storage technologies, including battery storage and pumped storage, are also important for improving the reliability of renewable energy systems.

5. CONTRIBUTION OF RENEWABLE ENERGY TO ECONOMIC DEVELOPMENT :

Renewable energy contributes to economic development through several direct and indirect channels.

5.1 Capital Investment and Economic Growth :

The establishment of solar parks, wind farms, transmission networks and energy storage facilities requires substantial investment.

Such investment creates demand for construction, engineering, transportation, electrical equipment and related services.

It also encourages private sector participation and improves the investment environment of the state.

The expansion of renewable energy infrastructure can therefore contribute to capital formation and economic growth.

5.2 Employment Generation :

Renewable energy projects create employment opportunities during construction, installation, operation and maintenance.

Employment is also generated in manufacturing, transportation, project management and technical services.

The sector creates demand for engineers, technicians, electricians, construction workers and skilled professionals.

Skill development programmes can help local workers participate in these emerging employment opportunities.

5.3 Industrial Development :

Renewable energy development can encourage industrial diversification.

Solar panel manufacturing, inverter production, battery manufacturing, electrical equipment and wind turbine components provide opportunities for industrial expansion.

The development of supporting industries can strengthen the state's manufacturing base.

It can also encourage the establishment of ancillary units and small-scale enterprises.

5.4 Agricultural Development :

Renewable energy has considerable potential to transform agricultural activities in Rajasthan.

Solar-powered irrigation pumps can reduce farmers' dependence on conventional electricity and diesel-based pumping systems.

Decentralised solar energy can also improve access to electricity in rural areas.

However, the economic benefits depend on appropriate water management and sustainable groundwater utilisation.

5.5 Rural Economic Development :

Renewable energy projects can contribute to rural infrastructure development and local economic activities.

Solar installations, biomass projects and decentralised energy systems can improve electricity availability in rural areas.

They can also support rural enterprises, food processing, cold storage and small manufacturing units.

5.6 Energy Security :

Renewable energy reduces dependence on imported fossil fuels and diversifies the state's electricity supply.

The availability of domestic renewable resources can improve long-term energy security.

It can also reduce exposure to fluctuations in international fuel prices.

5.7 Environmental Sustainability :

Renewable energy can reduce greenhouse gas emissions when it replaces electricity generated from fossil fuels.

It also supports cleaner production systems and contributes to environmental sustainability.

Reduced dependence on conventional energy can improve air quality and support long-term ecological well-being.

6. MAJOR RENEWABLE ENERGY PROJECTS AND INDUSTRIAL DEVELOPMENT IN RAJASTHAN :

Rajasthan has witnessed the development of several important renewable energy projects.

6.1 Bhadla Solar Park :

Bhadla Solar Park, located in Jodhpur district, is one of India's most prominent solar energy development projects.

It has strengthened Rajasthan's position in large-scale solar electricity generation.

The project has contributed to investment in renewable energy infrastructure, technological development and the growth of supporting economic activities.

6.2 Jaisalmer Wind Energy Projects :

Jaisalmer is an important centre of wind energy development in Rajasthan.

Favourable wind conditions have encouraged the establishment of wind farms in the region.

These projects contribute to electricity generation and support investment in associated infrastructure.

6.3 Barmer and Bikaner Solar Development :

Barmer and Bikaner have emerged as important regions for renewable energy investment.

Their geographical characteristics and land availability provide opportunities for large-scale solar energy projects.

6.4 Development of Green Energy Infrastructure :

The expansion of renewable energy requires transmission lines, substations, electricity evacuation facilities and energy storage systems.

The development of green energy corridors is therefore essential for connecting renewable energy-producing regions with consumption centres.

Such infrastructure investment can also strengthen regional economic connectivity.

7. GOVERNMENT POLICIES AND INITIATIVES :

The Government of Rajasthan has introduced several policy initiatives to promote renewable energy development.

7.1 Rajasthan Integrated Clean Energy Policy, 2024 :

The Rajasthan Integrated Clean Energy Policy, 2024, provides an important framework for expanding renewable energy generation.

Its objectives include :

- Promotion of solar and wind energy.
- Development of renewable energy parks.
- Encouragement of hybrid energy projects.
- Promotion of energy storage systems.
- Development of green hydrogen.
- Strengthening of transmission infrastructure.
- Promotion of research and technological innovation.

- Development of skilled human resources.

The policy sets an ambitious renewable energy capacity target of 125 GW by 2029-30, comprising 90 GW solar, 25 GW wind and hybrid, and 10 GW hydro and storage capacity.

7.2 Rajasthan Renewable Energy Corporation Limited :

Rajasthan Renewable Energy Corporation Limited (RRECL) plays an important role in promoting and coordinating renewable energy development in the state.

It facilitates project development, investment promotion and implementation of renewable energy policies.

7.3 PM-KUSUM Scheme :

The Pradhan Mantri Kisan Urja Suraksha evam Utthaan Mahabhiyan (PM-KUSUM) aims to promote solar energy applications in the agricultural sector.

The scheme encourages solar-powered agricultural pumps and decentralised renewable energy generation.

It has the potential to improve agricultural energy access and diversify farmers' income opportunities.

7.4 PM Surya Ghar: Muft Bijli Yojana :

The PM Surya Ghar scheme promotes rooftop solar installations in residential households.

It encourages decentralised electricity generation and can help households reduce their dependence on conventional electricity supply.

7.5 Rajasthan Green Hydrogen Policy :

The development of green hydrogen provides opportunities for future industrial diversification.

Green hydrogen produced using renewable electricity can support industrial decarbonisation and create new investment opportunities.

8. RENEWABLE ENERGY AND REGIONAL ECONOMIC DEVELOPMENT :

Renewable energy can play an important role in reducing regional economic disparities in Rajasthan.

The western districts possess considerable potential for solar and wind energy development.

Investment in these regions can generate employment, improve infrastructure and encourage the development of supporting industries.

However, the economic benefits of renewable energy projects do not automatically reach local communities.

For inclusive regional development, it is necessary to strengthen local employment, skill

development, infrastructure and small enterprises.

The development of renewable energy manufacturing and service industries can also create economic opportunities beyond the areas where large power projects are located.

Thus, renewable energy can become an instrument of balanced regional development if investment strategies are designed to include relatively less-developed districts.

9. MAJOR CHALLENGES OF RENEWABLE ENERGY DEVELOPMENT :

Despite considerable potential, Rajasthan faces several challenges in expanding renewable energy infrastructure.

9.1 Land Acquisition and Land Use Issues :

Large-scale solar and wind projects require substantial land.

Land acquisition may create difficulties relating to local livelihoods, land rights and competing land uses.

Proper land-use planning and community participation are essential.

9.2 Water Scarcity :

Rajasthan is a water-scarce state.

Certain solar technologies require water for cleaning and maintenance.

Therefore, renewable energy projects must adopt water-efficient technologies and appropriate water management practices.

9.3 Energy Storage Limitations :

Solar and wind energy generation depends on weather conditions.

Electricity generation may fluctuate according to sunlight and wind availability.

Energy storage systems and improved grid management are necessary to ensure a reliable electricity supply.

9.4 Transmission Infrastructure :

Renewable energy projects are often located far from major consumption centres.

Inadequate transmission infrastructure can create difficulties in evacuating generated electricity.

Therefore, investment in transmission networks and grid modernisation is essential.

9.5 Financial Constraints :

Large renewable energy projects require substantial capital investment.

Small entrepreneurs and local enterprises may face difficulties in obtaining affordable finance. Financial institutions must develop appropriate mechanisms to support renewable energy investment.

9.6 Skill Development :

The renewable energy industry requires specialised technical and professional skills.

Limited availability of trained workers may restrict local participation in emerging employment opportunities.

9.7 Environmental and Ecological Concerns :

Large renewable energy projects may affect local ecosystems, biodiversity and land-use patterns.

Wind projects may create ecological concerns for certain bird species, while large solar installations may alter desert and semi-arid landscapes.

Environmental assessment and responsible project planning are therefore essential.

10. FUTURE PROSPECTS OF RENEWABLE ENERGY IN RAJASTHAN :

The future prospects of renewable energy in Rajasthan are promising.

The state's geographical advantages, policy support and growing investment interest provide opportunities for further expansion.

The following areas are particularly important :

- Expansion of solar and wind energy projects.
- Development of battery energy storage systems.
- Promotion of green hydrogen production.
- Establishment of solar equipment manufacturing industries.
- Expansion of rooftop solar installations.
- Development of solar-powered agricultural infrastructure.
- Promotion of renewable energy-based rural enterprises.
- Strengthening of green energy transmission corridors.
- Encouragement of research and technological innovation.
- Development of skilled human resources.

The integration of renewable energy with industrial development can strengthen Rajasthan's economic competitiveness.

11. MAJOR FINDINGS OF THE STUDY :

The study highlights the following major findings :

- Rajasthan possesses significant geographical advantages for solar and wind energy development.
- Renewable energy has emerged as an important component of the state's economic development trategy.
- Solar and wind energy projects contribute to capital investment and infrastructure development.
- Renewable energy creates employment opportunities in construction, manufacturing,

installation and maintenance.

- The development of renewable energy can strengthen rural economic activities and agricultural productivity.
- Renewable energy provides opportunities for industrial diversification and technological innovation.
- Government policies play an important role in attracting investment and supporting infrastructure development.
- Water scarcity, land-use concerns, storage limitations and transmission constraints remain important challenges.
- Renewable energy can contribute to balanced regional development if local communities and small enterprises participate in the process.
- Sustainable renewable energy development requires the integration of economic, social and environmental objectives.

12. SUGGESTIONS AND POLICY RECOMMENDATIONS :

For strengthening the contribution of renewable energy to Rajasthan's economic development, the following measures are suggested :

- Strengthen transmission and distribution infrastructure.
- Promote battery storage and hybrid renewable energy systems.
- Encourage domestic manufacturing of solar panels, batteries and wind energy equipment.
- Provide affordable finance to small renewable energy enterprises.
- Expand technical education and vocational training.
- Promote community participation in renewable energy projects.
- Ensure fair compensation and transparent land acquisition procedures.
- Encourage water-efficient technologies in solar projects.
- Strengthen environmental impact assessment and biodiversity protection.
- Promote solar-powered agricultural and rural enterprises.
- Encourage research and development in renewable energy technologies.
- Ensure equitable distribution of renewable energy investment across regions.

These measures can improve the economic and social benefits of renewable energy development.

13. CONCLUSION :

Renewable energy has emerged as an important instrument of economic transformation in

Rajasthan. The state's favourable geographical conditions, abundant solar radiation, wind resources and supportive policy framework provide considerable opportunities for renewable energy development.

The expansion of solar and wind energy projects has created new possibilities for capital investment, employment generation, industrial diversification and infrastructure development.

Renewable energy can also strengthen agricultural activities, improve rural electricity access and reduce dependence on conventional energy sources.

However, the long-term success of renewable energy development depends on addressing challenges relating to land acquisition, water scarcity, energy storage, transmission infrastructure, finance and human resource development.

It is equally important to ensure that the economic benefits of renewable energy projects reach local communities and relatively less-developed regions.

The Rajasthan Integrated Clean Energy Policy, 2024, provides an important framework for achieving these objectives through renewable energy expansion, storage technologies, green hydrogen and investment promotion.

Ultimately, renewable energy should not be viewed merely as an alternative source of electricity. It should be considered a strategic instrument for economic diversification, employment generation, regional development and environmental sustainability.

With appropriate policy implementation, technological innovation and inclusive investment, Rajasthan has the potential to strengthen its position as a major renewable energy centre and achieve sustainable long-term economic development.

REFERENCES :

- Government of Rajasthan (2025). *Economic Review 2024-25*. Directorate of Economics and Statistics, Jaipur.·
- Government of Rajasthan (2024). *Rajasthan Integrated Clean Energy Policy, 2024*. Energy Department, Jaipur.·
- Government of Rajasthan. *Rajasthan Renewable Energy Corporation Limited: Annual Reports and Policy Documents*. Jaipur.·
- Ministry of New and Renewable Energy (2024-25). *Annual Report*. Government of India, New Delhi.·
- Central Electricity Authority. *General Review and Installed Capacity Reports*. Ministry of

Power, Government of India.·

- Government of India (2024). *India's Updated First Nationally Determined Contribution*. Ministry of Environment, Forest and Climate Change, New Delhi.·
- International Renewable Energy Agency (2024). *Renewable Capacity Statistics 2024*. IRENA, Abu Dhabi.·
- International Energy Agency (2024). *Renewables 2024: Analysis and Forecast to 2030*. IEA, Paris.·
- World Bank (2012). *Inclusive Green Growth: The Pathway to Sustainable Development*. World Bank, Washington, D.C.·
- United Nations Environment Programme (2011). *Towards a Green Economy: Pathways to Sustainable Development and Poverty Eradication*. UNEP, Nairobi.
- Ministry of Power, Government of India. *Annual Reports and Renewable Energy Development Documents*. New Delhi.·
- NITI Aayog. *Reports on Energy Transition and Sustainable Development*. Government of India, New Delhi.·

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 215-219

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

वीर सावरकर : अखंड भारत के स्वप्नद्रष्टा और प्रखर राष्ट्रवादी

रविन्द्र कुमार
सहायक आचार्य, इतिहास, लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली।
प्रो० राजेश कुमार मीणा, गाईड
इतिहास विभाग, लाईस यूनिवर्सिटी, अलवर।

सार :

वीर विनायक दामोदर सावरकर भारतीय राष्ट्रवादी चिंतन के इतिहास में एक प्रभावशाली और बहुआयामी व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका राजनीतिक एवं वैचारिक चिंतन भारतीय राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक पहचान, ऐतिहासिक स्मृति, राजनीतिक स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय एकता जैसे प्रश्नों से गहराई से संबद्ध रहा। सावरकर के राष्ट्रवादी विचारों को समझने के लिए उनके प्रारंभिक क्रांतिकारी जीवन, साहित्यिक लेखन, राजनीतिक गतिविधियों तथा हिंदुत्व संबंधी वैचारिक प्रतिपादन को एक व्यापक ऐतिहासिक संदर्भ में देखना आवश्यक है। उनके चिंतन में भारत केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सभ्यतागत चेतना से निर्मित राष्ट्र के रूप में उपस्थित होता है। इसी संदर्भ में अखंड भारत की उनकी कल्पना को समझा जा सकता है।

सावरकर के लिए राष्ट्रीय एकता का प्रश्न राजनीतिक सीमाओं से आगे बढ़कर सांस्कृतिक स्मृति, ऐतिहासिक अनुभव और राष्ट्रीय पहचान से जुड़ा था। वे भारत की राजनीतिक एकता तथा राष्ट्रीय शक्ति को अत्यंत महत्त्व देते थे। उनके राष्ट्रवादी चिंतन में औपनिवेशिक शासन से मुक्ति, राजनीतिक संगठन, सैन्य शक्ति, सामाजिक एकता और राष्ट्रीय आत्मसम्मान पर विशेष बल मिलता है। साथ ही, उनके हिंदुत्व संबंधी विचारों ने भारतीय राष्ट्रवाद की परिभाषा को लेकर व्यापक वैचारिक बहस को जन्म दिया। उनके विचारों के समर्थक उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक आत्मबोध के प्रखर चिंतक के रूप में देखते हैं, जबकि आलोचक उनके राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिभाषाओं और उसके अल्पसंख्यक समुदायों पर संभावित प्रभावों को लेकर प्रश्न उठाते हैं। अतः सावरकर के विचारों का अध्ययन उनके मूल लेखन और ऐतिहासिक संदर्भों के आधार पर किया जाना आवश्यक है।

बीज शब्द : वीर सावरकर, राष्ट्रवाद, अखंड भारत, हिंदुत्व, राष्ट्रीय एकता, क्रांतिकारी आंदोलन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, भारतीय स्वतंत्रता।

1. प्रस्तावना –

भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन का इतिहास अनेक विचारधाराओं, राजनीतिक रणनीतियों और वैचारिक प्रवृत्तियों का समन्वित इतिहास है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के दौरान भारतीय राष्ट्रवाद ने विभिन्न रूपों

में विकास किया। एक ओर संवैधानिक सुधार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से परिवर्तन की धाराएँ सक्रिय थीं, वहीं दूसरी ओर औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध क्रांतिकारी प्रतिरोध की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। इसी व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विनायक दामोदर सावरकर का व्यक्तित्व सामने आता है। सावरकर ने राजनीतिक स्वतंत्रता को राष्ट्रीय जीवन का अनिवार्य आधार माना और अपने लेखन तथा राजनीतिक गतिविधियों के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद की एक विशिष्ट वैचारिक व्याख्या प्रस्तुत की। सावरकर के राष्ट्रवादी चिंतन का विकास उनके प्रारंभिक जीवन और औपनिवेशिक शासन के अनुभवों से जुड़ा हुआ था। उन्होंने इतिहास, राजनीति और राष्ट्रीय मुक्ति के प्रश्नों पर गंभीर चिंतन किया। 1857 के विद्रोह की उनकी व्याख्या में उन्होंने उसे केवल सैनिक विद्रोह के रूप में न देखकर व्यापक राजनीतिक प्रतिरोध के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उनके लेखन में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संगठन, साहस, राजनीतिक सक्रियता और संघर्ष को महत्त्व प्राप्त हुआ। सावरकर के चिंतन में राष्ट्र की अवधारणा का संबंध भूगोल के साथ–साथ इतिहास और संस्कृति से भी था। उनके लिए भारत की राष्ट्रीय एकता एक दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम थी। अखंड भारत की कल्पना इसी व्यापक राष्ट्रीय दृष्टि से जुड़ती है। उनके विचार में भारत की एकता को राजनीतिक विखंडन के बजाय व्यापक राष्ट्रीय चेतना के आधार पर देखा जाना चाहिए। इस संदर्भ में अखंड भारत उनके लिए केवल क्षेत्रीय विस्तार की कल्पना नहीं, बल्कि ऐतिहासिक–सांस्कृतिक एकता से संबंधित विचार के रूप में सामने आता है।

2. वीर सावरकर का राष्ट्रवादी चिंतन : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

सावरकर के राष्ट्रवादी चिंतन को समझने के लिए बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक भारतीय राजनीतिक वातावरण को ध्यान में रखना आवश्यक है। बंग–भंग, स्वदेशी आंदोलन, क्रांतिकारी संगठनों का विकास तथा ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की दमनकारी नीतियों ने भारतीय राजनीतिक चेतना को प्रभावित किया। इसी वातावरण में सावरकर का राजनीतिक व्यक्तित्व विकसित हुआ। लंदन प्रवास के दौरान भी सावरकर भारतीय स्वतंत्रता के प्रश्न से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। उन्होंने भारतीय युवाओं में राजनीतिक चेतना और स्वतंत्रता की भावना विकसित करने का प्रयास किया। उनका राष्ट्रवाद औपनिवेशिक शासन से पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता की माँग से जुड़ा था। इस दृष्टि से सावरकर उन राष्ट्रवादी चिंतकों में थे जिन्होंने स्वाधीनता को केवल प्रशासनिक सुधार के रूप में स्वीकार नहीं किया। उनका राष्ट्रवाद राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ राष्ट्रीय शक्ति और संगठन पर भी बल देता था। वे इतिहास से प्रेरणा लेकर वर्तमान राजनीतिक संघर्ष को समझने का प्रयास करते थे।

उनके विचार में राष्ट्रीय समाज को अपनी ऐतिहासिक स्मृति, आत्मसम्मान और राजनीतिक क्षमता के प्रति जागरूक होना आवश्यक था। सावरकर के राजनीतिक चिंतन में भारत की भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता का प्रश्न महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अखंड भारत की अवधारणा को उनके व्यापक राष्ट्रवादी चिंतन के संदर्भ में समझना आवश्यक है। उनके लिए भारत का इतिहास राजनीतिक विभाजनों के बावजूद एक व्यापक सभ्यतागत निरंतरता से जुड़ा हुआ था। सावरकर की राष्ट्र संबंधी अवधारणा में भूभाग का महत्त्व अत्यधिक था। भारत की भूमि उनके राष्ट्रवाद की आधारभूत इकाइयों में से एक थी। इसी के साथ ऐतिहासिक स्मृति और सांस्कृतिक संबंध भी राष्ट्र की अवधारणा को प्रभावित करते थे। इस दृष्टि से अखंड भारत उनके लिए ऐसी राष्ट्रीय कल्पना का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें भारतीय भूभाग की ऐतिहासिक एकता को विशेष महत्त्व दिया जाता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अखंड भारत की अवधारणा को वर्तमान राजनीतिक सीमाओं के संदर्भ में सीधे पढ़ना

ऐतिहासिक रूप से पर्याप्त नहीं होगा। सावरकर के समय का राजनीतिक संदर्भ, ब्रिटिश भारत की प्रशासनिक संरचना, सामुदायिक राजनीति तथा विभाजन से पूर्व की परिस्थितियाँ अलग थीं। इसलिए उनकी अवधारणा का अध्ययन उनके समय के राजनीतिक और वैचारिक संदर्भ में किया जाना चाहिए।

सावरकर की राष्ट्रवादी विचारधारा का एक प्रमुख आधार उनका हिंदुत्व संबंधी चिंतन है। उनकी पुस्तक हिंदुत्व : हू इज अ हिंदू? में हिंदुत्व को धार्मिक आस्था तक सीमित न रखते हुए सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पहचान के प्रश्न से जोड़ा गया। उन्होंने 'पितृभूमि' और 'पुण्यभूमि' जैसे विचारों के माध्यम से भारतीय राष्ट्र की अपनी विशिष्ट परिभाषा प्रस्तुत की। सावरकर की इस अवधारणा पर भारतीय राजनीतिक चिंतन में व्यापक बहस हुई है। उनके समर्थक इसे भारतीय सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रीय एकता को समझने का प्रयास मानते हैं, जबकि आलोचक इसकी परिभाषा और इसके राजनीतिक निहितार्थों पर प्रश्न उठाते हैं। इसलिए सावरकर के राष्ट्रवाद का अध्ययन करते समय उनके मूल पाठ के साथ–साथ उस पर विकसित आलोचनात्मक साहित्य को भी सम्मिलित करना आवश्यक है।

सावरकर के राष्ट्रवाद की एक उल्लेखनीय विशेषता उसकी राजनीतिक सक्रियता और राष्ट्रीय शक्ति पर दिया गया बल है। वे राष्ट्र की स्वतंत्रता को केवल भावनात्मक आकांक्षा नहीं मानते थे, बल्कि इसके लिए संगठन, राजनीतिक इच्छाशक्ति और शक्ति–संपन्न राष्ट्रीय समाज की आवश्यकता पर बल देते थे। उनके विचार में इतिहास से प्रेरणा लेना और राष्ट्रीय समाज में आत्मविश्वास का विकास करना आवश्यक था। वे भारतीय समाज की आंतरिक कमजोरियों को दूर करने तथा राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने के पक्षधर थे। इसी संदर्भ में सामाजिक संगठन, सैन्य क्षमता और राजनीतिक चेतना उनके राष्ट्रवादी चिंतन के महत्त्वपूर्ण तत्व बनते हैं।

सावरकर के राजनीतिक जीवन का प्रारंभिक चरण क्रांतिकारी राष्ट्रवाद से गहराई से जुड़ा था। उन्होंने युवाओं को राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए संगठित करने और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध की भावना विकसित करने का प्रयास किया। अभिनव भारत जैसे संगठन से उनका संबंध इस दिशा में उल्लेखनीय है। उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनके लिए राष्ट्रवाद केवल बौद्धिक विचार नहीं था। वह राजनीतिक कार्रवाई और संगठन से संबद्ध था। उनके लेखन में राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए बलिदान, संगठन और संघर्ष की भावना दिखाई देती है। अखंड भारत की अवधारणा को सावरकर के राष्ट्रीय एकता संबंधी विचारों के साथ जोड़कर देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए राष्ट्रीय एकता का प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। भारत के राजनीतिक विभाजन की संभावना और अंततः 1947 में हुए विभाजन ने भारतीय राष्ट्रवाद की विभिन्न धाराओं को प्रभावित किया। सावरकर ने विभाजन का विरोध किया और भारत की राजनीतिक एकता को महत्त्व दिया। उनकी अखंड भारत संबंधी दृष्टि इसी व्यापक राजनीतिक चिंतन का हिस्सा थी। हालांकि इस विषय पर इतिहासलेखन में विभिन्न व्याख्याएँ मिलती हैं, इसलिए सावरकर के विचारों का मूल्यांकन उनके मूल वक्तव्यों, लेखन और उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर किया जाना आवश्यक है।

3. सावरकर का राष्ट्रवाद : विश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य –

सावरकर के राष्ट्रवाद का विश्लेषण करने पर उसके कई परस्पर संबद्ध आयाम सामने आते हैं– राजनीतिक स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक पहचान, ऐतिहासिक स्मृति, संगठन और राष्ट्रीय शक्ति। इन सभी तत्वों को अलग–अलग देखने के बजाय समग्र रूप से देखना उनके राष्ट्रवादी चिंतन को समझने में अधिक उपयोगी

है। उनका राष्ट्रवाद औपनिवेशिक शासन के प्रतिरोध से विकसित हुआ, लेकिन बाद में वह भारतीय राष्ट्र की प्रकृति और सांस्कृतिक पहचान से जुड़े प्रश्नों तक विस्तृत हुआ। इसी विस्तार के कारण सावरकर भारतीय राजनीतिक विचार के इतिहास में एक विशिष्ट और विवादास्पद चिंतक के रूप में अध्ययन का विषय बने। उनके विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करते समय दो स्तरों को अलग रखना आवश्यक है।

पहला, उनके ऐतिहासिक योगदान और राजनीतिक गतिविधियों का तथ्यात्मक अध्ययनय दूसरा, उनके राष्ट्र और हिंदुत्व संबंधी विचारों का वैचारिक विश्लेषण। इस विभाजन से सावरकर के व्यक्तित्व और विचारों का अधिक संतुलित अध्ययन संभव होता है। सावरकर के राष्ट्रवादी चिंतन पर आज भी राजनीतिक और अकादमिक विमर्श जारी है। अखंड भारत, राष्ट्रीय पहचान, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राष्ट्र–राज्य और भारतीय इतिहास की व्याख्या जैसे प्रश्न समकालीन सार्वजनिक बहस में भी उपस्थित हैं। इसलिए सावरकर का अध्ययन केवल ऐतिहासिक व्यक्तित्व के अध्ययन तक सीमित नहीं है, बल्कि आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचार को समझने में भी उपयोगी है। हालाँकि समकालीन संदर्भ में उनके विचारों की व्याख्या करते समय वर्तमान राजनीतिक धारणाओं को सीधे उनके ऐतिहासिक संदर्भ पर आरोपित करने से बचना आवश्यक है। उनके विचारों को उनके अपने समय, राजनीतिक परिस्थितियों और मूल लेखन के आधार पर समझना अधिक शोधसंगत दृष्टिकोण होगा।

4. निष्कर्ष –

वीर सावरकर का राष्ट्रवादी चिंतन भारतीय राजनीतिक विचार के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उनके विचारों में राजनीतिक स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक पहचान, ऐतिहासिक चेतना और राष्ट्रीय शक्ति जैसे तत्व परस्पर संबद्ध दिखाई देते हैं। अखंड भारत की उनकी कल्पना इसी व्यापक राष्ट्रवादी दृष्टि का हिस्सा थी, जिसमें भारत की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक एकता को विशेष महत्त्व प्राप्त था। सावरकर के राष्ट्रवाद की विशिष्टता यह है कि उन्होंने राष्ट्र को केवल राजनीतिक प्रशासन की इकाई के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे ऐतिहासिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान और राष्ट्रीय चेतना से जोड़कर समझने का प्रयास किया। उनके क्रांतिकारी जीवन और राजनीतिक लेखन में स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय शक्ति की आकांक्षा स्पष्ट दिखाई देती है। साथ ही, उनके हिंदुत्व संबंधी विचारों ने राष्ट्र की परिभाषा और सांस्कृतिक पहचान के प्रश्न पर व्यापक बहस को जन्म दिया।

अतः सावरकर को "अखंड भारत के स्वप्नद्रष्टा" और "प्रखर राष्ट्रवादी" के रूप में समझते हुए उनके विचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मूल लेखन और आलोचनात्मक व्याख्याओंकृतीनों को साथ रखना आवश्यक है। उनके राष्ट्रवाद का अध्ययन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, राष्ट्रवाद के वैचारिक विकास और आधुनिक भारत में राष्ट्रीय पहचान से संबंधित विमर्श को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करता है। सावरकर की अखंड भारत संबंधी कल्पना को उनके व्यापक राष्ट्रवादी चिंतन के भीतर रखकर देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक चेतना और राजनीतिक स्वतंत्रता परस्पर संबंधित प्रश्न थे। यही अंतर्संबंध उनके राष्ट्रवादी विचार को भारतीय राजनीतिक चिंतन के इतिहास में अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय बनाता है।

संदर्भ सूची –

1. सावरकर, विनायक दामोदर, द इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस ऑफ 1857, लंदन, 1909, पृष्ठ 10।

2. सावरकर, विनायक दामोदर, सिक्स ग्लोरियस एपोक्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री, अनुवाद एवं संपादन : एस. टी. गोडबोले, राजधनी ग्रंथागार, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ 156।
3. सावरकर, विनायक दामोदर, हिंदुत्व : हू इज ए हिंदू?, मूल संस्करण, 2023, पृष्ठ 48।
4. चतुर्वेदी, विनायक, हिंदुत्व एंड वायलेंस : वी. डी. सावरकर एंड द पॉलिटिक्स ऑफ हिस्ट्री, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 2022, पृष्ठ 167।
5. कीर, धनंजय, वीर सावरकर, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1966, पृष्ठ 156।
6. नूरानी, ए. जी., सावरकर एंड हिंदुत्व : द गोडसे कनेक्शन, लेफ्टवर्ड बुक्स, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ 168।
7. भट्ट, चेतन, हिंदू नेशनलिज्म : ओरिजिन्स, आइडियोलॉजीज एंड मॉडर्न मिथ्स, बर्ग पब्लिशर्स, 2021, पृष्ठ 41।
8. जाफ्रेलो, क्रिस्टोफ, द हिंदू नेशनलिस्ट मूवमेंट एंड इंडियन पॉलिटिक्स : 1925 टू द 1990, हर्स्ट, लंदन, 1996, पृष्ठ 15।
9. शर्मा, ज्योतिर्मय, हिंदुत्व : एक्सप्लोरिंग द आइडिया ऑफ हिंदू नेशनलिज्म, वाइकिंग, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 36।
10. हैन्सन, थॉमस ब्लॉम, द सैफ्रन वेव : डेमोक्रेसी एंड हिंदू नेशनलिज्म इन मॉडर्न इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999, पृष्ठ 134
11. सरकार, सुमित, मॉडर्न इंडिया 1885–1947, मैकमिलन, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 153–155, 198–203, 239–243, 266–278, 339।
12. सरकार, सुमित, मॉडर्न इंडिया 1885–1947, मैकमिलन, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 165।
13. चंद्र, बिपिन, इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 160।
14. चंद्र, तारा, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खंड 2, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1965, पृष्ठ 146।
15. चंद्र, तारा, हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खंड 3, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2015, पृष्ठ 129।
16. हैन्सन, थॉमस ब्लॉम, द सैफ्रन वेव : डेमोक्रेसी एंड हिंदू नेशनलिज्म इन मॉडर्न इंडिया, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009, पृष्ठ 288।
17. जाफ्रेलो, क्रिस्टोफ, द हिंदू नेशनलिस्ट मूवमेंट एंड इंडियन पॉलिटिक्स : 1925 टू द 1990, हर्स्ट, लंदन, 1996, पृष्ठ 569।
18. भट्ट, चेतन, हिंदू नेशनलिज्म : ओरिजिन्स, आइडियोलॉजीज एंड मॉडर्न मिथ्स, बर्ग पब्लिशर्स, 2021, पृष्ठ 77
19. सरकार, सुमित, मॉडर्न इंडिया 1885–1947, मैकमिलन, दिल्ली, 2023, पृष्ठ 414।
20. चतुर्वेदी, विनायक, हिंदुत्व एंड वायलेंस : वी. डी. सावरकर एंड द पॉलिटिक्स ऑफ हिस्ट्री, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 2026, पृष्ठ 421

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 220-226

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

शरद जोशी के व्यंग्य नाटकों में समाज और सत्ता का विद्रूप

नन्हीं कुमारी, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनागर मधेपुरा, बिहार।

सारांश :

शरद जोशी हिंदी व्यंग्य साहित्य के ऐसे महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं, जिन्होंने सामाजिक जीवन की विसंगतियों के साथ–साथ सत्ता, प्रशासन और सामान्य नागरिक के संबंधों को भी अपनी रचनात्मक दृष्टि का विषय बनाया है। उनके व्यंग्य नाटकों में समाज और सत्ता एक–दूसरे से अलग दिखाई नहीं देते, बल्कि दोनों के बीच का संबंध विभिन्न पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से लगातार सामने आता है। सत्ता केवल शासन करने वाली संस्था के रूप में नहीं, बल्कि प्रभाव, पद, संरक्षण और अधिकार की ऐसी व्यवस्था के रूप में भी दिखाई देती है, जिसके सामने व्यक्ति कई बार अपनी स्वतंत्रता और आलोचनात्मक दृष्टि को छोड़ देता है।

शरद जोशी की विशेषता यह है कि वे सत्ता और समाज की विसंगतियों को सीधे उपदेश के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। वे संवाद, पात्र, भाषा और नाटकीय परिस्थितियों के माध्यम से ऐसी स्थितियाँ निर्मित करते हैं, जिनमें व्यवस्था का वास्तविक चेहरा स्वयं सामने आने लगता है। उनके नाटकों में नवाब, कोतवाल, दरबारी, कलाकार, सूत्रधार और सामान्य नागरिक जैसे पात्र समाज और सत्ता के विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कहीं सत्ता संस्कृति और कलाकार को संरक्षण देने के नाम पर अपने प्रभाव में लेती दिखाई देती है, तो कहीं उसके आसपास मौजूद लोग उसकी प्रशंसा करके अपने हित साधने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार सामान्य नागरिक भी व्यवस्था के प्रति अपनी निष्ठा निभाते हुए उसके भीतर मौजूद विडंबनाओं का शिकार होता है।

प्रस्तुत आलेख में शरद जोशी के व्यंग्य नाटकों में समाज और सत्ता के विद्रूप स्वरूप का अध्ययन किया गया है। सत्ता का सांस्कृतिक हस्तक्षेप, चापलूसी, प्रशासनिक गठजोड़, सामान्य नागरिक की स्थिति, कलाकार और सत्ता का संबंध, सत्ता की भाषा तथा सामाजिक अवसरवाद आदि पक्षों के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि शरद जोशी का व्यंग्य केवल हास्य उत्पन्न करने वाला नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक चेतना को जागृत करने वाला साहित्य है।

बीज शब्द : शरद जोशी, व्यंग्य, व्यंग्य नाटक, समाज, सत्ता, विद्रूप, प्रशासन, नागरिक, चापलूसी, अवसरवाद।

प्रस्तावना –

व्यंग्य साहित्य की शक्ति इस बात में निहित होती है कि वह समाज की उन स्थितियों को सामने लाता है जिन्हें सामान्य जीवन में लोग अक्सर सहज मानकर स्वीकार कर लेते हैं। जहाँ विरोधाभास सामान्य व्यवहार का हिस्सा बन जाता है, वहाँ व्यंग्यकार उसे अलग दृष्टि से देखता है और उसकी असंगति को पाठक के सामने

रखता है। इसीलिए व्यंग्य केवल हँसी पैदा करने वाली विधा नहीं है। उसके भीतर व्यवस्था को समझने और उसके प्रति प्रश्न खड़े करने की क्षमता भी होती है।

शरद जोशी हिंदी के ऐसे व्यंग्यकार हैं जिनके साहित्य में सामाजिक और राजनीतिक जीवन की अनेक विसंगतियाँ दिखाई देती हैं। वे अपने समय के समाज को केवल बाहर से नहीं देखते, बल्कि उसकी मानसिकता, व्यवहार और सत्ता से उसके संबंधों को भी पहचानते हैं। उनके यहाँ सत्ता और समाज के बीच का संबंध विशेष महत्त्व रखता है। सत्ता अपने प्रभाव को बनाए रखने के लिए केवल आदेश का सहारा नहीं लेती, बल्कि संरक्षण, सम्मान, पुरस्कार और निकटता जैसे माध्यमों का भी उपयोग करती है। दूसरी ओर समाज का एक वर्ग भी सत्ता के निकट रहकर अपने लाभ की संभावनाएँ तलाशता दिखाई देता है।

व्यंग्य नाटक इस प्रकार के संबंधों को अभिव्यक्त करने के लिए विशेष रूप से प्रभावी विधा है। नाटक में पात्रों के संवादों और उनके व्यवहार के माध्यम से सत्ता का चरित्र प्रत्यक्ष रूप से सामने आता है। कोई व्यक्ति सत्ता की प्रशंसा करता है, कोई उसके संरक्षण की आकांक्षा रखता है, कोई उसके आदेशों का पालन करता है और कोई उसकी भाषा को ही महान साबित करने में लग जाता है। इन अलग–अलग प्रतिक्रियाओं को एक साथ रखकर शरद जोशी समाज और सत्ता के बीच के विद्रूप को उभारते हैं।

यह विद्रूप केवल सत्ता की कठोरता में नहीं है। उसका एक बड़ा हिस्सा उस सामाजिक मानसिकता में भी दिखाई देता है जो सत्ता को प्रश्न करने के बजाय उसकी प्रशंसा करना अधिक सुविधाजनक समझती है। इसी कारण शरद जोशी के व्यंग्य नाटकों में सत्ता की आलोचना के साथ समाज की आत्मालोचना भी जुड़ जाती है।

समाज और सत्ता के संबंध का व्यंग्यात्मक चित्रण –

शरद जोशी के नाटकों में सत्ता कोई दूर की या अमूर्त शक्ति नहीं है। वह समाज के बीच सक्रिय दिखाई देती है और उसके प्रभाव से कलाकार, बुद्धिजीवी, प्रशासनिक व्यक्ति तथा सामान्य नागरिक सभी प्रभावित होते हैं। सत्ता के निकट रहने वाले लोगों के व्यवहार से यह प्रभाव और अधिक स्पष्ट होता है।

दो व्यंग्य नाटक के एक प्रसंग में नवाब कलाकार को संरक्षण देने की बात करता है –

'तुम आना, मिलना हमसे, इंशा अल्लाह अकादमी बना देंगे, कल्चर का अलग से डिपार्टमेंट खड़ा कर देंगे, तुम्हें फेलोशिप दे देंगे...''[1]

पहली दृष्टि में यह संवाद कलाकार के प्रति सहयोग और प्रोत्साहन की भावना व्यक्त करता हुआ दिखाई देता है। लेकिन शरद जोशी इसे जिस संदर्भ में रखते हैं, वहाँ संरक्षण के साथ सत्ता के प्रभाव का संकेत भी उभरता है। अकादमी बनाना, अलग विभाग खड़ा करना और फेलोशिप देना– ये सभी ऐसे साधन हैं जिनके माध्यम से सत्ता कला और संस्कृति के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति स्थापित कर सकती है।

यहाँ व्यंग्य इसलिए पैदा होता है कि कलाकार के लिए सत्ता का सहयोग अवसर भी है और संभावित निर्भरता भी। कलाकार समाज और जीवन से जुड़कर अपनी रचनात्मकता को विकसित करना चाहता है, लेकिन जब उसके सामने सत्ता की कृपा का रास्ता खुलता है, तब स्वतंत्रता और संरक्षण के बीच का प्रश्न पैदा होता है। शरद जोशी इसी द्वंद्व को सहज संवाद के माध्यम से सामने लाते हैं।

सत्ता की चापलूसी और सामाजिक मानसिकता –

सत्ता का विद्रूप केवल सत्ता में बैठे व्यक्ति के व्यवहार से उत्पन्न नहीं होता। उसे बनाए रखने में समाज

के कुछ लोग भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब व्यक्ति अपने हित के लिए सत्ता की प्रशंसा करने लगता है, तब चापलूसी धीरे–धीरे सामाजिक व्यवहार का हिस्सा बन जाती है।

इसी स्थिति को शरद जोशी दरबारी पात्रों के संवादों के माध्यम से सामने रखते हैं। नवाब की बातों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा जाता है –

दरबारी :– "नवाब साहब की भाषा बहुत सुन्दर है और प्रभावशाली भी।"

और आगे –

शेष दरबारी :– "नवाब साहब बड़े ज्ञान की और गहरी बातें कहते हैं।"[2]

इन दोनों कथनों में प्रशंसा की अतिशयोक्ति स्वयं हास्य पैदा करती है। किसी कथन की वास्तविक उपयोगिता या सत्यता पर विचार करने के बजाय उसे केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण मान लिया जाता है क्योंकि वह सत्ता के व्यक्ति द्वारा कहा गया है। इस तरह व्यक्ति की अपनी आलोचनात्मक क्षमता सत्ता की प्रशंसा के सामने कमजोर पड़ती दिखाई देती है।

शरद जोशी यहाँ केवल दरबारियों का मजाक नहीं उड़ाते। वे उस मानसिकता को पहचानते हैं जिसमें सत्ता के निकट रहने के लिए सत्य और असत्य की जगह प्रशंसा अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। ऐसी स्थिति में सत्ता की शक्ति केवल उसके पद से नहीं आती, बल्कि उसके आसपास मौजूद लोगों की स्वीकृति और चापलूसी से भी मजबूत होती है।

इसी संदर्भ में सत्ता के सम्मान और व्यक्तिगत लाभ के बीच का संबंध भी दिखाई देता है। एक पात्र कहता है – **'सत्ताधारी यश पाना चाहता है और वह जगह–जगह आश्वासन देता है ताकि लोग उसकी जय–जयकार करें। आज मैं उसके जाल में फँस गया। नवाब साहब कह रहे हैं कि मुझे मदद करेंगे। फेलोशिप देंगे।'**[3]

यह संवाद सत्ता के संरक्षण के भीतर छिपे स्वार्थ को बहुत सहज ढंग से उजागर करता है। सत्ता किसी व्यक्ति को सम्मान, सहायता या अवसर देती है, लेकिन उसके बदले उससे समर्थन और प्रशंसा प्राप्त करने की अपेक्षा भी रख सकती है। यहाँ 'यश' और 'जय–जयकार' का संबंध सत्ता और समाज के बीच बने उस लेन–देन की ओर संकेत करता है, जिसमें लाभ के बदले निष्ठा प्राप्त की जाती है।

प्रशासन और सत्ता का गठजोड़ –

सत्ता का प्रभाव केवल दरबार या शासन के शीर्ष स्तर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह प्रशासनिक तंत्र के माध्यम से समाज के सामान्य जीवन तक पहुँचता है। शरद जोशी के व्यंग्य नाटकों में नवाब और कोतवाल जैसे पात्र सत्ता के अलग–अलग स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके संवादों के माध्यम से सत्ता और प्रशासन के बीच बनने वाले संबंधों की विसंगतियाँ सामने आती हैं।

इसी संदर्भ में दो व्यंग्य नाटक में कहा गया है –

'बिना रिश्ते के कोई सिफारिश नहीं करता हमारे राज में।'[4]

इस संवाद के माध्यम से शरद जोशी सत्ता–व्यवस्था में व्याप्त सिफारिश और व्यक्तिगत संबंधों की मानसिकता पर व्यंग्य करते हैं। यहाँ 'हमारे राज' में 'रिश्ते' और 'सिफारिश' का महत्त्व यह बताता है कि प्रशासनिक व्यवस्था में योग्यता और नियम से अधिक व्यक्तिगत पहुँच प्रभावशाली हो जाती है। इस प्रकार लेखक सत्ता और प्रशासन के उस गठजोड़ को उजागर करते हैं, जो सामाजिक व्यवस्था में असमानता और विसंगति

को जन्म देता है। शरद जोशी की व्यंग्य–दृष्टि की विशेषता यह है कि वे गंभीर राजनीतिक–प्रशासनिक समस्या को भी सहज संवाद और हास्य के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

सामान्य नागरिक और व्यवस्था –

समाज और सत्ता के संबंध को समझने के लिए सामान्य नागरिक की स्थिति सबसे महत्त्वपूर्ण है। सत्ता के निर्णयों और प्रशासनिक प्रक्रियाओं का सीधा प्रभाव नागरिक पर पड़ता है। नागरिक व्यवस्था के नियमों का पालन करता है, अपने कर्तव्यों को पूरा करता है और बदले में व्यवस्था से न्याय और सुरक्षा की अपेक्षा रखता है। लेकिन शरद जोशी के व्यंग्य में यही नागरिक कई बार ऐसी स्थिति में दिखाई देता है जहाँ उसकी निष्ठा और व्यवस्था की वास्तविकता के बीच अंतर पैदा हो जाता है।

अलादाद खाँ को आदर्श नागरिक के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके जीवन से जुड़ी अनेक बातों का उल्लेख किया गया है। वह नियमों का पालन करता है, आदेश मानता है, कर चुकाता है, चुनाव में मतदान करता है और आवश्यकता पड़ने पर सहयोग करता है।

इस प्रसंग की व्यंग्यात्मकता बहुत सूक्ष्म है। सामान्यतः आदर्श नागरिक की पहचान उसके कर्तव्य–पालन से की जाती है। लेकिन शरद जोशी इसी आदर्श को सामने रखकर व्यवस्था की दूसरी तस्वीर दिखाते हैं। जो व्यक्ति व्यवस्था की लगभग हर अपेक्षा पूरी करता है, उसकी स्थिति फिर भी विडंबनापूर्ण बनी रहती है।

यहाँ प्रश्न नागरिक के कर्तव्य निभाने का नहीं, बल्कि उस व्यवस्था का है जिसमें नागरिक की पहचान कहीं–कहीं उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व से अधिक उसके नियम पालन से तय होने लगती है। इस प्रकार आदर्श नागरिक की अवधारणा ही व्यंग्य का विषय बन जाती है।

कला, कलाकार और सत्ता –

कला समाज से अलग नहीं होती। कलाकार अपने आसपास के जीवन, लोगों की समस्याओं और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। इसलिए कलाकार और सत्ता का संबंध केवल संरक्षण का संबंध नहीं हो सकता। जब सत्ता कलाकार को संरक्षण देती है, तब उसके साथ स्वतंत्रता और रचनात्मक स्वायत्तता का प्रश्न भी जुड़ता है।

सूत्रधार के संवाद में थिएटर और समाज के संबंध को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है –

'थिएटर चलाने के लिए मुझे आसपास के समाज से, जिन्दगी से भी जुड़ा रहना पड़ता है। लोगों के दुख-सुख में हिस्सा बँटाना मेरा फर्ज है।'[5]

यह कथन कलाकार की सामाजिक जिम्मेदारी को स्पष्ट करता है। कलाकार के लिए समाज केवल उसकी रचना का विषय नहीं है, बल्कि उसके जीवन और रचनात्मक अनुभव का आधार भी है। लोगों के दुख–सुख से जुड़ना उसके दायित्व का हिस्सा है।

लेकिन इसी के साथ जब सत्ता कलाकार को फेलोशिप, सहायता या संरक्षण देने की बात करती है, तब एक दूसरा पक्ष सामने आता है। कलाकार समाज के प्रति उत्तरदायी है, जबकि सत्ता अपने संरक्षण के माध्यम से उसे प्रभावित कर सकती है। यही विरोधाभास शरद जोशी के व्यंग्य को अर्थपूर्ण बनाता है।

सत्ता की भाषा और उसका विद्रूप –

सत्ता का विद्रूप केवल उसके कार्यों में ही नहीं, बल्कि उसकी भाषा और व्यवहार में भी दिखाई देता है।

सत्ता के आसपास ऐसी भाषा विकसित हो जाती है, जिसमें सामान्य बातों को भी विशेष और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया जाता है। शरद जोशी ने अपने व्यंग्य नाटकों में सत्ता के इसी भाषाई स्वरूप और उसके आसपास विकसित होने वाली चापलूसी की मानसिकता को व्यंग्य का विषय बनाया है।

सत्ता के व्यक्ति की सामान्य बात भी उसके पद और प्रभाव के कारण महत्वपूर्ण मान ली जाती है। उसके कथनों पर प्रश्न उठाने के बजाय उसकी प्रशंसा की जाती है। इस प्रकार बात के वास्तविक अर्थ से अधिक महत्व उस व्यक्ति का हो जाता है, जिसने वह बात कही है। यह स्थिति सत्ता के आसपास पनपने वाली दरबारी मानसिकता को स्पष्ट करती है।

यहाँ भाषा सत्ता का एक उपकरण बन जाती है। प्रशंसा और चापलूसी के माध्यम से सामान्य विचारों को भी महान विचार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इससे स्वतंत्र और आलोचनात्मक सोच कमजोर होती है तथा सत्ता के प्रति अंध–स्वीकृति की प्रवृत्ति बढ़ती है। शरद जोशी इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए बताते हैं कि सत्ता केवल कुर्सी या पद तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह भाषा, व्यवहार और सोच को भी अपने प्रभाव में ले लेती है।

इस प्रकार शरद जोशी के व्यंग्य में सत्ता की भाषा उसके विद्रूप को उजागर करने का प्रभावी माध्यम बन जाती है।

सत्ता, संरक्षण और अवसरवाद –

सत्ता के संरक्षण की इच्छा समाज में अवसरवाद को जन्म दे सकती है। व्यक्ति जब अपने व्यक्तिगत लाभ को प्राथमिकता देने लगता है, तब उसके सिद्धांत और स्वतंत्रता पीछे छूट सकते हैं। शरद जोशी के यहाँ फेलोशिप और सहायता का प्रसंग इसी मानसिकता को समझने में उपयोगी है।

कलाकार को जब सत्ता की ओर से सहायता और फेलोशिप की संभावना दिखाई देती है, तो उसके सामने एक प्रकार की दुविधा उत्पन्न होती है। एक ओर सहायता प्राप्त करने का अवसर है, दूसरी ओर सत्ता के 'जाल' में फँसने का बोध भी है।

यह स्थिति शरद जोशी के व्यंग्य को अधिक गहराई देती है। सत्ता केवल भय के माध्यम से अपना प्रभाव स्थापित नहीं करती। वह सम्मान, पुरस्कार, सहायता और अवसर देकर भी लोगों को अपने निकट ला सकती है। व्यक्ति भी कई बार अपनी आवश्यकता के कारण इस निकटता को स्वीकार कर लेता है।

इस प्रकार सत्ता और समाज का संबंध केवल शासक और शासित का संबंध नहीं रह जाता। उसमें लाभ, अपेक्षा, संरक्षण और स्वार्थ के अनेक स्तर जुड़ जाते हैं। शरद जोशी इसी जटिलता को व्यंग्यात्मक ढंग से सामने रखते हैं।

समाज में चापलूसी और सत्ता की स्वीकृति –

सत्ता की शक्ति को बनाए रखने में समाज की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है। यदि सत्ता के सामने प्रश्न करने के बजाय लगातार प्रशंसा की जाए, तो सत्ता की आलोचनात्मक जाँच कमजोर पड़ जाती है। शरद जोशी के दरबारी पात्र इसी सामाजिक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

नवाब की भाषा को सुंदर और प्रभावशाली बताना, उसके सामान्य कथन को गहरी बात मानना और उसके विचारों की लगातार प्रशंसा करना यह दिखाता है कि सत्ता के निकट रहने वाले लोग किस प्रकार उसके

हर कथन में विशेषता खोजने लगते हैं।

यह चापलूसी केवल व्यक्तिगत स्वभाव नहीं है। इसके पीछे लाभ और सुरक्षा की इच्छा भी हो सकती है। सत्ता की प्रशंसा करने वाला व्यक्ति सत्ता के निकट रहने का लाभ प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार चापलूसी एक सामाजिक व्यवहार से आगे बढ़कर सत्ता–संबंधों का हिस्सा बन जाती है।

शरद जोशी का व्यंग्य इस मानसिकता को इसलिए महत्त्वपूर्ण बनाता है क्योंकि यहाँ सत्ता अकेली दोषी नहीं है। उसे मजबूत करने में समाज का अवसरवादी वर्ग भी सहभागी है।

'आदर्श नागरिक' और व्यवस्था का विद्रूप –

अलादाद खाँ का चरित्र समाज और सत्ता के संबंध को समझने की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। वह नियमों का पालन करने वाला, अपने नागरिक कर्तव्यों को निभाने वाला और व्यवस्था की अपेक्षाओं के अनुसार जीवन जीने वाला व्यक्ति है। सामान्य अर्थ में ऐसा व्यक्ति आदर्श नागरिक कहलाएगा।

लेकिन शरद जोशी इसी आदर्श नागरिक की स्थिति को व्यंग्यात्मक संदर्भ में रखते हैं। जब नागरिक व्यवस्था की सभी अपेक्षाएँ पूरी करता है, तब भी उसके जीवन की वास्तविक स्थिति व्यवस्था के आदर्श चित्र से अलग दिखाई देती है।

यहीं 'विद्रूप' का अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। विद्रूप केवल हास्यास्पद या कुरूप स्थिति नहीं है। यह उस विरोधाभास को भी व्यक्त करता है जहाँ किसी व्यवस्था का घोषित आदर्श और उसका वास्तविक व्यवहार एक–दूसरे से मेल नहीं खाते। शरद जोशी इसी अंतर को अपने नाट्य–व्यंग्य के माध्यम से उजागर करते हैं।

समाज और सत्ता के बीच बढ़ती दूरी –

शरद जोशी के नाटकों में सत्ता और सामान्य समाज के बीच एक दूरी दिखाई देती है। सत्ता अपने को समाज का प्रतिनिधि बताती है, लेकिन व्यवहार में वह कई बार अपने हित और प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्व देती दिखाई देती है। दूसरी ओर समाज का एक वर्ग सत्ता के लाभों से जुड़ने के लिए उसकी प्रशंसा करता है।

कलाकार का समाज से जुड़ाव और सत्ता से मिलने वाला संरक्षण इस दूरी को समझने का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। कलाकार का वास्तविक संबंध जीवन और समाज से है, लेकिन सत्ता के संसाधन उसकी रचनात्मक गतिविधियों को प्रभावित कर सकते हैं।

इस स्थिति में समाज और सत्ता के बीच संबंध सहयोग से अधिक निर्भरता का रूप ग्रहण कर सकता है। शरद जोशी इसी परिवर्तन को व्यंग्यात्मक ढंग से सामने लाते हैं। उनके पात्रों की बातचीत के पीछे यही व्यापक सामाजिक यथार्थ सक्रिय दिखाई देता है।

शरद जोशी के व्यंग्य में सामाजिक चेतना –

शरद जोशी के व्यंग्य का उद्देश्य केवल किसी व्यक्ति या संस्था का उपहास करना नहीं है। उनकी रचनाओं में सामाजिक चेतना का स्वर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे पाठक को उन परिस्थितियों पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं जिन्हें सामान्यतः लोग सहज मानकर स्वीकार कर लेते हैं।

उनके नाटकों को पढ़ते समय कई प्रश्न स्वतः सामने आते हैंकृक्या सत्ता से मिलने वाला संरक्षण वास्तव में स्वतंत्रता को सुरक्षित रखता है? क्या सत्ता के व्यक्ति की हर बात प्रशंसा योग्य होती है? क्या व्यक्तिगत लाभ के लिए सत्ता के निकट जाना व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित कर सकता है? और क्या केवल नियमों का पालन

कर लेने से नागरिक और व्यवस्था के बीच का संबंध आदर्श बन जाता है?

इन प्रश्नों का सीधा उत्तर शरद जोशी नहीं देते। वे पाठक के सामने परिस्थितियाँ रखते हैं और उनके भीतर मौजूद विरोधाभास को पहचानने का अवसर देते हैं। यही उनकी व्यंग्यात्मक शैली की सबसे बड़ी विशेषता है।

निष्कर्ष –

शरद जोशी के व्यंग्य नाटकों में समाज और सत्ता का संबंध अनेक स्तरों पर अभिव्यक्त हुआ है। उनके यहाँ सत्ता केवल शासन और प्रशासन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक मानसिकता, भाषा, संरक्षण, चापलूसी और अवसरवाद के रूप में भी दिखाई देती है। इसी प्रकार समाज भी केवल सत्ता से प्रभावित होने वाला निष्क्रिय वर्ग नहीं है, उसका एक हिस्सा सत्ता के प्रभाव को स्वीकार करता है, उसका लाभ उठाता है और कई बार उसकी शक्ति को मजबूत भी करता है।

शरद जोशी की व्यंग्य–दृष्टि की विशेषता यह है कि वे इन स्थितियों को किसी उपदेश या राजनीतिक वक्तव्य के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। वे हास्य, संवाद, पात्रों और नाटकीय परिस्थितियों के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक वास्तविकता को सामने लाते हैं। इस प्रक्रिया में पाठक पहले स्थिति की हास्यास्पदता को अनुभव करता है और फिर उसके भीतर छिपे गंभीर विरोधाभास पर विचार करता है।

उनके व्यंग्य नाटकों में समाज और सत्ता का विद्रूप इसी विरोधाभास से निर्मित होता है– जहाँ संरक्षण के भीतर नियंत्रण छिपा हो सकता है, प्रशंसा के पीछे स्वार्थ हो सकता है, प्रशासनिक पद के पीछे सत्ता की मानसिकता हो सकती है और नागरिकता के आदर्श के पीछे व्यवस्था की विडंबना दिखाई दे सकती है।

इस प्रकार शरद जोशी का व्यंग्य नाटक केवल अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण नहीं करता, बल्कि सत्ता और समाज के बीच बनने वाले संबंधों की प्रकृति पर भी गंभीर प्रश्न उठाता है। उनकी रचनाएँ पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करती हैं कि लोकतांत्रिक और सामाजिक जीवन में व्यक्ति की स्वतंत्रता, आलोचनात्मक चेतना और मानवीय गरिमा का स्थान कहाँ है। यही प्रश्न उनके व्यंग्य को सामाजिक रूप से सार्थक और साहित्यिक दृष्टि से प्रभावशाली बनाते हैं।

उद्धरण–संदर्भ –

1. शरद जोशी, दो व्यंग्य नाटक, पृ. 21
2. वही. 15
3. वही, पृ. 25
4. वही पृ. 30

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 227-234
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

सीकर जिले में जनसंख्या वृद्वि तथा बदलते कृषि स्वरूप का भौगोलिक अध्ययन

धूडाराम महरिया (शोधार्थी)
डॉ. सचिन कुमार (शोध निदेशक)
भूगोल विभाग, श्री खुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ, राजस्थान।

शोध आलेख सार :

सीकर जिले मे निरन्तर बढती जनसंख्या का कृषि विकास पर प्रभाव पडा है। बढती जनसंख्या के कारण यहां कृषि जोतों का आकार निरन्तर घट रहा हैं। यधपि यहां स्वतंत्रता के पश्चात कृषि विकास पर तेजी से बल दिया गया लेकिन उसकी दिशा यहां की कृषि पारिस्थितिकी के अनुरूप नही रखी गयी। विगत छः दशको में केवल कृषि विकास पर ही ध्यान रखा गया। कृषि को समय के साथ आधुनिकीकरण की प्रकिया में नही ला पाये जिसका मुख्य कारण जिले की प्रतिकूल भौगोलिक दशाएं भी रही है। यहां की कृषि में भौगेलिक परिस्थितियों का अनुकूल नही होना, कृषि का वर्षा पर आश्रित होना, सिचाई के साधनों का अभाव, भूजोत का आकार छोटा होना, किसानो की निरक्षरता, निर्धनता, कृषि भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक भार आदि प्रमुख समस्याएं व चुनौतियां है।

मूल शब्द :- जनसंख्या, जनसुख्या वृद्वि, कृषि, कृषि विकास एवं कृषि आधुनिकीकरण।

प्रस्तावना –

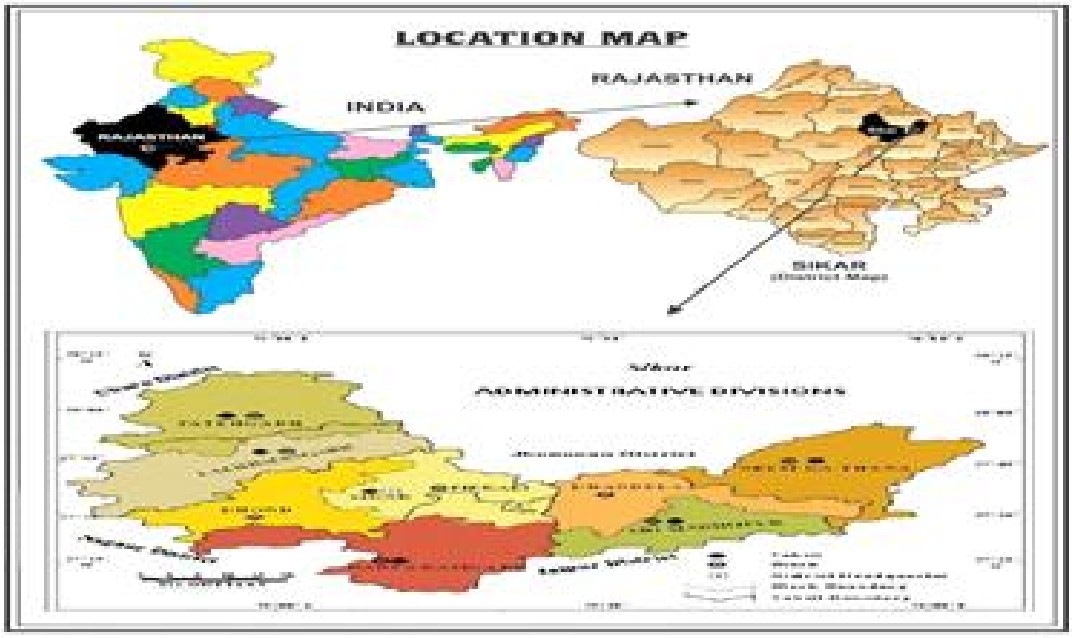
अध्ययन क्षेत्र सीकर जिले में भूजल का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। जिले में कृषि कार्यो में भूजल के अत्यधिक दोहन व अकृषि कार्यों में भी जल के अंधाधुध दोहन के कारण हाल के वर्षों में यहाँ जल संकट तेजी से बढ़ता जा रहा है। वर्षा की अनिश्चित और अनियमित प्रकृति तथा भूजल की कमी का यहाँ की कृषि पर प्रभाव पड रहा है जिसके परिणाम स्वरूप कृषि का स्वरूप बदलता जा रहा है। पहले यहा कृषि मे परम्परागत तकनीकों का उपयोग किया जाता है, वहीं आज कृषि से नवीन तकनीकों का उपयोग कर आधुनिक कृषि पर जोर दिया जा रहा है। पिछले कुछ वर्षो मे निरन्तर घटते भू–जल की परिस्थिति में सिचाई की परम्परागत विधियों के स्थान पर फव्वारा सिचाई तथा बूंद–बूंद सिंचाई पद्वति अधिक प्रभावी होती जा रही है। इन विधियों से उबड़–खाबड़ खेतों में भी सिचाई आसानी से हो जाती है। आधुनिक कृषि आदानों यथा–उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक खाद, सिचाई उपलब्धता, कीटनाशक रसायनों के उपयोग के कारण कृषि उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

अध्ययन क्षेत्र :–

शोध अध्ययन के लिए राजस्थान के सीकर जिले का चयन किया गया है जो कि राजस्थान के उतरी भाग में स्थित है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 7732 वर्ग किमी है जो राज्य का 2.25 प्रतिशत भू–भाग है। इसका अक्षांशीय विस्तार $27^0$21 से $28^0$12 उतरी अक्षांश तथा देशान्तरीय विस्तार $74^0$44 पूर्वी देशान्तर से $75^0$25 पूर्वी देशान्तर के मध्य है। जिले की उतर से दक्षिण लम्बाई लगभग 96 किमी तथा पूर्व से पश्चिम चौड़ाई 74 किमी है।

सीकर जिले की उतरी सीमा झुंझुनू जिले व हरियाणा राज्य से, पूर्वी व द.पू सीमा जयपुर जिले से, दक्षिणी– पश्चिमी सीमा नागौर जिले से तथा पश्चिमी सीमा चुरू जिले से लगती है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार सीकर जिले के कुल जनसंख्या 26.77 लाख है जिसमें 51.45 प्रतिशत पुरूष तथा 48.55 प्रतिशत महिला है। यहां का जनसंख्या घनत्व 346 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी तथा लिंगानुपात 944 है। जिले की साक्षरता 71.19 प्रतिशत है।

सीकर जिले की जलवायु अर्द्वशुष्क जलवायु की श्रेणी में आती हैं जहां गर्मियो के दौरान अधिकतम तापमान 48^0 सेल्सियस पहुँच जाता है जबकि सर्दियो में तापमान न्यून्तम 1^0 सेल्सियस तक गिर जाता है। वार्षिक वर्षा औसत 45 सेमी. होती है।



साहित्य का पुनरावलोकन –

कृषि भूगोल में किये गये शोध विषयक अध्ययनो के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि आधुनिकीकरण पर अनेक विद्वानो में शोध एवं अनुसंधान कार्य किया जाता है कृषि विकास एवं आधुनिकीकरण शीर्षक पर अनेक साहित्य पढने को मिले है। जिनमें प्रो जसवीर सिंह शफी मोहम्मद भाटिया (1967), हनुमन्त राव (1979), सुरेन्द्र सिंह (1994), आदि विद्वानों के कार्य प्रशंसनीय है।

हुनमन्त राव (1979) में पंजाब में टैक्टर व बिना टैक्टर वाले कृषकों के आंकडे एकत्रित करके प्रतिगमन विधि से विश्लेषण करके टैक्टर के कृषि उत्पादन पर प्रभाव का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। सिंधू व सिंह

(1991) तथा एडवर्डस (2004) ने भारत में मशीनीकरण की प्रगति तथा उसमें हुये गुणात्मक परिवर्तनों का विस्तृत अध्ययन किया हैं। इसी प्रकार सिंह और चांसलर (1973) ने मेंरठ जिले में कृषि यंत्रो के फसलो पर प्रभाव को ज्ञात करने के लिए सात गांवो के किसानों की जोत अध्ययन किया।

गुर्जर एंव जाट (2009) ने जल प्रबंधन की शोध पत्रिका में जल संरक्षण के माध्यम से कृषि विकास की सम्भावना का अध्ययन किया है जिसमें जल प्रबन्धन की तकनीकों का अध्ययन भी किया हैं।

अध्ययन के उद्देश्य :-

किसी क्षेत्र में अध्ययन करने के पीछे किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति में होती है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य सीकर जिले के कृषि आधुनिकीकरण व कृषि विकास स्तर का अनुमापन करना है जिससे अध्ययन के माध्यम से कृषि योजनाकार, सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशासक तथा अन्य व्यक्ति जो जिले के कृषि विकास योजनाओं में सलंग्न है, लाभान्वित होकर जिले के कृषि विकास के लिये उचित योजना निर्धारण कर सके।

प्रस्तुत शोधकार्य के महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित है –

- अध्ययन क्षेत्र में कृषि विकास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा वर्तमान में परिवर्धित व परिवर्तित कृषि विकास का स्तरीय अध्ययन करना।
- क्षेत्र के वर्तमान कृषि स्वरूप एंव कृषि आधुनिकीकरण का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
- अध्ययन क्षेत्र सीकर जिले के वर्तमान कृषि आधार पर भविष्य के विकास के लिये उचित प्रयासों की प्रशस्त करना।

शोध अध्ययन विधितंत्र एवं आंकडों के स्त्रोत :-

प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। द्वितीयक स्तर के आंकडो का संकलन मुख्यतः विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी विभागों से किया गया है। शोध अध्ययन राज्य की विभिन्न सरकारी संस्थाओं, जिले की प्रमुख संस्थाओं और प्रतिदर्श तहसीलो, विकास खण्डों से सूचनाएँ एवं आंकड़े एकत्रित किये गये है। शोध कार्य तालिका, आरेख एवं मानचित्र उपर्युक्त संस्थाओं कार्यालयों से प्राप्त आंकडों पर आधारित है। शोध में इन्टरनेट के माध्यम से विभिन्न विभागों की वेबसाईट से भी उपयोगी आंकडे प्राप्त किये जायेंगे। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित समय समय पर प्रकाशित जनसंख्या संबंधी आंकडे भी शोध में उपयोगी साबित हुये हैं। साथ ही प्रिट मीडिया में तत्संबंधी समस्याओं पर आधारित प्रकाशित विभिन्न लेख भी निश्कर्ष हेतु उपयोगी है।

जनसंख्या वितरण व जनसंख्या घनत्व –

सीकर जिले की जनसंख्या 1951 में 6,76,318 थी जो 2011 में बढ़कर 26,77,333 हो गयी है। वहीं 2001 से 2011 के दशक में सीकर जिले में जनसंख्या वृद्वि दर 17.03 प्रतिशत रही। जबकि इसी काल में राजस्थान में जनसंख्या वृद्विदर 21.44 रही। कृषि जन संसाधन से सबसे अधिक प्रभावित होती है। क्योंकि यदि किसी क्षेत्र में मानव संसाधन क्षेत्रफल के अनुपात में अधिक होता है, तो अधिक जनसंख्या के कारण कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं और यदि जनसंख्या क्षेत्रफल के अनुपात में कम हो तो उससे भी आर्थिक क्रियाएँ प्रभावित होती हैं। इसलिए अनुकूलतम जनसंख्या ही कृषि के विकास में सहायक सिद्व होती है। जिस प्रकार राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में जनसंख्या वितरण व घनत्व अलग अलग है। उसी प्रकार सीकर जिले का जनसंख्या घनत्व भी असमान है क्योकि जहाँ श्रीमाधोपुर तहसील सर्वाधिक जनसंख्या वाला क्षेत्र है। वही फतेहपुर तहसील सबसे

कम जनसंख्या घनत्व वाला क्षेत्र है। जनसंख्या असमान वितरण को कई कारक प्रभावित करते हैं। जिनमें जिले के उच्चावच, वर्षा, परिवहन, रोजगार आदि प्रमुख कारक है। श्रीमाधोपुर तहसील में जिले की अधिकतम जनसंख्या का कारण वहाँ की समतल उपजाउ कृषि योग्य भूमि तथा जल की पर्याप्त आपूर्ति है जो यहाँ के लोगों को पर्याप्त रोजगार देने में सहायक है। लेकिन जिस प्रकार उपजाउ मिट्टी जनसंख्या वितरण की असमानता को प्रभावित करती है उसी प्रकार क्षेत्र की जलवायु में असमानता के कारण जनसंख्या घनत्व में असमानता पायी जाती है।

सीकर जिला – जनसंख्या वितरण व घनत्व (तहसीलवार) 2011

कं सं.	तहसील	जनसंख्या	जनसंख्या घनत्व
1	फतेहपुर	305638	285
2	लक्ष्मणगढ	320956	263
3	सीकर	644186	425
4	दातारामगढ	423314	309
5	श्रीमाधोपुर	583328	423
6	नीमकाथाना	399911	337
	जिला सीकर	2677333	346

स्त्रोत :– जिला सांख्यिकी रूपरेखा सीकर।

वर्ष 1951 की जनगणना के अनुसार सीकर जिले में जनसंख्या घनत्व 87 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. था जो 2001 में बढकर 296 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. तथा नवीनतम जनगणना 2011 के अनुसार 346 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. हो गया। जो राजस्थान के जनसंख्या घनत्व 201 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी की तुलना में काफी अधिक है यहाँ नगरों का जनसंख्या घनत्व गांवों की अपेक्षा अधिक है।

जनसंख्या वृद्वि :–

जनसंख्या वृद्वि की समस्या में सीकर जिला भी अछूता नही है पिछले दशकों में जिले की जनसंख्या में तीव्र वृद्वि दर्ज की गई। 1931 में जिले की कूल जनसंख्या 5.21 लाख थी जो 1941 में 6.14 लाख (17.93 प्रतिशत), 1951 में 6.76 लाख (10.04 प्रतिशत), 1961 में 8.20 लाख (21.29 प्रतिशत), 1971 में 10.42 लाख (27. 11 प्रतिशत), 1981 में 13.77 लाख (32.09 प्रतिशत), 1991 में 18.42 लाख (33.81 प्रतिशत), 2001 में 22.87 लाख (24.14 प्रतिशत तथा 2011 में 17.03 प्रतिशत वृद्वि के साथ 26.77 लाख हो गई है। इस दशक में जनसंख्या वृद्वि में कमी परिवार नियोजन कार्यक्रम, शिक्षा का प्रसार एंव जागरूकता के कारण हुई है।

सीकर जिला दशकीय जनसंख्या वृद्वि (1931–2011)

वर्ष	स्त्री	पुरूष	योग	प्रतिशत वृद्वि
1931	248726	272433	521159	
1941	294423	320161	614584	17.93
1951	333434	342885	676318	10.04
1961	402523	417163	820286	21.29
1971	510998	531650	1042648	27.11
1981	675467	701778	1377245	32.09
1991	895682	947232	1842914	33.81
2001	1115035	1172753	2287788	24.14
2011	1300617	1377120	2677737	17.03

स्त्रोतः जिला जनगणना प्रतिवेदन (1931–2011) सीकर

कृषि आधुनिकीकरण व बदलता कृषि स्वरूप :-

कृषि आधुनिकीकरण में आधुनिक कृषि आदानों यथा– उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक खाद, सिंचाई उपलब्धता तथा कीटनाशक रसायनों के उपयोग का अत्यधिक महत्व है। अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि उपयोग में आधुनिकीकरण के लिए विभिन्न नवीन तकनीकें प्रयोग में ली जा रही है ताकि कृषि अयोग्य भूमि को कृषि योग्य भूमि में बदला जा सके एवं उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग कर अधिकतम उत्पादन किया जा सके।

आधुनिक कृषि आगत :-

सीकर जिले में कृषि आधुनिकीकरण के अन्तर्गत कृषि विकास के लिये निम्न प्रमुख आदानों का प्रयोग किया जा रहा है।

उन्नत किस्म के बीज -

बीज खेती में काम आने वाला एक महत्वपूर्ण कृषि आदान है, जिसकी गुणवता पर ही खेती की सम्पूर्ण पैदावार निर्भर रहती है। उचित गुणवता वाले उन्नत किस्म बीज पर सम्पूर्ण पैदावार निर्भर करती है। उचित गुणवता वाले बीज के अभाव में किसान द्वारा काम में लिये गये अन्य सभी आदान जैसे उर्वरक, पौध संरक्षण रसायन, सिंचाई आदि पर किया गया व्यय एवं उसकी मेहनत सब व्यर्थ चले जाते है।

सारणी

सीकर जिले में उन्नत किस्म के बीजों का वितरण 2018-19 से 2023-2024 (क्विंटल)

वर्ष	गेंहू	जौ	चना	सरसों	बाजरा
2018–19	34890	14967	6609	1335	7758
2019–20	34150	13100	8440	1280	8235
2020–21	34813	13339	8822	1320	8976
2021–22	35295	17967	9088	1405	9123
2022–23	35640	17840	9233	1520	9240
2023–24	35830	17910	9312	1670	9321

स्त्रोत – कार्यालय उप निदेशक, कृषि विस्तार, सीकर।

सीकर जिले में प्रारम्भ में इन फसलों में उन्नत बीजों का प्रयोग नही किया जाता था, लेकिन हरित क्रान्ति का प्रभाव इस क्षेत्र के किसानों पर भी पडा और ये भी उन्नत बीजों का प्रयोग करने लगे। किसान ने साधारण बीजों की अपेक्षा अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग करना शुरू कर दिया, जिससे प्रति हैक्टेयर उपज में भारी वृद्वि हुई। सीकर जिले में कृषि विभाग व बीज निगम द्वारा गेंहूँ, जौ, चना, सरसों, बाजरा, मूँगफली आदि फसलों के लिये उन्नत किस्म के बीजों का वितरण व उत्पादन होता है।

(1) **गेहूँ** - यहाँ गेहूँ की मुख्य किस्मों में से लोक–1, कल्याण सोना, राज–1482, राज–3077, राज–3765, राज–821 आदि किस्मों का प्रयोग किया जाता है। क्षेत्र में घटते भू–जल स्तर के कारण कम सिंचाई में अधिक उपज देने वाली उन्नत किस्मों का भी प्रयोग किया जाता है। वर्ष 2023–24 में जिले में 35830 हैक्टेयर भूमि

में उन्नत किस्म के गेहूँ का उत्पादन किया गया है। कृषि विभाग द्वारा पारम्परिक खेती की जगह उन्नत किस्म के साथ खेती को बढावा देकर जिले में गेहूँ के उत्पादन क्षेत्र और उत्पादकता बढाने पर विशेष जोर दिया जा रहा है।

(2) जौ – सीकर जिले में जौ की फसल के अन्तर्गत क्षेत्रफल में अपेक्षाकृत ज्यादा वृद्वि नही हुई है। वर्ष 2015–16 से 2020–21 तक यहां उन्नत किस्म के बीज के अन्तर्गत जौ का क्षेत्रफल कम हुआ है। वर्ष 2020–21 से 2023–24 तक अवश्य जिले में उन्नत किस्म के बीजों के अन्तर्गत जौ के क्षेत्रफल में वृद्वि दर्ज हुई है। जौ की उन्नत किस्मों में आरडी–103, आरडी–2503, आरडी–2052, आरडी–2035, आरडी–2552, आरडी–2508 आदि प्रमुख हैं। यहाँ बोया गया उन्नत किस्म का जौ अन्य रबी फसलों की तुलना में काफी कम है। क्षेत्र में जौ का उत्पादन तथा प्रति हैक्टेयर उत्पादकता भी घटी है जिसका मुख्य कारण अध्ययन क्षेत्र में जौ की फसल से कृषकों को अधिक लाभ का नही मिलना है।

(3) चना – उत्पादन की दृष्टि से रबी की फसल में चना एक महत्वपूर्ण फसल है जिसकी अध्ययन क्षेत्र में अनेक उन्नत किस्में बोयी जाती है जिनमें सी–235, आर.एस.जी.–44, जी.एन.जी.–663 (वरदान), जीएनजी–469 (सम्राट) आदि प्रमुख हैं। चने की उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग अधिकाधिक करने से चने के प्रति हैक्टेयर उत्पादनमें वृद्धि हुई है। वर्ष 2023–24 में कुल 44594 हैक्टेयर भूमि पर चना बोया गया जिसमें से 16009 हैक्टेयर भूमि पर उन्नत किस्म के चने का बीज बोया गया। सीकर जिले में चने की खेती के स्वरूप में बदलाव देखने को मिल रहा है।

(4) सरसों – क्षेत्र में सरसों के उन्नत किस्म के बीज यथा – टी–59 (वरूणा), बायो–902 (पूसा जय किसान), लक्ष्मी, पूसा बोल्ड, आर.एच.–30, पीआर–15 आदि मुख्य है जिनका प्रयोग किया जाता है। वर्ष 2023–24 में कुल 76671 हैक्टेयर भूमि पर सरसों की खेती की गयी जिसमें से 37935 हैक्टेयर भूमि पर उन्नत किस्म के सरसों का बीज बोया गया। वर्ष 2023–2024 में क्षेत्र में सरसों के उन्नत बीजों का वितरण लगभग 445 क्विंटल किया गया। जिले में उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग से सरसों का प्रति हैक्टेयर उत्पादन भी बढा है।

(5) बाजरा – जिले में बाजरे की उन्नत किस्में आर.सी.बी.–2, डब्ल्यू. सी.सी–75, एच.एच.बी–67 एच.एच.बी.–60, राज–171, आर.एच.बी–30, आर.एच.बी–90, एम.एच.–169 (पूसा) आदि प्रमुख है। स्थानीय बाजरा की तुलना में बाजरा की संकर किस्मों की पैदावार काफी अधिक होती है। वर्ष 2023–24 में कुल 248834 हैक्टेयर भूमि पर बाजरा बोया गया जिसमें से 216756 हैक्टेयर भूमि पर उन्नत किस्म के बाजरे का बीज बोया गया। वर्ष 2023–24 में लगभग 725 क्विटल उन्नत किस्म के बाजरे के बीज वितरित किये गये हैं।

रासायनिक उर्वरक –

जिले में फसलों के उत्पादन में गिरावट होने के मुख्य कारणों में मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों जैसे नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश की कमी का होना भी है। अतः क्षेत्र में फसलों का औसत उत्पादन और उत्पादकता बढाने के लिये मृदा में पोषक तत्वों की कमी की पूर्ति विभिन्न उर्वरकों द्वारा की जाती है जिनका उपयोग एवं महत्व इस प्रकार है–

(1) नाईट्रोजन का महत्व – सभी प्रकार के उर्वरकों में मौजूद नाइट्रोजन का प्राथमिक स्त्रोत हवा है जिसमें 79 प्रतिशत नाईट्रोजन पायी जाती है। नाइट्रोजन पौधों के लिए आवश्यक तत्व है जिसे वे सीधे हवा से नही ले

सकते। पौधें इसे नाइट्रेट एवं अमोनियम के रूप में ग्रहण करते हैं। नाईट्रोजन की कमी से पौधे का विकास अवरूद्व हो जाता है तथा पौधे ठिगने रह जाते हैं। अतः पौधों की वृद्धि के लिये यह तत्व आवश्यक है।

(2) **फॉस्फोरस का महत्व** – पौधों में कोशिकाओं के विकास हेतु फॉस्फोरस आवश्यक पोषक तत्व है। इस तत्व के कारण पौधे की जडों का समुचित विकास होता है। जिन पौधों में फॉस्फोरस की कमी होती है उनमें प्रोटीन की मात्रा कम तथा शर्करा की मात्रा अधिक हो जाती है। अतः फॉस्फोरस पौधों के लिए वसा एवं प्रोटीन निर्माण में सहायक होता है।

(3) **पोटाश का महत्व** – नाईट्रोजन एवं फॉस्फोरस के बाद पौधों के लिए सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व पोटाश है। पोटाश को पौधों का सुरक्षा कवच माना जाता है। पोटाश के कारण पौधों में कीटों एवं बीमारियों की प्रतिरोध क्षमता विकसित होती है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व –

वर्तमान में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण विश्व के सामने अनेक विकट समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है। मानव ने अपनी बढती संख्या की असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति का दबाव विभिन्न प्रकृति प्रदत्त पदार्थो पर प्रेषित कर अनेक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया है। शोध अध्ययन की मुख्य उपयोगिता यह होगी की जिले की विभिन्न विकास योजनाओ में संलग्न व्यक्तियों व संस्थाओं को जिले में कृषि विकास स्तर ज्ञात होगा जिससे कि जिले के भावी विकास हेतु उपयुक्त योजना का निर्धारण कर सके और संसाधनों का समुचित उपयोग करते हुए लोक कल्याण की ओर अग्रसर हो सके।

निष्कर्ष एवं सुझाव –

जिले में कृषि आधुनिकीकरण में अनेक समस्याएं हैं जिनमें निम्न सुझावों का क्रियान्वयन कर जिले में कृषि के परम्परागत स्वरूप में बदलाव करके आधुनिक व बागवानी खेती द्वारा कृषि उपज व उत्पादकता में काफी वृद्वि की जा सकती है जिसके फलस्वरूप सीकर जिले की बढती जनसंख्या की खाद्यान्न आपूर्ति के साथ साथ कृषकों की आय मे वृद्वि होगी। यहाँ कृषि बागवानी एंव कृषि वानिकी की असीम सम्भावनाएँ हैं।

अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या आधुनिकीकरण हेतु निम्न सुझाव कारगर सिद्व हो सकते है –

कृषकों को कृषिगत नवाचारों से अवगत कराना चाहिए। उन्हें समय–समय पर कृषि विशेषज्ञों के सानिध्य में आयोजित शिविरों, सम्मेलनों एवं कृषि शोध केन्द्रों का भ्रमण करवाना चाहिए। साथ में प्रौढ शिक्षा केन्द्रों के माध्यम से शिक्षित करना चाहिए ताकि वे उन्नत कृषि तकनीकों को आसानी एवं सुगम तरीकों से समझ सकें।

किसानों को उन्नत किस्म के बीज, कीटनाशक, रासायनिक उर्वरकों तथा आधुनिक कृषि यंत्र खरीदने के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर अधिकाधिक कृषि ऋण एवं अनुदान उपलब्ध करवाना चाहिए जिससे किसानों पर अनावश्यक आर्थिक भार नही पड़े। पिछले पाँच वर्षों में उन्नत बीजों के अन्तर्गत की गयी खेती के क्षेत्रफल में वृद्वि हुई है जिसके फलस्वरूप उत्पादन भी बढा है। अतः कृषि उपज बढाने हेतु उन्नत किस्म के बीज वितरण पर और भी ज्यादा किया जाये।

खेतों के मिट्टी के नमूने सम्बन्धित कृषक मित्र द्वारा नजदीकी मृदा परीक्षण शाला में जाँच करवाकर किसानो का मृदा स्वास्थ्य कार्ड दिया जाना चाहिए। कार्ड में मिट्टी की जाँच के आधार पर नाईट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का पता चलता है, जिससे वे न्यून पोषक तत्वों की कमी के निराकरण

के लिए उचित पोषक तत्व डालकर खेत को उर्वरक बना सकें। इसके द्वारा किसान उर्वरकों का आवश्यकतानुसार सही उपयोग कर पैदावार बढा सकता है। मृदा परीक्षण के माध्यम से किसान को यह जानकारी भी प्राप्त होती है कि उनकी मिट्टी किस फसल के लिए सबसे उपयुक्त है। यह योजना किसान को पारम्परिक खेती की जगह आधुनिक तरीके से खेती करने के लिए प्रेरित करेगी।

सन्दर्भ सूची :-

1. भल्ला एल. आर. (2010) राजस्थान का भूगोल, कुलदीप पब्लिषिंग हाउस, जयपुर।
2. शर्मा एच. एच. और एम. एल. (2010) राजस्थान का भूगोल, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. Chouhan T.S., Geography of Rajasthan.
4. Saxena H.M., Geography of Rajasthan.
5. जिला सांख्यिकी रूपरेखा, सीकर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Oct. 2026 Page No. : 235-240

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ : सामाजिक, आर्थिक एवं वर्गीय शोषण का विश्लेषण

Dr. Satish Kumar Srivastava
Assistant Professor, Dept. of Hindi
PSG College of Arts & Science, Coimbatore.

सारांश :

हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन का चित्रण एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना, आर्थिक विषमता, जातिगत भेदभाव, सामंती व्यवस्था, श्रमिक शोषण और राजनीतिक विसंगतियों को अनेक रचनाकारों ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। इस दृष्टि से मधुकर सिंह का कहानी साहित्य विशेष महत्त्व रखता है। उनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ केवल प्रकृति, परिवेश और लोक संस्कृति तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें व्याप्त सामाजिक अन्याय, आर्थिक शोषण, सामंती वर्चस्व और मानवीय संवेदनाओं के विघटन का भी सजीव चित्रण मिलता है। प्रस्तुत शोधालेख में मधुकर सिंह की चयनित कहानियों के आधार पर ग्रामीण समाज की वास्तविक परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। विशेष रूप से किसान, मजदूर, दलित और निम्नवर्गीय समुदाय के जीवन–संघर्ष तथा शोषक वर्ग की मानसिकता को समझने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द – मधुकर सिंह, ग्रामीण जीवन, सामाजिक यथार्थ, सामंतवाद, वर्गीय शोषण, दलित चेतना, मजदूर, किसान, आर्थिक विषमता।

भूमिका –

भारतीय समाज की मूल संरचना में गांवों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ग्रामीण जीवन भारतीय संस्कृति, परंपरा और सामाजिक व्यवस्था का आधार है। किंतु गांवों की इस सांस्कृतिक पहचान के पीछे अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियां भी विद्यमान हैं। ग्रामीण समाज में आज भी गरीबी, अशिक्षा, जातिगत भेदभाव, सामंती मानसिकता और आर्थिक असमानता जैसी समस्याएं देखने को मिलती हैं।

हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन के इन विविध पक्षों को अभिव्यक्त करने वाले रचनाकारों में मधुकर सिंह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे ग्रामीण परिवेश और वहां के जनजीवन से गहराई से जुड़े हुए कथाकार हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों में ग्रामीण समाज का चित्रण बाहरी दृष्टि से नहीं, बल्कि उसके आंतरिक अनुभवों और संघर्षों के आधार पर हुआ है।

मधुकर सिंह की कहानियों में किसान, मजदूर, भूमिहीन श्रमिक, दलित और निम्नवर्गीय समुदाय के जीवन की त्रासदियां प्रमुखता से सामने आती हैं। उनके कथा साहित्य में सामंती व्यवस्था का क्रूर चेहरा, आर्थिक शोषण, जातिगत उत्पीड़न और सामाजिक अन्याय के अनेक रूप दिखाई देते हैं। इस प्रकार उनका कहानी साहित्य ग्रामीण समाज के उपेक्षित और शोषित वर्ग की पीड़ा का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है।

शोध के उद्देश्य –

1. मधुकर सिंह की कहानियों में चित्रित ग्रामीण जीवन के यथार्थ का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण समाज में विद्यमान सामंती व्यवस्था और वर्गीय शोषण का विश्लेषण करना।
3. किसान एवं मजदूर वर्ग की आर्थिक परिस्थितियों और जीवन–संघर्ष को समझना।
4. दलित एवं निम्नवर्गीय समाज के सामाजिक उत्पीड़न और स्त्री शोषण का अध्ययन करना।
5. ग्रामीण जीवन में राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था की भूमिका का विश्लेषण करना।
6. मधुकर सिंह की कथा–दृष्टि में निहित सामाजिक चेतना और प्रतिरोध के स्वर को रेखांकित करना।

शोध पद्धति –

प्रस्तुत शोधालेख में मधुकर सिंह के चयनित कहानी–संग्रहों को आधार बनाकर विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। उनकी कहानियों में उपस्थित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का पाठ–विश्लेषण करते हुए ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को समझने का प्रयास किया गया है।

ग्रामीण जीवन की सामाजिक संरचना और सामंती व्यवस्था –

मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना और उसमें व्याप्त वर्गीय विभाजन का यथार्थ चित्रण मिलता है। गांवों में एक ओर जमीन और संसाधनों पर अधिकार रखने वाला संपन्न वर्ग है, तो दूसरी ओर भूमिहीन मजदूर और श्रमिक वर्ग है, जो अपनी आजीविका के लिए संपन्न लोगों पर निर्भर रहता है।

'पंचइती परमेसरों का दुख' कहानी में लेखक ने भेखीटोला के मजदूर परिवारों के माध्यम से ग्रामीण जीवन की वास्तविक स्थिति को प्रस्तुत किया है। कहानी में बताया गया है कि वहां रहने वाले अधिकांश परिवार मजदूरी और छोटे–मोटे कामों के सहारे अपना जीवन व्यतीत करते हैं। लेखक लिखते हैं –

'हमारे गांव से एकदम सटा भेखीटोला है, जहां मुश्किल से पन्द्रह-बीस परिवार रहते हैं। वे सभी मजदूर हैं, जो अगल-बगल के गांव में हलवाही या दूसरे काम करते हुए यूं ही बस जी रहे हैं। औरतें घास काटकर बेचने के लिए शहर ले जाती हैं।'[1]

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज का एक बड़ा हिस्सा आजीविका के लिए कठिन श्रम करने के बावजूद आर्थिक सुरक्षा से वंचित है। महिलाओं को भी परिवार के भरण–पोषण के लिए अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है।

लेखक ग्रामीण समाज में सामंती मानसिकता के प्रभाव को भी उजागर करते हैं। जमींदारों का वर्चस्व इतना अधिक है कि गरीब मजदूर अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने का साहस नहीं कर पाते। इस प्रकार ग्रामीण समाज में आर्थिक असमानता सामाजिक असमानता को भी जन्म देती है।

ग्रामीण जीवन में आर्थिक शोषण और श्रमिकों की विवशता –

मधुकर सिंह की कहानियों में मजदूर वर्ग का जीवन निरंतर संघर्ष और अभाव से घिरा हुआ दिखाई देता है। ग्रामीण मजदूरों को अपनी मेहनत का उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता। वे पीढ़ी–दर–पीढ़ी जमींदारों के यहां हलवाही, चरवाही और अन्य प्रकार के कार्य करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं।

'मेरे गांव के लोग' कहानी में न्यूनतम मजदूरी का प्रश्न उठाया गया है। लेखक बताते हैं कि जब मजदूर अपने श्रम का उचित मूल्य मांगते हैं, तब उन्हें प्रशासनिक और राजनीतिक दबाव का सामना करना पड़ता है। कहानी का यह प्रसंग ग्रामीण श्रमिकों की आर्थिक तथा सामाजिक विवशता को उजागर करता है।

इसी प्रकार 'पहली मुक्ति' कहानी–संग्रह के प्रसंग में लेखक ने मजदूरों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है –

'हरिजनों की जीविका का साधन मात्र इन्हीं की मजूरी, बनिहारी और चरवाही है। लोग बाप-दादों के जमाने से ही हमसे काम भी लेते हैं और सूद भी लेते हैं। भादो में खाने के लिए पाँच मन चावल कर्ज दिया तो अगहन में साढ़े बारह मन चावल वसूलते हैं।'[2]

यह उद्धरण ग्रामीण समाज में आर्थिक शोषण की गहरी जड़ों को सामने लाता है। कर्ज और ब्याज की व्यवस्था गरीब परिवारों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी आर्थिक गुलामी में जकड़े रखती है। इस प्रकार लेखक ने बंधुआ मजदूरी और सामंती शोषण की समस्या को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

ग्रामीण समाज में जातिगत भेदभाव और दलित उत्पीड़न –

मधुकर सिंह की कहानियों का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष ग्रामीण समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव और दलित उत्पीड़न है। ग्रामीण सामाजिक संरचना में निम्नवर्गीय और दलित समुदाय को अनेक प्रकार की सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

उच्च वर्ग के लोग दलित समुदाय से श्रम तो लेते हैं, लेकिन उन्हें सामाजिक सम्मान और समानता का अधिकार देने के लिए तैयार नहीं होते। उनके साथ छुआछूत और भेदभाव किया जाता है। इस व्यवस्था में दलितों की आर्थिक निर्भरता उनके सामाजिक शोषण को और अधिक बढ़ा देती है।

मधुकर सिंह ने इस स्थिति को केवल सामाजिक समस्या के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसके पीछे सक्रिय आर्थिक और सामंती शक्तियों की भी पहचान की है। उनकी कहानियों में दलित पात्र धीरे–धीरे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते दिखाई देते हैं। उनकी जुबान खुलने लगती है और वे अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना विकसित करते हैं।

इस दृष्टि से मधुकर सिंह का कथा साहित्य ग्रामीण दलित समाज की पीड़ा के साथ–साथ उसमें विकसित हो रही सामाजिक चेतना का भी प्रतिनिधित्व करता है।

ग्रामीण जीवन में स्त्री शोषण और लैंगिक असमानता –

मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण स्त्री का जीवन विशेष रूप से संघर्षपूर्ण दिखाई देता है। वह आर्थिक अभाव, सामाजिक भेदभाव और पुरुष वर्चस्व की दोहरी मार झेलती है। खेतों में मजदूरी करने से लेकर घर–परिवार की जिम्मेदारियों तक उसका जीवन निरंतर श्रम और संघर्ष से भरा रहता है।

'पंचइती परमेसरों का दुख' कहानी में भोला मियां की पत्नी के साथ जमींदार जनकधारी द्वारा किया गया

अमानवीय व्यवहार ग्रामीण स्त्री की असुरक्षा को उजागर करता है। जमींदार उसकी बकरी को मार देता है और विरोध करने पर उसके सिर पर लाठी से प्रहार करता है।

यह घटना केवल एक महिला के साथ हुए अत्याचार का चित्रण नहीं है, बल्कि ग्रामीण समाज में शक्ति और सत्ता के असमान संबंधों को भी स्पष्ट करती है।

इसी प्रकार 'पहली मुक्ति' कहानी–संग्रह में रघुनी की फुआ के साथ बेनीमाधव बाबू द्वारा किया गया शोषण सामंती मानसिकता और स्त्री की सामाजिक विवशता को सामने लाता है।

लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि ग्रामीण समाज में आर्थिक और सामाजिक रूप से कमजोर स्त्री के पास अपने सम्मान और अधिकारों की रक्षा के पर्याप्त साधन नहीं हैं। इस प्रकार उनकी कहानियां ग्रामीण स्त्री की त्रासदी और उसके शोषण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं।

ग्रामीण समाज में हिंसा, अन्याय और न्याय व्यवस्था की विफलता –

मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण समाज की एक बड़ी समस्या न्याय व्यवस्था की विफलता है। गांवों में संपन्न और प्रभावशाली लोग अपने आर्थिक एवं सामाजिक वर्चस्व के बल पर कमजोर लोगों का शोषण करते हैं। पंचायत और प्रशासन भी कई बार शक्तिशाली वर्ग के प्रभाव में दिखाई देते हैं।

'पंचइती परमेसरों का दुख' कहानी में भोला मियां और जनकधारी के बीच उत्पन्न विवाद इसी स्थिति को स्पष्ट करता है। पंचायत का रवैया पीड़ित व्यक्ति के पक्ष में न्यायपूर्ण निर्णय देने के बजाय प्रभावशाली व्यक्ति को बचाने वाला दिखाई देता है।

लेखक लिखते हैं –

'कोई भी गवाही देने नहीं जाएगा।'[3]

यह छोटा–सा कथन ग्रामीण समाज में व्याप्त भय, दबाव और अन्यायपूर्ण व्यवस्था की गंभीर स्थिति को व्यक्त करता है। इसी प्रकार 'अगनुकापड़' कहानी में वकील द्वारा देवकी मंडल के खेत से जबरन पानी ले जाने की कोशिश और विरोध करने पर भाला मार देना ग्रामीण समाज में हिंसा तथा संपन्न वर्ग के अहंकार को उजागर करता है। इन प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज में न्याय केवल नैतिकता और कानून के आधार पर संचालित नहीं होता, बल्कि कई बार धन, जाति और सामाजिक प्रभाव उसकी दिशा निर्धारित करते हैं।

किसानों की समस्याएं और कृषि व्यवस्था का संकट –

मधुकर सिंह की कहानियों में किसान जीवन की समस्याओं का भी प्रभावशाली चित्रण हुआ है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है, लेकिन किसान अनेक प्राकृतिक, आर्थिक और प्रशासनिक समस्याओं से जूझता रहता है।

वर्षा की अनियमितता, सिंचाई की समस्या, नहर विभाग की भ्रष्टाचारपूर्ण व्यवस्था और आर्थिक संसाधनों का अभाव किसान के जीवन को कठिन बना देते हैं।

'दस प्रतिनिधि कहानियां' में संकलित कहानी के एक प्रसंग में नहर विभाग को रिश्वत न देने के कारण धान की फसल को समय पर पानी नहीं मिल पाता और पूरी फसल बर्बाद हो जाती है।

इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि किसान केवल प्राकृतिक परिस्थितियों से ही संघर्ष नहीं करता, बल्कि सरकारी व्यवस्था की अव्यवस्था और भ्रष्टाचार भी उसके आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं।

मधुकर सिंह ने किसान की इस विवशता को ग्रामीण जीवन के व्यापक संकट के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके यहां खेती केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि किसान के अस्तित्व और सम्मान से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

ग्रामीण जीवन में पशुधन, स्वामित्व और वर्गीय द्वेष –

ग्रामीण समाज में पशुधन आर्थिक जीवन का महत्त्वपूर्ण आधार होता है। विशेष रूप से गरीब परिवारों के लिए गाय, भैंस और बकरी जैसी संपत्ति उनकी आजीविका तथा आर्थिक सुरक्षा का साधन होती है।

'सुबल की भैंस' कहानी में लेखक ने ग्रामीण समाज में व्याप्त वर्गीय द्वेष और सामंती मानसिकता को उजागर किया है। सुबल की भैंस को जहर देकर मारने की घटना इस बात का संकेत है कि संपन्न वर्ग गरीब व्यक्ति की आर्थिक उन्नति को भी सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाता।

यह घटना केवल पशु हत्या की घटना नहीं है, बल्कि गरीब व्यक्ति की आर्थिक प्रगति के प्रति सामंती वर्ग की ईर्ष्या और असहिष्णुता का प्रतीक है।

इस प्रकार मधुकर सिंह ने ग्रामीण जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं के माध्यम से वर्गीय मानसिकता और सामाजिक विषमता के गहरे यथार्थ को अभिव्यक्त किया है।

ग्रामीण राजनीति, प्रशासन और बाजारवाद का प्रभाव –

मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण राजनीति और प्रशासनिक व्यवस्था की विसंगतियों का भी चित्रण मिलता है। गांवों में राजनीतिक स्वार्थ, भ्रष्टाचार और सत्ता प्राप्त करने की प्रवृत्ति ने सामान्य जनजीवन को प्रभावित किया है।

राजनीतिक दल और प्रभावशाली लोग गरीब जनता की आर्थिक विवशताओं का लाभ उठाते हैं। विकास योजनाओं का उद्देश्य ग्रामीण जीवन को बेहतर बनाना होता है, किंतु भ्रष्टाचार और स्वार्थ के कारण उनका लाभ वास्तविक जरूरतमंदों तक नहीं पहुंच पाता।

लेखक ने जवाहर रोजगार योजना और गरीबी रेखा के संदर्भ में ग्रामीण आर्थिक विषमता की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और बाजारवादी प्रवृत्तियां गरीबों की समस्याओं को और अधिक जटिल बना देती हैं।

इस प्रकार मधुकर सिंह ग्रामीण जीवन को केवल सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से नहीं देखते, बल्कि उसके राजनीतिक तथा प्रशासनिक पक्षों को भी अपनी कहानियों में स्थान देते हैं।

मधुकर सिंह की कथा–दृष्टि और सामाजिक चेतना –

मधुकर सिंह की कहानियों का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता है। वे ग्रामीण समाज की समस्याओं को केवल घटनाओं के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उनके पीछे सक्रिय शोषणकारी शक्तियों की पहचान भी करते हैं। उनकी कहानियों में निम्नवर्गीय पात्रों का जीवन, उनकी विवशता, संघर्ष और प्रतिरोध प्रमुखता से उभरकर सामने आते हैं। वे समाज के उन लोगों को अपनी कहानियों का केंद्र बनाते हैं, जिनकी आवाज प्रायः मुख्यधारा के साहित्य और समाज में दब जाती है।

उनकी भाषा में आंचलिकता, लोकजीवन की सहजता और ग्रामीण परिवेश की स्वाभाविकता दिखाई देती है। संवादों और पात्रों के माध्यम से वे ग्रामीण समाज की वास्तविक परिस्थितियों को पाठक के सामने उपस्थित

करते हैं।

इस दृष्टि से मधुकर सिंह का कहानी साहित्य सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा और शोषित वर्ग के प्रति गहरी संवेदनशीलता का साहित्य है।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ बहुआयामी रूप में अभिव्यक्त हुआ है। उनके कथा साहित्य में ग्रामीण समाज की सामाजिक संरचना, आर्थिक विषमता, सामंती शोषण, जातिगत भेदभाव, स्त्री उत्पीड़न, किसान–मजदूरों की समस्याएं तथा राजनीतिक और प्रशासनिक विसंगतियां प्रमुखता से सामने आती हैं।

मधुकर सिंह ने ग्रामीण जीवन के उस पक्ष को अपनी कहानियों में स्थान दिया है, जहां मेहनतकश मनुष्य निरंतर संघर्ष करने के बावजूद सम्मानजनक जीवन से वंचित है। उनकी कहानियों में शोषक और शोषित वर्ग के बीच का संघर्ष ग्रामीण समाज की वास्तविक परिस्थितियों को उजागर करता है।

उनकी विशेषता यह है कि वे ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण करते समय केवल करुणा उत्पन्न नहीं करते, बल्कि पाठक को सामाजिक व्यवस्था पर विचार करने के लिए भी प्रेरित करते हैं। उनके पात्रों में अन्याय के प्रति असंतोष और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता दिखाई देती है।

अतः कहा जा सकता है कि मधुकर सिंह का कहानी साहित्य ग्रामीण भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का सशक्त दस्तावेज है। उनकी कहानियां न केवल ग्रामीण जीवन की त्रासदियों को अभिव्यक्त करती हैं, बल्कि शोषणमुक्त और समानतामूलक समाज की आवश्यकता को भी रेखांकित करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. सिंह, मधुकर : लहू पुकारे आदमी, कहानी संग्रह, पृष्ठ 27।
2. सिंह, मधुकर : लहू पुकारे आदमी, कहानी संग्रह, पृष्ठ 28।
3. सिंह, मधुकर : लहू पुकारे आदमी, कहानी संग्रह, पृष्ठ 31।
4. सिंह, मधुकर : लहू पुकारे आदमी, कहानी संग्रह, पृष्ठ 36।
5. सिंह, मधुकर : लहू पुकारे आदमी, कहानी संग्रह, पृष्ठ 51।
6. सिंह, मधुकर : दस प्रतिनिधि कहानियां, पृष्ठ 16–17।
7. सिंह, मधुकर : दस प्रतिनिधि कहानियां, पृष्ठ 23।
8. सिंह, मधुकर : दस प्रतिनिधि कहानियां, पृष्ठ 31।
9. सिंह, मधुकर : पहली मुक्ति, कहानी संग्रह, पृष्ठ 9।
10. सिंह, मधुकर : पहली मुक्ति, कहानी संग्रह, पृष्ठ 86।
11. सिंह, मधुकर : पहली मुक्ति, कहानी संग्रह, पृष्ठ 169।

drsatishkumarsrivastava@psgcas.ac.in

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. रजनीकांत साहू

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शासकीय रानी दुर्गावती महाविद्यालय वाड्रफनगर,
जिला–बलरामपुर, रामानुजगंज (छत्तीसगढ़)

for the paper titled

छत्तीसगढ़ में पेसा (PESA) अधिनियम और जनजातीय स्वशासन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 13-27

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. एन. के. पाटीदार, प्राध्यापक (वाणिज्य)
शासकीय एम. जी. कालेज जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
सुनील कुमार साकेत, शोधार्थी (वाणिज्य)
सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

for the paper titled

मध्यप्रदेश में पर्यटन स्थलों का महत्व एवं व्यवसाय की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 28-40

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रो. डॉ. श्वेता डी. वेगड़

सहयोगी प्राध्यापक, संगीत विभाग,
श्रीमती रेवाबेन मनोहरभाई पटेल महिला कला महाविद्यालय, भंडारा।

for the paper titled

भारतीय संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण में संगीत की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 41-48

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सुमन लता, शोध निर्देशिका

हितेश कुमार, शोधार्थी (हिंदी)

एफ. एस. यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद।

for the paper titled

डॉ. कुमार विश्वास की रचनाओं में आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक युगबोध

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 49-52

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Shelly Sharma, Research Scholar,
Tilak School of Journalism & Mass Communication, C.C.S. University, Meerut

Prof. Pirshant Kumar, Professor,
Tilak School of Journalism & Mass Communication, C.C.S. University, Meerut (On Lien),
Dept. of Journalism & Mass Communication, Central University of Haryana, Mahendergarh.

for the paper titled

संकट प्रबंधन एवं मानसिक तनाव के संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता का प्रेरणादायक संचार : श्रीकृष्ण–अर्जुन संवाद का विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 53-59

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. नरेश कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग,
चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद।

for the paper titled

हिंदी कविता में पर्यावरणीय चेतना :
एक विवेचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 60-64

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. शंभू जोशी, प्रोफेसर, दूर शिक्षा निदेशालय

डॉ. अंकित कुमार पाण्डेय,

अतिथि अध्यापक, वर्धा समाज कार्य संस्थान,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

for the paper titled

ग्राम विकास और शिक्षा की देशज दृष्टि : नानाजी देशमुख

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 65-75

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रविन्द्र सिंह राणा, शोधार्थी,

डॉ. महेश चन्द्र, शोध निर्देशक,

योग विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

for the paper titled

यम नियम और आधुनिक मानव का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 76-80

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रूखमणी मोहबे, शोद्यार्थी,
राजा शंकर शाह विश्वविद्यालय, छिन्दवाड़ा, म.प्र.
डॉ. मुन्ना लाल चौधरी, सहा. प्राध्या. संस्कृत,
शास. स्नातको. महाविद्यालय, सिवनी, म.प्र.

for the paper titled

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सुशासन के सिद्धांत : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 81-87

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पूरण सोलंकी, शोधार्थी,

डॉ. नितीन ढ़ोमने, शोध निर्देशक,

योग विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

for the paper titled

आधुनिक जीवन पद्धति एवं योग

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 88-94

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रूखमणी मोहबे

शोद्यार्थी, राजा शंकर शाह विश्वविद्यालय, छिन्दवाड़ा, म.प्र.

डॉ. मुन्ना लाल चौधरी

सहा. प्राध्या. संस्कृत, शास. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी, म.प्र.

for the paper titled

भ्रष्टाचार नियंत्रण के उपाय – 'कौटिल्य एवं वर्तमान भारत'

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 95-99

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. बी. आर. भद्री, अ. प्रो.,
रा.आ. म. वि., मीठीबेरी, हरिद्वार।

for the paper titled

हिन्दी कथा साहित्य एवं नारी विमर्श

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 100-103

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रसेन जीत सिंह

शोधकर्ता, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।

for the paper titled

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में किसान चेतना : डॉ. विवेकी राय के विशेष संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 104-108

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Sanyukta Padhi

Independent Researcher, Bhilai, C.G.

Dr. Sheila Vijay

Professor & Head, Department of English

Dr. KCB. Govt. PG College, Bhilai-3, Durg, C.G.

for the paper titled

Literature as a Living Bridge Between Humanity and the Earth

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 109-115

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अमृता कुमारी साह

शोधार्थी, असम विश्वविद्यालय,

दिफू परिसर, दिफू, असम–782460

for the paper titled

शिखर और सीमाएं उपन्यास में उत्तरी सिक्किम की पृष्ठभूमि, विवाहेतर नैतिक द्वंद, प्रेम त्रिकोण और पितृसत्ता

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 116-120

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. एम. एम. अंसारी

प्राचार्य (प्रभारी)

असिस्टेंट प्रोफेसर एंव विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग,

फेरुपुर डिग्री कॉलेज, फेरुपुर (रामखेड़ा), हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

for the paper titled

प्रकृति का सौदा : राजनीतिक नीतियाँ और उद्योगपति हित

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 121-128

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. एस. एस. देसाई

सह प्राध्यापक, श्री संगमेश्वर कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, चडचन, जिला विजयपुर, कर्नाटक 586205

for the paper titled

लोकमंगल की अवधारणा और कन्नड़ के संत पुरंदर दास तथा हिंदी के गोस्वामी तुलसीदास के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 129-133

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. विनोद कुमार नागले

उच्च. माध्य. शिक्षक (अर्थशास्त्र)

शासकीय उ.मा. विद्यालय निमोटी, जिला छिंदवाड़ा (म.प्र.)

for the paper titled

भारतीय कृषि में महिला कृषि मजदूरों की भूमिका (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 134-141

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रो. रामभूषण मिश्रा, संचालक एवं विभागाध्यक्ष,

स्वाती सिंह, शोधार्थी,

शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

for the paper titled

उच्चतर माध्यमिक छात्राओं की मोटर फिटनेस पर योग एवं पारंपरिक व्यायाम का तुलनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 142-153

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. एन.के. पाटीदार

प्राध्यापक (वाणिज्य), शासकीय एम.जी कालेज जावद, जिला नीमच (म.प्र.)

मनोज साकेत

शोधार्थी (वाणिज्य), सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)

for the paper titled

अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के गरीबी उन्मूलन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के योगदान का समीक्षात्मक अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 154-166

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दुकलहीन ठाकुर

शोधार्थी–राजनीति विज्ञान, शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. नागरत्ना गनवीर

शोध निर्देशक एवं प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय नवीन महाविद्यालय, रिसाली, जिला–दुर्ग (छ.ग.)

डॉ. शकील हुसैन

सह–शोध निर्देशक, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष–राजनीति विज्ञान,
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

for the paper titled

कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न के नियंत्रण में राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति 2001 की भूमिका : (छत्तीसगढ़) में दुर्ग जिले के विशेष संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 167-172

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. भारत कुमार विश्वकर्मा

सहायक प्राध्यापक (शारीरिक शिक्षा), श्रीयुत महाविद्यालय गंगेव रीवा (म.प्र.)

हर्षिता मिश्रा

लाइफ लर्निंग विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्व्वविद्यालय रीवा (म.प्र.)

for the paper titled

खेलों में भागीदारी का आत्मविश्वास पर प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 173-183

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सुधीर कुमार यादव, शोध छात्र,

प्रोफेसर गीता श्रीवास्तव, शोध निर्देशिका,

राजनीति विज्ञान, टी.एन.पी.जी. महाविद्यालय, टांडा, अंबेडकर नगर।

for the paper titled

भारत में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (DAY-NRLM) और जनजातीय समुदायों का सामाजिक–आर्थिक समावेशन : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 184-188

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Hemant Kumar Dewangan

Individual Researcher – English.

for the paper titled

JAL, JUNGLE, JAMEEN : A CRITICAL STUDY OF TRIBAL IDENTITY, ECOLOGY AND ORAL LITERATURE IN BASTAR WITH SPECIAL REFERENCE TO HALBI AND GONDI DIALECTS

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 189-196

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दिनेश कुमार (शोधार्थी)

डॉ. धीरज कुमार (शोध निर्देशक)

भूगोल विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़।

for the paper titled

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 197-201

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Mukesh Kumar

Professor, Department of Economics,
Babu Shobharam Government Arts College,
Alwar, Rajasthan, India.

for the paper titled

ROLE OF RENEWABLE ENERGY IN RAJASTHAN'S ECONOMIC DEVELOPMENT

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 202-214

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रविन्द्र कुमार, सहायक आचार्य, इतिहास,
लाल बहादुर शास्त्री राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली।
प्रो० राजेश कुमार मीणा, गाईड
इतिहास विभाग, लाईस यूनिवर्सिटी, अलवर।

for the paper titled

वीर सावरकर : अखंड भारत के स्वप्नद्रष्टा और प्रखर राष्ट्रवादी

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 215-219

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नन्हीं कुमारी,

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनागर मधेपुरा, बिहार।

for the paper titled

शरद जोशी के व्यंग्य नाटकों में समाज और सत्ता का विद्रूप

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 220-226

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

धूडाराम महरिया (शोधार्थी)

डॉ. सचिन कुमार (शोध निदेशक)

भूगोल विभाग, श्री खुशालदास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ, राजस्थान।

for the paper titled

सीकर जिले में जनसंख्या वृद्धि तथा बदलते कृषि स्वरूप का भौगोलिक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 227-234

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT JOURNAL

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Satish Kumar Srivastava

Assistant Professor, Dept. of Hindi
PSG College of Arts & Science, Coimbatore.

for the paper titled

मधुकर सिंह की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ : सामाजिक, आर्थिक एवं वर्गीय शोषण का विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha, ISSN : 2395-7115

Oct. 2026, Vol. 24, Issue -4, Part-3, Page No. 235-240

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152